PG HN S4-02 (DSC)

TWO YEAR POSTGRADUATE PROGRAMME

(CBCS in Accordance with NEP 2020)

SEMESTER-IV

असमिया संस्कृति का अध्ययन

हिंदी

Padmanath Gohainbaruah School of Humanities

KRISHNA KANTA HANDIQUI STATE OPEN UNIVERSITY

विषय विशेषज्ञ

प्रोफ़ेसर दिलीप कुमार मेधी, हिंदी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय, असम

प्रोफ़ेसर अमूल्य बर्मन, हिंदी विभाग, कॉटन विश्वविद्यालय (सेवानिवृत विभागाध्यक्ष)

प्रोफ़ेसर भूषण पाठक, अध्यक्ष, बी. एस. कॉलेज, हाउली, बरपेटा

पाठ्यक्रम समन्वयक: डॉ. उज्ज्वल डेका बरुआ, सहायक अध्यापक, कृष्णकांत हेंडिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय, असम

एसएलएम् तैयारी टीम

इकाइयाँ	**योगदानकर्ताओं के नाम**
1, 2, 3, 14	डॉ. सुरभि चुतिया, सहायक प्राध्यापिका, कृष्णकांत हेंडिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय, असम
4, 11	डॉ. कनिमा पाठक, सहायक प्राध्यापिका, जगिरोड़ कॉलज
6–7	डॉ. प्रांजल कुमार नाथ, सहायक अध्यापक, कृष्णकांत हेंडिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय, असम
10	डॉ. बर्णाली खाउंड, सहायक प्राध्यापिका, नगांव विश्वविद्यालय
5, 8, 9	मो. जोहुरूल इस्लाम, सहायक प्राध्यापक, इंदिरा गांधी सरकारी कॉलेज, अरुणाचल, तेजू
12, 13	अनन्या दास, कॉमर्स कॉलेज, गुवाहाटी

सहायक प्राध्यापिका :

Content: डॉ. टिंकू छेत्री, सहायक प्राध्यापिका, कृष्णकांत हेंडिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय, असम

Language: डॉ. दिनेश साहू, सहायक प्राध्यापक, सिक्किम विश्वविद्यालय, डॉ. बी आकाश राव, सहायक अध्यापक, सूर्यसेन महाविद्यालय पश्चिम बंगाल

Structure & Format: डॉ. सुरभि चुतिया, सहायक प्राध्यापिका, कृष्णकांत हेंडिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय, असम

April, 2026

Copyright © Krishna Kanta Handiqui State Open University.

This Self Learning Material (SLM) of the Krishna Kanta Handiqui State Open University is made available under a Creative Commons Attribution-Non Commercial-Share Alike 4.0 License (international): http://creativecommons.org/licenses/by-nc-sa/4.0/

Printed and published by Registrar on behalf of the Krishna Kanta Handiqui State Open University.

Headquarter : Patgaon, Rani Gate, Guwahati - 781017

City Office : Resham Nagar, Khanapara, Guwahati-781022; Web: www.kkhsou.in

अनुक्रमणिका

		Pages
इकाई-1:	**तुलनात्मक साहित्य** अर्थ, तत्व और सीमाएँ	**7-16**
इकाई-2:	**तुलनात्मक साहित्य की प्रयोग-रीति और विशेषताएँ** तुलनात्मक साहित्य की प्रयोग-रीति और विशेषताएँ	**17-26**
इकाई-3:	**तुलनात्मक भारतीय साहित्य की आवश्यकता** तुलनात्मक भारतीय साहित्य से लाभ और आवश्यकता	**27-35**
इकाई-4:	**उद्भवकालीन असमिया साहित्य** सामान्य परिचय, मन्त्र साहित्य और डाकर वचन	**36-42**
इकाई-5:	**वैष्णव युग** वैष्णव युग का सामान्य परिचय	**43-55**
इकाई-6:	**असमिया साहित्य में शंकरदेव** शंकरदेव का सामान्य परिचय, असमिया साहित्य में उनका योगदान	**56-62**
इकाई-7:	**असमिया साहित्य में माधवदेव** माधवदेव का सामान्य परिचय, असमिया साहित्य में उनका योगदान	**63-69**
इकाई-8:	**बरगीत** बरगीत का तात्पर्य, परिभाषा, महत्व एवं भाषा	**70-83**
इकाई-9:	**नारायण काहे भकति (शंकरदेव)** 'नारायण काहे भकति' बरगीत का अर्थ, सारांश, शब्दार्थ	**84-97**
इकाई-10:	**'मन मेरि राम चरणहि लागु' (शंकरदेव)** 'मन मेरी राम चरणहि' बरगीत का अर्थ, सारांश, शब्दार्थ	**98-109**
इकाई-11:	**रघुनाथ चौधरी की कविता (कविता, शब्दार्थ, सारांश)** कवि परिचय, भिक्षा कविता, भावार्थ, सन्दर्भ	**110-116**
इकाई-12:	**जनमभूमि (नलिनीवाला देवी)** कवि परिचय, भिक्षा कविता, भावार्थ, सन्दर्भ	**117-124**
इकाई-13:	**वीण बरागी (चंद्रकुमार अगरवाला)** कवि परिचय, भिक्षा कविता, भावार्थ, सन्दर्भ	**125-142**
इकाई-14:	**कन आरू मन (कन और मन)** लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ का परिचय, मूलपाठ, समीक्षा	**143-150**

विषय प्रवेश

'असमिया संस्कृति का अध्ययन' नाम से प्रस्तुत यह पत्र कृष्णकांत हेंडिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय के एम.ए हिंदी पाठ्यक्रम के चतुर्थ सत्र का एक महत्वपूर्ण मूल पत्र है। नामानुसार यह पत्र भारतीय साहित्य की बहुभाषिक एवं बहु सांस्कृतिक परंपराओं को तुलनात्मक दृष्टि से समझने पर केंद्रित है, जिसमें विशेष रूप से असमिया साहित्य को अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य के साथ संबंध स्थापित करते हुए अध्ययन का विषय बनाया गया है। यह अध्ययन क्षेत्र साहित्य को केवल एक भाषा या क्षेत्र तक सीमित नहीं रखता, बल्कि उसे व्यापक भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखता है। विभिन्न भाषाओं, संस्कृतियों और साहित्यिक परंपराओं के बीच अंतर्संबंध, समानताएँ, भिन्नताएँ तथा पारस्परिक प्रभावों का विश्लेषण इस पत्र की प्रमुख विशेषता है। इसके अंतर्गत तुलनात्मक साहित्य की संकल्पना, स्वरूप, प्रयोग-रीति तथा भारतीय संदर्भ में उसकी आवश्यकता को स्पष्ट किया गया है। साथ ही असमिया साहित्य के उद्भवकाल, वैष्णव या शंकरि युग, तथा महापुरुष शंकरदेव और माधवदेव के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक योगदान का विस्तार से विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

इसके अतिरिक्त बरगीत जैसी विशिष्ट काव्यधारा तथा चयनित कविताओं और लघुकथाओं के अध्ययन के माध्यम से साहित्य के भाव, रूप, शैली और दार्शनिक आधार को तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार यह पत्र साहित्य और समाज, संस्कृति, धर्म तथा इतिहास के गहरे अंतर्संबंधों को उजागर करता है, जिससे भारतीय साहित्य की 'विविधता में एकता' की अवधारणा साकार रूप में सामने आती है। इस पत्र में प्रत्येक इकाई के अंत में महत्वपूर्ण बिंदु, प्रगति जाँच तथा प्रगति विवरण जैसे शीर्षकों को समाविष्ट किया गया है, जिनके माध्यम से शिक्षार्थी अपने अध्ययन की समीक्षा कर सकते हैं तथा विषयवस्तु को अधिक व्यवस्थित रूप से समझने में समर्थ होते हैं। उद्देश्य केवल सैद्धांतिक जानकारी प्रदान करना नहीं, बल्कि विद्यार्थियों में आलोचनात्मक दृष्टि, तुलनात्मक विवेक तथा स्वतंत्र चिंतन की क्षमता का विकास करना भी है। मूलत: 'असमिया संस्कृति का अध्ययन' पत्र विद्यार्थियों, शोधार्थियों और साहित्य के गंभीर पाठकों के लिए एक सुदृढ़ आधार प्रस्तुत करता है, जो उन्हें विभिन्न साहित्यिक परंपराओं का गहन, संतुलित और सार्थक अध्ययन करने की दिशा में प्रेरित करता है।

इकाई-1: तुलनात्मक साहित्य

'तुलनात्मक साहित्य' इकाई में विभिन्न भाषाओं, संस्कृतियों और साहित्यिक परंपराओं के बीच संबंधों, समानताओं और भिन्नताओं का अध्ययन किया गया है। इस इकाई में तुलनात्मक साहित्य की संकल्पना, स्वरूप और विकास पर प्रकाश डाला गया है। विभिन्न देशों और भाषाओं के साहित्य के पारस्परिक प्रभाव, विषयवस्तु, रूप एवं शैली की तुलना के माध्यम से व्यापक दृष्टिकोण विकसित करने का प्रयास किया गया है। साथ ही साहित्य और समाज, संस्कृति तथा इतिहास के अंतर्संबंधों को समझने पर बल दिया गया है। यह इकाई तुलनात्मक अध्ययन की सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक आधारभूमि प्रस्तुत करती है। अंतिम में सारांश, प्रगति विवरण (केवल रूपरेख), अधिक जानने के लिए पढ़े एवं कुछ अभ्यास प्रश्न दिया गया है। जिसे पढ़कर शिक्षार्थी तुलनात्मक साहित्य का अर्थ एवं महत्व को विस्तारित रूप में समझ सकेंगे।

इकाई-2: तुलनात्मक साहित्य की प्रयोग-रीति और विशेषताएँ

'तुलनात्मक साहित्य की प्रयोग-रीति और विशेषताएँ' में तुलनात्मक साहित्य के व्यावहारिक स्वरूप पर विचार किया गया है, जिसमें विभिन्न साहित्यिक कृतियों के अध्ययन की विधियों और मानकों को स्पष्ट किया जाएगा। इसमें विषयवस्तु, रूप, शैली तथा सांस्कृतिक संदर्भों के आधार पर तुलना की प्रक्रिया को समझाया गया है। साथ ही तुलनात्मक साहित्य की प्रमुख विशेषताओं- जैसे व्यापक दृष्टिकोण, बहुभाषिकता और आलोचनात्मक दृष्टि—पर भी प्रकाश डाला गया है। यह इकाई शिक्षार्थियों को तुलनात्मक अध्ययन की प्रक्रिया को प्रभावी ढंग से समझने में सहायक होगी। जिसे पढ़कर शिक्षार्थी इस इकाई के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे एवं दिए गए प्रश्न को सुलझा सकेंगे।

इकाई-3: तुलनात्मक भारतीय साहित्य की आवश्यकता

'तुलनात्मक भारतीय साहित्य की आवश्यकता' इकाई में तुलनात्मक भारतीय साहित्य की आवश्यकता और उसके महत्व पर विचार किया गया है। भारत बहुभाषी और बहु सांस्कृतिक देश होने के कारण यहाँ विभिन्न भाषाओं के साहित्य में अनेक समानताएँ और भिन्नताएँ विद्यमान हैं। इस इकाई में इन साहित्यिक परंपराओं के पारस्परिक संबंध, प्रभाव और अंत:क्रिया को समझने पर

बल दिया गया है। साथ ही यह स्पष्ट किया गया है कि तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से राष्ट्रीय एकता, सांस्कृतिक समन्वय और व्यापक दृष्टिकोण का विकास कैसे संभव होता है। इसे पढ़कर शिक्षार्थी विषय को समझकर प्रश्नों का समाधान कर सकेंगे। इस इकाई को ध्यानपूर्वक पढ़ने पर छात्र न केवल विषय को गहराई से समझ पाएंगे बल्कि उससे जुड़े हर प्रश्न का समाधान भी ढूंढ़ सकेंगे।

इकाई-4: उद्भवकालीन असमिया साहित्य

इस इकाई में उद्भवकालीन असमिया साहित्य की प्रारंभिक अवस्था, विकास और प्रमुख विशेषताओं पर विचार किया गया है। इसमें असमिया भाषा के प्रारंभिक साहित्यिक रूप, प्रमुख रचनाएँ तथा उस समय की सांस्कृतिक और धार्मिक पृष्ठभूमि को स्पष्ट किया गया है। साथ ही आरंभिक साहित्यकारों के योगदान और उनकी रचनात्मक प्रवृत्तियों का भी अध्ययन किया गया है। इस इकाई के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार असमिया साहित्य की आधारभूमि निर्मित हुई। इसे पढ़कर शिक्षार्थी विषय का सम्यक ज्ञान प्राप्त कर प्रश्नों का समाधान कर सकेंगे।

इकाई-5: वैष्णव युग

इस इकाई में असमिया साहित्य के वैष्णव या शंकरी युग के स्वरूप, विकास और विशेषताओं का अध्ययन किया गया है। इस काल में भक्ति आंदोलन के प्रभाव से साहित्य में आध्यात्मिकता, भक्ति-भावना और नैतिक मूल्यों का समावेश हुआ। प्रमुख संत-कवियों, उनकी रचनाओं तथा समाज-सुधार में उनके योगदान पर भी प्रकाश डाला गया है। साथ ही इस युग की भाषा, शैली और सांस्कृतिक प्रभावों को समझाया गया है। इसे पढ़कर शिक्षार्थी ज्ञान प्राप्त करने के साथ ही सम्बंधित प्रश्नों का हल करने में सक्षम होंगे।

इकाई-6: असमिया साहित्य में शंकरदेव

असमिया साहित्य में शंकरदेव इकाई में असमिया साहित्य के विकास में शंकरदेव के योगदान का विस्तृत अध्ययन किया गया है। उन्होंने भक्ति आंदोलन के माध्यम से साहित्य, धर्म और समाज को एक नई दिशा प्रदान की। उनकी रचनाओं में भक्ति, नैतिकता और लोकजीवन का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। इस इकाई में उनके काव्य, नाटक, बरगीत तथा सांस्कृतिक योगदान पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि उनके प्रयासों से असमिया साहित्य को नई पहचान मिली। सारांश, प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा), अधिक जानने के लिए पढ़े एवं अंत में अभ्यास प्रश्न दिया गया है। जिसे पढ़कर शिक्षार्थी इस इकाई के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे एवं दिए गए प्रश्न को सुलझा सकेंगे।

इकाई-7: असमिया साहित्य में माधवदेव

इस इकाई में असमिया साहित्य के विकास में माधवदेव के योगदान का अध्ययन किया गया है। उन्होंने वैष्णव भक्ति परंपरा को सुदृढ़ करते हुए साहित्य को नई ऊँचाइयाँ प्रदान कीं। उनकी रचनाओं में भक्ति, सरलता और लोकभावना का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। इस इकाई में उनके प्रमुख काव्य, बरगीत तथा अन्य साहित्यिक कृतियों के साथ उनके सांस्कृतिक और धार्मिक योगदान पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही उनके द्वारा असमिया साहित्य और समाज पर पड़े प्रभाव को भी स्पष्ट किया गया है। इसे पढ़कर शिक्षार्थी विषय को समझकर प्रश्नों का समाधान कर सकेंगे।

इकाई-8: बरगीत

'बरगीत' इकाई में असमिया साहित्य की महत्वपूर्ण काव्य-धारा 'बरगीत' के स्वरूप, अर्थ और विशेषताओं का अध्ययन किया गया है। बरगीत मुख्यत: वैष्णव भक्ति परंपरा से जुड़े हुए गीत हैं, जिनमें आध्यात्मिक भाव, संगीतात्मकता और काव्य-सौंदर्य का समन्वय मिलता है। इस इकाई में बरगीत की उत्पत्ति, उद्देश्य, भाषा-शैली तथा इसके प्रमुख रचनाकारों के योगदान पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही बरगीत के दार्शनिक आधार और सांस्कृतिक महत्व को भी स्पष्ट किया गया है। इसे पढ़कर शिक्षार्थी बरगीत की विशेषताओं को समझकर उसका सम्यक ? विश्लेषण करने में सक्षम होंगे।

इकाई-9: नारायण काहे भकति (शंकरदेव)

इस इकाई में शंकरदेव द्वारा रचित प्रसिद्ध बरगीत 'नारायण काहे भकति' का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, जिसमें भक्ति-भावना,

आध्यात्मिक चिंतन और मानव जीवन के नैतिक पक्षों को अभिव्यक्त किया गया है। इस गीत के माध्यम से ईश्वर के प्रति समर्पण, संसार की नश्वरता और भक्ति के महत्व को सरल एवं प्रभावशाली शैली में व्यक्त किया गया है। साथ ही इसके भाव, भाषा, शैली तथा दार्शनिक आधार का भी अध्ययन किया गया है। इसे पढ़कर शिक्षार्थी इस बरगीत के भावार्थ और महत्व को गहराई से समझने में समर्थ होंगे।

इकाई-10: 'मन मेरि राम चरणहि लागु' (शंकरदेव)

'मन मेरि राम चरणहि' इकाई में शंकरदेव द्वारा रचित प्रसिद्ध बरगीत 'मन मेरि राम चरणे' का विश्लेषण किया गया है, जिसमें भक्ति, आत्मसमर्पण और आध्यात्मिक चेतना की गहन अभिव्यक्ति मिलती है। इस गीत में ईश्वर के चरणों में मन को स्थिर करने, सांसारिक मोह से मुक्त होने और सच्ची भक्ति के मार्ग को अपनाने का संदेश दिया गया है। साथ ही इसके भाव, भाषा, शैली तथा दार्शनिक तत्वों का भी विवेचन किया गया है। इसे पढ़कर शिक्षार्थी इस बरगीत के भाव और संदेश को समझकर उसका विश्लेषण करने में सक्षम होंगे।

इकाई-11: रघुनाथ चौधरी की कविता (कविता, शब्दार्थ, सारांश)

इस इकाई में रधुनाथ चौधरी द्वारा रचित कविता 'भिक्षा' का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, जिसमें मानवीय संवेदनाएँ, सामाजिक यथार्थ और करुणा की भावना का मार्मिक चित्रण मिलता है। इस कविता के माध्यम से समाज में व्याप्त विषमताओं, दीन-दुखियों की स्थिति और मानवीय दृष्टिकोण को उजागर किया गया है। साथ ही इसके भाव, भाषा, शैली तथा काव्यगत विशेषताओं का भी अध्ययन किया गया है। इसे पढ़कर शिक्षार्थी कविता के आशय और उसके सामाजिक संदेश को समझकर सम्यक ? व्याख्या करने में सक्षम होंगे।

इकाई-12: जनमभूमि (नलिनीवाला देवी)

इस इकाई में नलिनीवाला देवी द्वारा रचित कविता 'जनमभूमि' का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, जिसमें मातृभूमि के प्रति गहरा प्रेम, श्रद्धा और भावनात्मक जुड़ाव अभिव्यक्त हुआ है। इस कविता में देशभक्ति, सांस्कृतिक चेतना और प्रकृति के प्रति आत्मीयता का सुंदर चित्रण मिलता है। साथ ही इसके भाव, भाषा, शैली तथा काव्यगत विशेषताओं का भी अध्ययन किया गया है। इसे पढ़कर शिक्षार्थी कविता के भाव और उसके राष्ट्रीय महत्व को समझते हुए उसका विश्लेषण कर सकेंगे।

इकाई-13: वीण बरागी (चंन्द्रकुमार अगरवाला)

इस इकाई में चंन्द्रकुमार अगरवाला द्वारा रचित कविता 'वीण बरागी' का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, जिसमें वैराग्य, आत्मचिंतन और आध्यात्मिक संवेदनाओं की गहन अभिव्यक्ति मिलती है। इस कविता में जीवन की नश्वरता, त्याग की भावना और आंतरिक शांति की खोज को प्रतीकात्मक एवं काव्यात्मक रूप में व्यक्त किया गया है। साथ ही इसके भाव, भाषा, शैली तथा काव्यगत विशेषताओं का भी अध्ययन किया गया है। इसे पढ़कर शिक्षार्थी कविता के मर्म और उसके दार्शनिक पक्ष को समझते हुए उसका विश्लेषण करने में समर्थ होंगे।

इकाई-14: कन आरू मन (कन और मन)

इस इकाई में लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ द्वारा रचित लघुकथा 'कन आरू मन' का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, जिसमें मानवीय मनोभावों, सामाजिक जीवन और नैतिक मूल्यों का सजीव चित्रण मिलता है। कथा के माध्यम से व्यक्ति के आंतरिक द्वंद्व, भावनात्मक संवेदनाओं तथा सामाजिक संबंधों को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया गया है। साथ ही इसके कथानक, चरित्र-चित्रण, भाषा और शिल्पगत विशेषताओं का भी अध्ययन किया गया है। इसे पढ़कर शिक्षार्थी कथा के आशय और उसके जीवनगत संदेश को समझते हुए उसका सम्यक ? विश्लेषण कर सकेंगे।

इकाई-1 तुलनात्मक साहित्य

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 तुलनात्मक साहित्य का अर्थ
1.4 तुलनात्मक साहित्य की परिभाषा
1.5 तुलनात्मक साहित्य के उद्भव और विकास
1.6 तुलनात्मक साहित्य का स्वरूप
1.7 तुलनात्मक साहित्य की पद्धति
1.8 सारांश
1.9 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
1.10 अधिक जानने के लिए पढ़ें
1.11 अभ्यास प्रश्न

1.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

- तुलनात्मक साहित्य का अर्थ समझ पाएंगे और उसके अध्ययन क्षेत्र को पहचानेंगे।
- विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं का ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- तुलनात्मक साहित्य के स्वरूप और उसकी व्यापकता को समझेंगे।
- तुलनात्मक साहित्य की विभिन्न अध्ययन-पद्धतियों का अध्ययन कर पाएंगे।
- साहित्य को अंतरराष्ट्रीय और अंत: सांस्कृतिक दृष्टि से देखने की क्षमता विकसित कर सकेंगे।

1.2 प्रस्तावना

'तुलनात्मक साहित्य' अंग्रेज़ी शब्द *Comparative Literature* का हिंदी रूपांतरण है। यह एक स्वतंत्र और विशिष्ट अध्ययन विधा है, जिसे भारत सहित अनेक विदेशी विश्वविद्यालयों में महत्वपूर्ण शैक्षणिक अनुशासन के रूप में मान्यता प्राप्त है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इसे कई बार 'सांस्कृतिक अध्ययन' *(Cultural Studies)* की श्रेणी मंत भी रखा जाता है। तुलनात्मक साहित्य का अभिप्राय ऐसे साहित्य के अध्ययन से है जो एक से अधिक भाषाओं में रचा गया हो। इस विधा की विशेषता यह है कि इसमें 'तुलना' अध्ययन का मुख्य आधार होती है। साहित्य का विश्लेषण करते समय जब हम विभिन्न कृतियों को एक-दूसरे के संदर्भ में देखते हैं, तो यह प्रक्रिया अपने आप में तुलनात्मक अध्ययन बन जाती है। वस्तुत: 'तुलनात्मकता' आलोचना की परंपरा में प्राचीन काल से ही मौजूद रही है, जिसकी जड़ें अरस्तू के चिंतन में भी देखी जा सकती हैं। चाहे हम किसी एक भाषा की साहित्यिक कृतियों का अध्ययन करें या विभिन्न भाषाओं में रचित रचनाओं की तुलना करें, अध्ययन का केंद्रबिंदु सदैव साहित्य ही रहता है। इसलिए तुलनात्मक साहित्य को परंपरागत साहित्यिक अध्ययन से पूर्णत: अलग नहीं किया जा सकता। सामान्य आलोचक भी जब किसी रचना की विशेषताओं को स्पष्ट करने का प्रयास करता है, तो वह अक्सर अन्य किसी समान रचना से अनजाने में तुलना करता है। मगर एक तुलनात्मक साहित्यकार यह कार्य पूरी तरह से सजग होकर, एक निश्चित पद्धति के तहत करता है। वह तुलनात्मक दृष्टिकोण अपनाकर विभिन्न कृतियों की विशेषताओं को रेखांकित करता है। तुलनात्मक साहित्य (Comparative

Literature) साहित्य अध्ययन की एक ऐसी शाखा है, जिसमें विभिन्न भाषाओं, संस्कृतियों और देशों के साहित्य का परस्पर तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। इसका उद्देश्य यह समझना होता है कि अलग-अलग समाजों, भाषाओं और कालों में रचे गए साहित्यिक कार्यों में क्या समानताएँ और भिन्नताएँ हैं।

5 महत्वपूर्ण बिंदु

1. रेने वेलक (Rene Wellek) के अनुसार-

"It will study all literature from an international perspective, with a consciousness of the unity of all literary creation an experience. In this conception.....comparative literature is identical with the study of literature independent of linguistic, ethnic and political boundaries. It cannot be confined to a single method; description, characterization, interpretation, narration, explanation, evaluation, are used in its discourse just as much as comparison."

2. हेनरी एच. रेमाक (Henry H. Remak) के मतानुसार-

"the comparison of one literature or others, and the comparison of literature with other spheres of human expression."

3.आर्थर वीज़वांगर (Arthur B. March) के अनुसार-

"To examine...the phenomena of literature as a whole, to compare them, to group them, to classify them, to enquire into the causes of them, to determine the results of them-this is the true task of comparative literature."

1.3 तुलनात्मक साहित्य का अर्थ

'तुलनात्मक साहित्य' अंग्रेजी शब्द Comparative Literature का हिंदी रूप है। यह एक स्वतंत्र शैक्षणिक विधा (academic discipline) है, जिसका अध्ययन और अध्यापन भारत तथा विदेशों के अनेक विश्वविद्यालयों में विशेष रूप से किया जाता है। विदेशों में इसे कई बार 'सांस्कृतिक अध्ययन' (Cultural Studies) के नाम से भी जाना जाता है। अंग्रेजी कवि मैथ्यू आर्नल्ड ने सन् 1848 में अपने एक पत्र में सबसे पहले Comparative Literature शब्द का प्रयोग किया। (यह पत्र बाद में 1895 में जी. डब्ल्यू. ई. रसल द्वारा संपादित संग्रह में प्रकाशित हुआ।) प्रारंभ में इस शब्द के शाब्दिक अर्थ को लेकर मतभेद उत्पन्न हुए, क्योंकि साहित्य को यदि कवि या लेखक की सृजनात्मक कलात्मक अभिव्यक्ति माना जाए, तो वह स्वयं में पूर्ण होता है और उसकी तुलना किसी अन्य कृति से नहीं की जा सकती। वास्तव में, कोई भी लेखक या कवि ''तुलनात्मक कविता'' या ''तुलनात्मक उपन्यास'' नहीं रचता, क्योंकि हर साहित्यिक कृति अपनी विशिष्टता में सम्पूर्ण होती है। इसीलिए कहा गया कि ''तुलनात्मक'' शब्द सृजन की प्रक्रिया पर लागू नहीं होता, बल्कि यह अध्ययन और विश्लेषण की प्रक्रिया से जुड़ा है। इस विषय पर रेने वेलेक (René Wellek) ने 'ऐतिहासिक अर्थविज्ञान' की सहायता से स्पष्ट किया कि 'तुलनात्मक' का अर्थ है वस्तुओं के बीच समानता और भिन्नता का अध्ययन करना। तुलना का उद्देश्य यह देखना होता है कि दो या अधिक वस्तुओं, विचारों या कृतियों में क्या साम्य (similarity) और क्या वैषम्य (difference) है। अंग्रेजी भाषा में "Comparative" शब्द का प्रयोग बहुत पहले से — लगभगसन् 1598 से — होता आ रहा है। इसी समय फ्रांसिस मेयर्स (Francis Meres) ने एक पुस्तक लिखी थी जिसका शीर्षक था "A Comparative Discourse of Our English Poets with the Greek, Latin and Italian Poets"। इस पुस्तक में उन्होंने अंग्रेजी कवियों की तुलना अन्य भाषाओं के कवियों से की थी। हालाँकि

"Comparative" और "Literature" शब्दों का संयुक्त रूप पहली बार मैथ्यू आर्नल्ड ने प्रयोग किया, जब उन्होंने कहा कि यूरोप के देशों की तुलना में इंग्लैंड तुलनात्मक साहित्य के क्षेत्र में पीछे है। रेने वेलेक का मत था कि यहाँ ''तुलनात्मक'' शब्द का अर्थ केवल ''तुलनीय'' (Comparable) के समान है, यानी ऐसा साहित्य जो तुलना के योग्य हो। बाद में एच. एम. पॉसनेट (H. M. Posnett) ने अपनी पुस्तक "Comparative Literature" (1886) के माध्यम से इस अध्ययन को एक स्थायी रूप देने का प्रयास किया। इसके अतिरिक्त उनका एक प्रसिद्ध लेख "The Science of Comparative Literature" भी 1901 में Contemporary Review पत्रिका में प्रकाशित हुआ। इन सभी प्रयासों से यह स्पष्ट होता है कि बीसवीं सदी की शुरुआत तक Comparative Literature एक मान्य और स्वीकृत शैक्षणिक अनुशासन बन चुका था। वास्तव में, यह एकन्यून पदीय (elliptic) शब्द है और इसका अर्थ है, साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन।

''तुलनात्मक साहित्य'' शब्द के प्रयोग पर शुरू में इंग्लैंड में आपत्ति की गई। इसका मुख्य कारण यह था कि वहाँ 'साहित्य' शब्द के मूल अर्थको लोग भूल चुके थे। प्रारंभ में 'साहित्य' का अर्थ ज्ञान या अध्ययनथा, लेकिन बाद में इसका अर्थ केवल रचनात्मक या कल्पनात्मक कृतियोंतक सीमित हो गया। जब यह अर्थ स्वीकार किया गया, तब ''तुलनात्मक साहित्य'' शब्द भ्रामक लगने लगा, क्योंकि इससे यह प्रतीत होता था कि जैसे कोई ''तुलनात्मक रचनाओं का समूह'' हो। प्रो. लेन कूपरने स्पष्ट किया कि यदि हम ''साहित्य'' शब्द के पुराने अर्थ को स्वीकार करें, तो ''तुलनात्मक साहित्य'' का सही अर्थ होगा— ''साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन।'' उनके अनुसार, यदि आधुनिक अर्थ लिया जाए तो यह शब्द कृत्रिम और व्याकरण की दृष्टि से भी असंगत लगता है। फ्रांसीसी भाषा में Littérature शब्द का अर्थ ''साहित्यिक अध्ययन'' होता है, इसलिए वहाँ "Littérature Comparée" (तुलनात्मक साहित्य) शब्द को आसानी से स्वीकार कर लिया गया। इसी प्रकार जर्मन में "Vergleichende Literaturwissenschaft" शब्द प्रचलित हुआ, जिसका अर्थ है — ''साहित्य का तुलनात्मक विज्ञान।'' अत: अंग्रेजी में भी यदि कूपर की व्याख्या को स्वीकार किया जाए, तो "Comparative Literature" का वास्तविक अर्थ है- विभिन्न साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन।

1.4 तुलनात्मक साहित्य की परिभाषा

तुलनात्मक साहित्य उस विधा को कहा जाता है जिसमें दो या दो से अधिक भाषाओं, देशों या संस्कृतियों के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। इसका उद्देश्य विभिन्न साहित्यिक परंपराओं, रूपों, शैलियों, प्रवृत्तियों, विचारों तथा प्रभावों के बीच समानताओं और भिन्नताओं का विश्लेषण करना होता है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य विभिन्न साहित्यिक परंपराओं, प्रवृत्तियों, रूपों, विचारों तथा प्रभावों के बीच समानता और भिन्नता को पहचानना और उनके पारस्परिक संबंधों को स्पष्ट करना है। तुलनात्मक साहित्य केवल साहित्य की तुलना नहीं करता, बल्कि यह साहित्य के कला, दर्शन, समाज, धर्म, इतिहास आदि अन्य क्षेत्रों से संबंधों का भी अध्ययन करता है।

परिभाषाएँ-

- हेनरी एच. एच. रेमाक (Henry H. H. Remak)- तुलनात्मक साहित्य एक देश के साहित्य की तुलना दूसरे देश के साहित्य से करता है और साथ ही यह कला, इतिहास, समाजविज्ञान, विज्ञान, धर्मशास्त्र आदि अन्य क्षेत्रों के साथ साहित्य के संबंधों का अध्ययन करता है।
- रेने वेलेक (René Wellek)- तुलनात्मक साहित्य का उद्देश्य केवल भाषाओं या राष्ट्रों के साहित्य की तुलना नहीं, बल्कि साहित्य के सार्वभौमिक तत्त्वों का अध्ययन करना है।
- एस. एस. प्रावर (S. S. Prawer, 1973)- तुलनात्मक साहित्य एक स्वतंत्र विद्यानुशासन नहीं बन सकता, क्योंकि साहित्यिक अध्ययन में तुलना सदैव से एक आवश्यक अंग रही है।

- उलरिच वाइनस्टाइन (Irich Weisstein, 1973)- उलरिच वाइनस्टाइन ने अपनी पुस्तक 'कंपैरेटिव लिटरेचर एंड लिटरेरी थियोरी' (1973) में तुलनात्मक साहित्य की विभिन्न परिभाषाओं को दो वर्गों में बाँटा है-

(क) पेरिस एवं जर्मन स्कूल- पॉल वां टिगहेम (Paul Van Tieghem), ज्याँ-मारि कारे (Jean-marie Carre) तथा मारिओस फ्रांस्वास गुइयार्द (Marius Francois Guyard) जैसे पैरिस तथा जर्मन स्कूल के परंपरावादी विद्वानों की संकुचित संकल्पनाओं से जुड़ी हुई परिभाषाएँ तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन में साहित्यिक इतिहास के तत्त्व को अधिक महत्त्व देती हैं। इन विद्वानों का प्रतिपाद्य है कि तुलनात्मक साहित्य एक इतिहास-सम्मत अनुशासन है जिसको काव्यशास्त्रीय सौंदर्यमूलक अनुशासन के साथ जोड़ा नहीं जा सकता, क्योंकि ठोस यथार्थ, तथ्यात्मक चेतना तथा विभिन्न राष्ट्रों के कृतिकार, कृति, पाठक के निश्चेय संबंधों के साथ इसका संपर्क होता है।

(ख) अमरीकी स्कूल- रेने वेलेक, रेमाक, ऑस्टिन वारेन तथा प्रावर जैसे उदारतावादी विद्वानों को अमरीकी स्कूल के अंतर्गत स्थान दिया जाता है जिन्होंने अपनी परिभाषाओं में तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन में काव्यशास्त्रीय सौंदर्यात्मक कलापरक दृष्टि को महत्त्व दिया है।

- झुरमुन्स्की का कहना है कि पूर्व निर्धारित नियमों के अनुसार कला एवं साहित्य का विकास होता है और मानव जगत के सामाजिक तथा ऐतिहासिक विकास के यह समानांतर होता है।
- डॉ. रमेश चन्द्र शाह के अनुसार- तुलनात्मक साहित्य वह विधा है जिसके माध्यम से हम साहित्य को राष्ट्रीय सीमाओं से परे ले जाकर विश्व साहित्य के व्यापक संदर्भ में समझने का प्रयास करते हैं।

1.5 तुलनात्मक साहित्य के उद्भव और विकास

तुलनात्मक साहित्य आधुनिक युग की एक बहुआयामी विद्या है, जिसका उद्देश्य है- विभिन्न भाषाओं, संस्कृतियों और देशों के साहित्य का परस्पर तुलनात्मक अध्ययन करना। यह अध्ययन यह दिखाता है कि मानव अनुभव, भावनाएँ और सृजनशीलता सार्वभौमिक हैं, यद्यपि उनकी अभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न भाषाओं और रूपों में होती है। तुलनात्मक साहित्य का जन्म यूरोप में हुआ था। यह विषय उन्नीसवीं शताब्दी के अंत और बीसवीं शताब्दी के आरंभ में एक स्वतंत्र और विशिष्ट शैक्षिक अनुशासन के रूप में स्थापित हुआ, यद्यपि इसके बीज सत्रहवीं शताब्दी (17 वीं शताब्दी) में ही बोए जा चुके थे। उस काल से ही यूरोप में तुलनात्मक अध्ययन के लिए एक अनुकूल बौद्धिक वातावरण बनना आरंभ हुआ। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में यूरोप के विद्वान धीरे-धीरे एशिया और मध्य-पूर्व के देशों — जैसे भारत, चीन, जापान आदि — के संपर्क में आए। इन क्षेत्रों की समृद्धज्ञान-परंपराओं, दर्शन, साहित्य और भाषाओं ने यूरोप को एक नए प्रकार की सांस्कृतिक चेतना प्रदान की। इस सांस्कृतिक संपर्क के परिणामस्वरूप यूरोपीय विचारकों में तीन महत्वपूर्ण बौद्धिक परिवर्तन हुए-

क) यह समझ विकसित हुई कि पूरी मानव जाति एक है।

ख) यह धारणा बनी कि यूरोप के बाहर भी अध्ययन और अनुसंधान योग्य ज्ञान और साहित्य मौजूद हैं।

ग) साहित्य का आकर्षण सार्वभौमिक है।

इस काल में हुए वैज्ञानिक आविष्कारों ने भी मानव समाज को एक-दूसरे के समीप ला दिया। विज्ञान और यातायात के विकास के कारण विभिन्न देशों और संस्कृतियों के बीच संवाद बढ़ा, जिससे वैश्विक दृष्टिकोण विकसित होने लगा। इसी समय यूरोप में इंडो-यूरोपीय भाषा परिवार के अध्ययन ने यह सिद्ध किया कि यूरोपीय भाषाओं और भारत की संस्कृत भाषा का मूल स्रोत एक ही है। इस भाषा वैज्ञानिक खोज ने यूरोपीय विद्वानों को यह समझने के लिए प्रेरित किया कि विश्व की भाषाएँ और संस्कृतियाँ आपस में गहराई से जुड़ी हुई हैं। इन सब परिवर्तनों का प्रभाव साहित्य-अध्ययन पर भी पड़ा। यूरोपीय साहित्यकारों की दृष्टि में यह परिवर्तन आया कि

साहित्य सार्वभौमिक मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति है। इसलिए साहित्य को भौगोलिक, भाषिक या राष्ट्रीय सीमाओं में बाँधना उचित नहीं है। उनका यह भी मानना था कि साहित्य का अध्ययन केवल एक भाषा या परंपरा तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि अन्य भाषाओं और संस्कृतियों के साहित्य को भी अध्ययन में शामिल किया जाना चाहिए। ऐसे परिवर्तित दृष्टिकोण के आधार पर यूरोपीय विद्वानों ने विभिन्न यूरोपीय भाषाओं — जैसे फ्रांसीसी, जर्मन, अंग्रेज़ी और इताली आदि भाषा के साहित्य को एक साथ रखकर अध्ययन करना आरंभ किया। इसी से तुलनात्मक साहित्य की धारणा का जन्म हुआ। धीरे-धीरे यह दृष्टि विकसित होती गई और उन्नीसवीं शताब्दी में तुलनात्मक साहित्य एक स्वतंत्र शैक्षणिक पद्धति के रूप में स्थापित हो गया।

सन् 1848 में अंग्रेज़ी कवि और आलोचक मैथ्यू अर्नोल्ड ने पहली बार अंग्रेज़ी में "Comparative Literature" शब्द का प्रयोग किया। इसके बाद सन् 1886 में आयरलैंड के विद्वान एच. एम. पॉसनट ने अपनी पुस्तक "Comparative Literature" में इस विषय को एक शैक्षणिक और सैद्धांतिक रूप दिया। सन् 1901 में अपने लेख "The Science of Comparative Literature" में पॉसनट ने तुलनात्मक साहित्य की पद्धति, स्वरूप और उद्देश्य का विस्तार से विवेचन किया। इस प्रकार यूरोप में सामाजिक, वैज्ञानिक, भाषिक और सांस्कृतिक जागरण के परिणामस्वरूप तुलनात्मक साहित्य का उद्भव हुआ। मानव सभ्यता के एकत्व, सार्वभौमिक भावनाओं और साझा सांस्कृतिक चेतना की खोज ने इसे जन्म दिया। तुलनात्मक साहित्य इस विश्वास पर आधारित है कि साहित्य की भाषा भले ही अलग हो, परंतु उसकी भावना और मानवता एक ही होती है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक काल में तुलनात्मक साहित्य एक स्वतंत्र शैक्षणिक विषय (Academic Discipline) के रूप में स्थापित हुआ। इसी काल से साहित्य के गहन अध्ययन के उद्देश्य से साहित्य अध्ययन के साथ पद्धतिगत रूप से तुलना को जोड़ा जाने लगा। जब यह विषय एक स्वतंत्र विद्यानुशासन के रूप में विकसित हुआ, तब इसके कुछ प्रमुख लक्षण स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं-

क) तुलनात्मक पद्धति ही तुलनात्मक साहित्य की मुख्य पद्धति मानी जाती है। इसके साथ ही, यह अन्य विविध पद्धतियों — जैसे व्याख्यात्मक, वर्णनात्मक, परिचयात्मक, विश्लेषणात्मक आदि — का भी उपयोग करती है। आवश्यकता के अनुसार यह अपनी विशेष पद्धति का भी प्रयोग करती है। इस प्रकार तुलनात्मक साहित्य और साहित्य अथवा साहित्य और अन्य विषयों के बीच संबंध स्थापित करके अध्ययन को आगे बढ़ाता है।

ख) साहित्य में मानव की सार्वभौमिक और मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है। तुलनात्मक साहित्य इन सार्वभौमिक मानवीय अनुभूतियों और शाश्वत सत्यों को उजागर करने का प्रयास करता है। इसका उद्देश्य विभिन्न देशों, कालों और संस्कृतियों के साहित्य में निहित समान मानवीय अनुभवों की खोज करना है।

ग) तुलनात्मक साहित्य के तीन मूल स्वरूप विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—

1) यह समस्त विश्व साहित्य को एक ''एकीकृत साहित्य'' के रूप में देखने का विचार प्रस्तुत करता है।

2) यह इस एकीकृत दृष्टिकोण के माध्यम से सभी साहित्यों के अध्ययन को सरल बनाने के लिए ''सार्वभौमिक साहित्यशास्त्र'' की स्थापना का समर्थन करता है।

3) यह एक साहित्य को दूसरे साहित्य से या साहित्य को अन्य विषयों से जोड़कर अध्ययन को अधिक व्यापक और समग्र बनाना चाहता है।

विश्व में सबसे पहले अमेरिका के कॉर्नेल विश्वविद्यालय में उन्नीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में तुलनात्मक साहित्य का स्वतंत्र विभाग स्थापित किया गया। इसके साथ ही इस विषय की औपचारिक मान्यता और विस्तार प्रारंभ हुआ। बाद के वर्षों में यह विषय विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों में स्वतंत्र विभाग के रूप में

या आंशिक रूप से अन्य साहित्यिक विभागों के साथ जुड़कर विकसित और समृद्ध होता गया। वर्तमान समय में तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन विश्व के अनेक देशों में फैल चुका है। उन्नीसवीं शताब्दी में विभिन्न देशों, जातियों और क्षेत्रों की राष्ट्रीय विशेषताओं के अध्ययन को विशेष महत्व मिलने लगा। इसी पृष्ठभूमि में जब तुलनात्मक साहित्य एक स्वतंत्र विषय के रूप में विकसित हुआ, तब विभिन्न देशों के विद्वानों ने इसके स्वरूप और क्षेत्र को लेकर अलग-अलग दृष्टिकोण प्रस्तुत किए। देश और भाषा के आधार पर साहित्यिक चिंतन की स्वकियता को प्रमाणित करने हेतु तुलनात्मक साहित्य से संबंधित अनेक विचारधाराएँ या स्कूल विकसित हुए — जैसे फ्रेंच स्कूल, अमेरिकन स्कूल, रशियन स्कूल, कैनेडियन स्कूल, अफ्रीकन स्कूल, और चाइनीज़ स्कूल आदि। भारतीय साहित्य की विशिष्टता को ध्यान में रखते हुए, तुलनात्मक भारतीय साहित्य भी वर्तमान समय में तुलनात्मक साहित्य की एक स्वतंत्र धारा या स्कूल के रूप में उभरा है। इसने मुख्यत: विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्यों के गहन और सूक्ष्म अध्ययन पर बल दिया है। 1987 में स्थापित Comparative Literature Association of India जैसी संस्थाएँ विभिन्न भारतीय भाषाओं और उनके साहित्य पर संवाद और विमर्श को आगे बढ़ा रही हैं। यह संस्था समय-समय पर विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य को समेटते हुए संगोष्ठियों, कार्यशालाओं और चर्चाओं का आयोजन करती रही है।

1.6 तुलनात्मक साहित्य का स्वरूप

तुलनात्मक साहित्य का मूल स्वरूप इस बात पर आधारित है कि यह साहित्य को भाषा, संस्कृति, देश और काल की सीमाओं से परेरखकर देखता है। इसका केंद्रबिंदु केवल तुलना नहीं, बल्कि साहित्यिक परंपराओं, विचारों, रूपों और प्रभावों के साम्य और वैषम्य को समझना है। तुलनात्मक साहित्य एकसर्वांगीण दृष्टिकोण है, जो साहित्य को वैश्विक संदर्भ में देखने की मानसिकता प्रदान करता है। तुलनात्मक साहित्य के दो प्रमुख संप्रदाय—फ्रांसीसी-जर्मन विद्यालय और अमेरिकी विद्यालय—ने इसके स्वरूप और विशेषताओं को अलग-अलग दृष्टियों से स्पष्ट किया है। दोनों मतों के विद्वान इस बात पर सहमत हैं कि तुलनात्मक साहित्य का उद्देश्य साहित्यिक समस्याओं का अध्ययन करना है, जिसमें एक से अधिक साहित्यों का प्रयोग किया जाता है। इस अध्ययन की मूल पद्धति सचेतन तुलनात्मक दृष्टिकोण मानी जाती है, किंतु नरेश गुहा का मत है कि ''तुलना'' इसकी एकमात्र या मुख्य पद्धति नहीं है। वास्तव में जब तुलनात्मक साहित्य में विधा, रूपक, कथावस्तु के स्थानांतरण, किसी विदेशी लेखक के प्रभाव या स्वीकृति अथवा किसी दूरस्थ साहित्यिक छवि के अध्ययन की चर्चा होती है, तब तुलना का महत्व गौण हो जाता है।

तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन को केवल ऐतिहासिक या कालक्रमिक (Diachronic) दृष्टि से नहीं देखा जाना चाहिए, बल्कि इसे एक समकालिक (Synchronic) और कलात्मक दृष्टिकोण से एक स्वतंत्र तथा संपूर्ण साहित्यिक प्रणाली के रूप में समझा जाना चाहिए। जब तुलनात्मक साहित्य को इस रूप में ग्रहण किया जाता है, तभी तुलनात्मकतावादी आलोचक इसे जाति, काल और परिवेश के उत्पाद के बजाय एक सुसंगठित साहित्यिक संस्था के रूप में प्रतिष्ठित कर पाता है। इसका अर्थ यह नहीं कि तुलनात्मक साहित्य इतिहास, संस्कृति, राजनीति या अर्थव्यवस्था जैसे साहित्येतर आयामों को नकारता है। वास्तव में, यह इन सभी पहलुओं को स्वीकार करते हुए भी साहित्य के सौंदर्यपरक (aesthetic) और कलात्मक पक्षों को अधिक महत्व देता है। तुलनात्मक साहित्य का सही मार्ग यही है कि वह अतिशय कलावाद और अंध इतिहासवाद — दोनों के बीच एक मध्यम, संतुलित दृष्टिकोण अपनाए। जब यह संतुलन साहित्य की विशुद्ध साहित्यिकता के आधार पर स्थापित होता है, तभी यह एक स्वतंत्र और प्रमाणिक विद्याशाखा के रूप में स्वीकृत होता है।

तुलनात्मक साहित्य कोई सृजनात्मक या रचनात्मक साहित्य नहीं है, बल्कि यह साहित्य की समीक्षा या विवेचना की एक विशिष्ट पद्धति है। इसका उद्देश्य विभिन्न साहित्यिक परंपराओं, भाषाओं, संस्कृतियों और कलाओं के बीच संबंधों, समानताओं, भिन्नताओं तथा पारस्परिक प्रभावों का अध्ययन करना है। इस प्रकार

तुलनात्मक साहित्य साहित्य-अध्ययन की एक व्यापक और वैज्ञानिक पद्धति के रूप में देखा जाता है। विभिन्न विद्वानों ने तुलनात्मक साहित्य की प्रकृति और स्वरूप के संबंध में अपने-अपने विचार प्रस्तुत किए हैं —

1. **रेने वेलक (Rene Wellek) के अनुसार —**

   "It will study all literature from an international perspective, with a consciousness of the unity of all literary creation an experience. In this conception..... comparative literature is identical with the study of literature independent of linguistic, ethnic and political boundaries. It cannot be confined to a single method; description, characterization, interpretation, narration, explanation, evaluation, are used in its discourse just as much as comparison."

2. **हेनरी एच. रेमाक (Henry H. Remak) के मतानुसार —**

   "the comparison of one literature or others, and the comparison of literature with other spheres of human expression."

3. **आर्थर वीज़वांगर (Arthur B. March) के अनुसार —**

   "To examine...the phenomena of literature as a whole, to compare them, to group them, to classify them, to enquire into the causes of them, to determine the results of them-this is the true task of comparative literature."

इन सभी विचारों के आधार पर कहा जा सकता है कि तुलनात्मक साहित्य का स्वरूप अत्यंत व्यापक और समावेशी है। इसमें साहित्य की तुलनाएक भाषा के साहित्य से दूसरी भाषा के साहित्य की, एक युग के साहित्य से दूसरे युग के साहित्य की, एक देश की साहित्यिक परंपरा से दूसरे देश की परंपरा की और साहित्य की तुलना अन्य कलाओं और सामाजिक-मानवीय विद्याओं से की जाती है।

अर्थात तुलनात्मक साहित्य के मुख्य तत्व या स्वरूप इस प्रकार हैं —

1. यह सृजनात्मक नहीं, बल्कि विश्लेषणात्मक और विवेचनात्मक विधा है।
2. इसका उद्देश्य विभिन्न साहित्यिक परंपराओं में समानताओं, प्रभावों और अंतर्संबंधों की खोज करना है।
3. यह अंतरराष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाता है और भाषा, जाति, धर्म, राजनीति की सीमाओं से परे जाता है।
4. यह केवल साहित्य तक सीमित नहीं, बल्कि अन्य कलाओं — जैसे संगीत, चित्रकला, नाटक, समाजशास्त्र, इतिहास, दर्शन, मनोविज्ञान आदि — से भी संबंध स्थापित करता है।
5. तुलनात्मक साहित्य समग्रता में साहित्य का अध्ययन करने की एक वैज्ञानिक पद्धति है।

अपनी प्रगति जांचें

1. तुलनात्मक साहित्य से क्या अभिप्राय है?
2. तुलनात्मक साहित्य का स्वरूप कैसा है?
3. तुलनात्मक साहित्य की एक विशेषता बताइए।
4. तुलनात्मक साहित्य की एक प्रमुख पद्धति कौन-सी है?
5. तुलनात्मक साहित्य को एक स्वतंत्र अनुशासन क्यों माना जाता है?

1.7 तुलनात्मक साहित्य की पद्धति

तुलनात्मक साहित्य एक स्वतंत्र सृजनात्मक विधा नहीं, बल्कि साहित्य अध्ययन की एक विशिष्ट शोधात्मक पद्धति (Research Method) है। इसका उद्देश्य एक या एक से अधिक भाषाओं में रचित साहित्यिक कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन करके उनके समान तत्वों, प्रभावों, भिन्नताओं और संबंधों की पहचान करना है। तुलनात्मक साहित्य की पद्धति का प्रयोग करते समय अध्ययनकर्ता केवल रचनाओं की तुलना नहीं करता, बल्कि उनके ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक संदर्भों को भी ध्यान में रखता है। तुलनात्मक साहित्य की पद्धति को निम्नलिखित बिंदुओं में समझा जा सकता है —

1. **समानता–संबंधात्मक पद्धति**– इस पद्धति के अंतर्गत उन दो या अधिक ग्रंथों या लेखकों की तुलना की जाती है, जिनके बीच प्रत्यक्ष प्रभाव या संबंध नहीं होता। इन ग्रंथों का विश्लेषण उनके समान ऐतिहासिक या सामाजिक परिवेश के संदर्भ में किया जाता है। इस पद्धति में रचना की शैली, संरचना, विचार, कलात्मकता आदि पहलुओं की तुलना की जाती है।
2. **परंपरा–अध्ययन पद्धति**– इस पद्धति में किसी विशेष सांस्कृतिक, धार्मिक या साहित्यिक परंपरा के अंतर्गत आने वाले विभिन्न ग्रंथों या लेखकों के सृजन का अध्ययन किया जाता है। यह पद्धति साहित्य में प्रतिबिंबित सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराओं के तुलनात्मक विश्लेषण पर बल देती है। इसमें राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय दोनों स्तरों पर कृतियों का ऐतिहासिक और कालानुक्रमिक दृष्टि से अध्ययन किया जाता है।
3. **प्रभाव–अध्ययन पद्धति**– यह तुलनात्मक साहित्य की सबसे केंद्रीय और महत्वपूर्ण पद्धतिमानी जाती है। इस पद्धति में एक लेखक, ग्रंथ या साहित्यिक आंदोलन पर किसी अन्य लेखक, ग्रंथ या आंदोलन के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष दोनों प्रकार का हो सकता है। यह पद्धति दो मान्यताओं पर आधारित है —

   (क) प्रबल प्रभावक के प्रभाव से प्रभावित लेखक की मौलिकता दब जाती है।

   (ख) शक्तिशाली प्रभाव से प्रभावित लेखक की प्रतिभा और अधिक निखरकर सामने आती है।
4. **स्वीकृति–अध्ययन पद्धति**– इस पद्धति में किसी साहित्यिक कृति की लोकप्रियता, स्वीकृति और प्रसार का अध्ययन किया जाता है — विशेषकर तब जब कोई रचना अपने देश या भाषा से बाहर जाकर दूसरे देश या संस्कृति में प्रसिद्ध हो जाती है। यह पद्धति प्रभाव–अध्ययन की विस्तारित रूप है, परंतु केवल प्रभाव तक सीमित न रहकर अन्य प्रासंगिक कारकों को भी ध्यान में रखती है।

   कभी–कभी किसी रचना की प्रसिद्धि का कारण उसका साहित्यिक मूल्य न हो कर राजनीतिक, सामाजिक या सांस्कृतिक परिस्थितियाँ भी हो सकती हैं, जैसे — किसी लेखक को अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त होना।
5. **संबंधात्मक द्वंद्वात्मक पद्धति**– इस पद्धति में साहित्य का अध्ययन अन्य ज्ञान–शाखाओं — जैसे धर्म, दर्शन, इतिहास, राजनीति, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान आदि — के सहयोग से किया जाता है।

   इसका उद्देश्य साहित्य को जीवन और समाज के विविध पहलुओं से जोड़कर देखना है।

   इस पद्धति से साहित्य की समीक्षा अधिक जीवंत, वैज्ञानिक और सारगर्भित बनती है, क्योंकि यह साहित्य को सामाजिक यथार्थ और मानवीय चिंतन के साथ जोड़कर समझती है।
6. **तुलनात्मक पद्धति**– इसे तुलनात्मक साहित्य की मूल पद्धति माना जाता है। इस पद्धति में दो लेखकों या दो कृतियों की संरचना, विचार, शैली और सौंदर्य–बोध की व्यवस्थित तुलना की जाती है।

हालाँकि अन्य सभी पद्धतियों में तुलना का तत्व निहित है, परंतु इस पद्धति में तुलना ही अध्ययन का मुख्य उद्देश्य होता है। यह सामान्य तुलना से भिन्न है, क्योंकि यहाँ तुलना वैज्ञानिक और सुसंगठित ढंग सेकी जाती है। इस पद्धति के अंतर्गत न केवल रचनाओं की तुलना होती है, बल्कि उनके सौंदर्यशास्त्रीय, सांस्कृतिक और दार्शनिक पक्षों का भी गहन विश्लेषण किया जाता है।

1.8 सारांश

तुलनात्मक साहित्य आधुनिक साहित्यिक अध्ययन की एक महत्वपूर्ण शाखा है, जो विभिन्न भाषाओं, संस्कृतियों और परंपराओं के साहित्य का तुलनात्मक रूप से विश्लेषण करती है। इसका उद्देश्य साहित्य को राष्ट्रीय सीमाओं से परे एकवैश्विक मानवीय अनुभव के रूप में देखना है। तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि साहित्य केवल किसी देश, भाषा या समाज की अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि यह मानव जीवन की सार्वभौमिक भावनाओं, विचारों और संवेदनाओं का दर्पण है। इसकी परिभाषाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि यह साहित्यिक कृतियों के बीच समानताओं, भिन्नताओं, प्रभावों, परंपराओं और स्वीकृतियों का अध्ययन है, जिसका उद्देश्य विभिन्न साहित्यिक संस्कृतियों के बीच संवाद और संबंध स्थापित करना है। इसके स्वरूप की दृष्टि से तुलनात्मक साहित्य एकअंत:विषयी (interdisciplinary) और अंत: सांस्कृतिक (intercultural) अध्ययन है, जो इतिहास, समाजशास्त्र, दर्शन, राजनीति, मनोविज्ञान आदि से संबंध रखता है। इसकी विशेषताओं में अंतरराष्ट्रीय दृष्टि, बहुभाषिकता, सांस्कृतिक आदान-प्रदान, सौंदर्यबोध की एकता और साहित्य की सार्वभौमिकता प्रमुख हैं। पद्धति की दृष्टि से यह अध्ययन प्रभाव-अध्ययन, परंपरा-अध्ययन, स्वीकृति-अध्ययन, समानता-संबंधात्मक और तुलनात्मक पद्धतियों के माध्यम से किया जाता है। इन पद्धतियों से साहित्य के भीतर छिपे सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सौंदर्यात्मक तत्वों का विश्लेषण संभव होता है। अंत में कहा जा सकता है कि तुलनात्मक साहित्य एकस्वतंत्र एवं समन्वयशील विद्या शाखा है, जो न केवल विभिन्न साहित्यों के बीच संबंधों की खोज करती है, बल्कि समस्त विश्व साहित्य को एकएकीकृत मानवीय अभिव्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करती है। यही तुलनात्मक साहित्य का वास्तविक उद्देश्य और महत्त्व है।

K1.9 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर- तुलनात्मक साहित्य से अभिप्राय विभिन्न भाषाओं, देशों या संस्कृतियों के साहित्य का आपसी तुलना के माध्यम से अध्ययन करना है।

प्रश्न 2 का उत्तर- तुलनात्मक साहित्य का स्वरूप अंतर सांस्कृतिक, अंतर्भाषिक और अंतर्विषयी है, जो साहित्य को वैश्विक दृष्टि से देखता है।

प्रश्न 3 का उत्तर- तुलनात्मक साहित्य साहित्यिक कृतियों के बीच समानता, भिन्नता और प्रभावों के अध्ययन पर आधारित होता है।

प्रश्न 4 का उत्तर- प्रभाव-अध्ययन पद्धति, जिसमें एक लेखक या ग्रंथ पर दूसरे के प्रभाव का विश्लेषण किया जाता है।

प्रश्न 5 का उत्तर- तुलनात्मक साहित्य को एक स्वतंत्र अनुशासन माना जाता है क्योंकि यह साहित्य को राष्ट्रीय सीमाओं से ऊपर उठकर वैश्विक स्तर पर एकीकृत दृष्टि से देखता है।

5 1.10 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- वेलैक, र. एवं वारन, ए. (1956). Theory of Literature. New York: Harcourt, Brace and World.

- रेमाक, हेनरी एच. (1961). Comparative Literature: Method and Perspective. Carbondale: Southern Illinois University Press.
- बासनेट, सुसान (1993). Comparative Literature: A Critical Introduction. Oxford: Blackwell Publishers.
- डेमियन, पीटर (2008). Comparative Literature and Literary Theory. London: Routledge.
- क्लॉड पिशोआ (1982). Comparative Literature in the Twentieth Century. New York: Doubleday.
- मेलोन, डेविड एच. (1971). Modern Theories of Comparative Literature. Oxford: Oxford University Press.
- गुहा, नरेश (1977). तुलनात्मक साहित्य का स्वरूप और समस्या. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- मिश्र, रमाकांत (1989). तुलनात्मक साहित्य के सिद्धांत. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन.
- शर्मा, रामविलास (1995). तुलनात्मक साहित्य और संस्कृति अध्ययन. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन.
- तिवारी, शिवकुमार (2001). तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन. वाराणसी: भारतीय विद्या प्रकाशन.
- सिंह, सुरेश (2010). तुलनात्मक साहित्य: स्वरूप और संदर्भ. दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ.
- चौबे, विश्वनाथ (2005). तुलनात्मक साहित्य: सिद्धांत और व्यवहार. नई दिल्ली: ज्ञानपीठ.
- पांडेय, राजेन्द्र (2012). भारतीय तुलनात्मक साहित्य का विकास. पटना: छात्र साहित्य भवन.

M 1.11 अभ्यास प्रश्न

क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए

1. तुलनात्मक साहित्य से क्या अभिप्राय है?
2. रिने वेलैक (Rene Wellek) ने तुलनात्मक साहित्य की क्या परिभाषा दी है?
3. तुलनात्मक साहित्य के स्वरूप के निर्माण में किन दो प्रमुख संप्रदायों का योगदान रहा है?
4. तुलनात्मक साहित्य की कौन-सी पद्धति को मुख्य पद्धति माना गया है?
5. प्रभाव-अध्ययन पद्धति से आप क्या समझते हैं?

ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए

1. तुलनात्मक साहित्य का अर्थ स्पष्ट कीजिए तथा उसके अध्ययन की आवश्यकता पर चर्चा कीजिए।
2. तुलनात्मक साहित्य की विभिन्न परिभाषाओं का विवेचन कीजिए तथा उनका तुलनात्मक विश्लेषण कीजिए।
3. तुलनात्मक साहित्य के स्वरूप की व्याख्या करते हुए फ्रांसीसी-जर्मन और अमेरिकी विद्यालयों की दृष्टियों का वर्णन कीजिए।
4. तुलनात्मक साहित्य की प्रमुख पद्धतियों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
5. तुलनात्मक साहित्य को एक स्वतंत्र विद्या शाखा के रूप में स्थापित करने वाले तत्त्वों का विश्लेषण कीजिए।

****

इकाई-2 तुलनात्मक साहित्य की प्रयोग-रीति और विशेषताएँ

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य
2.2 प्रस्तावना
2.3 तुलनात्मक साहित्य की प्रयोग-रीति
  2.3.1. वस्तुतात्त्विक अध्ययन
  2.3.2. प्रकार अध्ययन
  2.3.3. शैली अध्ययन
  2.3.4. प्रभाव अध्ययन
  2.3.5. इतिहासमूलक अध्ययन
2.4 तुलनात्मक साहित्य की विशेषताएँ
2.5 सारांश
2.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
2.7 अधिक जानने के लिए पढ़ें
2.8 अभ्यास प्रश्न

2.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

- साहित्य की मुख्य विषय-वस्तुयाथीम की तुलना एवं विश्लेषण कर पाएंगे।
- विभिन्न साहित्यिक रूपोंया शैलियों की संरचना व विकास की तुलना किस प्रकार किया जाता है, उसे समझेंगे।
- लेखकों की भाषिक अभिव्यक्ति और व्यक्तिगत शैली के अंतर को जानेंगे।
- एक साहित्य का दूसरे साहित्य पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभावको पहचानेंगे।
- साहित्य के ऐतिहासिक विकास और विभिन्न साहित्यिक परंपराओं का तुलनात्मक अध्ययन करना सीखेंगे।
- तुलनात्मक साहित्य की मुख्य विशेषताओं की पहचान होगी।

2.2 प्रस्तावना

साहित्य मानवीय अनुभूतियों, कल्पनाओं और अनुभवों का ऐसा दस्तावेज़ है जो सीमा, भाषा, जाति और संस्कृति से परे जाकर एक साझा मानवीय चेतना का निर्माण करता है। इसी कारण विभिन्न भाषाओं के साहित्यिक ग्रंथ आपस में संवाद करते हैं, एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं और समय-समय पर सामाजिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तनों का प्रतिबिंब प्रस्तुत करते हैं। इस व्यापक संबंध को समझने और साहित्य की सार्वभौमिकता को पहचानने के लिए जिस विधा का विकास हुआ, उसे तुलनात्मक साहित्य कहा जाता है। तुलनात्मक साहित्य केवल दो या अधिक भाषाओं के साहित्य की तुलना मात्र नहीं है; बल्कि यह विभिन्न कालों, संस्कृतियों, परंपराओं और कलात्मक रूपों के बीच छिपे संबंधों को उजागर करने की एक वैज्ञानिक पद्धति है। इस अध्ययन में यह देखा जाता है कि भिन्न भाषाओं के साहित्य कैसे समान मानवीय मूल्यों, चिंताओं, अनुभूतियों और कलात्मक प्रवृत्तियों को अलग-अलग परिवेश में किस रूप में अभिव्यक्त करते हैं। इस प्रक्रिया

में अनेक पद्धतियाँ या प्रयोग-रीतियाँ विकसित हुई हैं, जिनमें पाँच प्रमुख रूप—वस्तुतात्त्विक अध्ययन, प्रकार अध्ययन, शैली अध्ययन, प्रभाव अध्ययन तथा इतिहासमूलक अध्ययन। इन सबके अतिरिक्त, तुलनात्मक साहित्य की अपनी कुछ विशिष्ट विशेषताएँ भी हैं—जैसे बहु-विषयक दृष्टिकोण, अंतः सांस्कृतिक संवाद, ऐतिहासिक व सामाजिक संबंधों की खोज, तथा साहित्य को एक वैश्विक मानवीय अनुभव के रूप में देखने की प्रवृत्ति। यही विशेषताएँ तुलनात्मक साहित्य को आधुनिक साहित्यिक अध्ययन की एक महत्वपूर्ण और स्वतंत्र विधा के रूप में प्रतिष्ठित करती हैं। तुलनात्मक साहित्य की प्रयोग-रीतियाँ और विशेषताएँ मिलकर न केवल साहित्यिक कृतियों के भीतर छिपे बहुआयामी संबंधों को उजागर करती हैं, बल्कि साहित्य को वैश्विक मानवीय चेतना के दर्पण के रूप में भी स्थापित करती हैं। प्रस्तुत इकाई में हैं तुलनात्मक साहित्य की प्रयोग-रीतियाँ और विशेषताओं के बारे में उल्लेख किया गया हैं।

2.3 तुलनात्मक साहित्य की प्रयोग-रीति

तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन केवल दो या अधिक भाषाओं के साहित्य की तुलना मात्र नहीं है, बल्कि यह विभिन्न संस्कृतियों, विचारधाराओं, समाजों और युगों के साहित्यिक संबंधों का विश्लेषण भी है। तुलनात्मक साहित्य की अध्ययन में व्यवहार होने वाले प्रयोग-रीति निम्नलिखित अध्ययनों के द्वारा समझी जा सकती है—

1. वस्तुतात्त्विक अध्ययन
2. प्रकार अध्ययन
3. शैली अध्ययन
4. प्रभाव अध्ययन
5. इतिहासमूलक अध्ययन

2.3.1 वस्तुतात्त्विक अध्ययन-

प्रसिद्ध Oxford Advanced Learner's Dictionary (7th edition) में 'Theme' शब्द का अर्थ ''किसी भी भाषण, लेखन या कलात्मक कृति का मुख्य विचार या केंद्रीय विषय'' बताया गया है। अर्थात् किसी रचना या अभिव्यक्ति का जो मूल तत्व, विचार या भावना है, वही उसका 'थीम' कहलाता है। कथा साहित्य के संदर्भ में अंग्रेज़ी शब्द 'Theme' का उपयुक्त हिंदी प्रतिशब्द 'वस्तु' माना गया है। इसलिए 'Thematology' जो 'Theme' के सैद्धांतिक अध्ययन का नाम है इसका अनुवाद 'वस्तुतात्त्विक अध्ययन' के रूप में किया गया है। कथासाहित्य जैसे कहानी, उपन्यास, नाटक, महाकाव्य, गीत आदि की तुलना के क्षेत्र में 'वस्तु' या 'Theme' का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, क्योंकि यही किसी साहित्यिक रचना का केंद्रीय विचार होता है। ध्यान देने योग्य है कि 'कथावस्तु' (Subject Matter) और 'वस्तु' (Theme) दोनों का दायरा समान नहीं है। कथावस्तु में कथा की समग्र सामग्री — मुख्य कथा, उपकथाएँ, प्रसंग और घटनाएँ शामिल होती हैं, जबकि 'वस्तु' उसी कथावस्तु का मूल विचार या केंद्र बिंदु होता है, जिस पर सम्पूर्ण कथा की रचना आधारित रहती है। उदाहरणस्वरूप- प्रेमचंद के 'गोदान' की कथावस्तु ग्रामीण जीवन की सामाजिक जटिलताओं से जुड़ी है, परंतु उसका थीम सामाजिक विषमता और किसान के संघर्ष पर केंद्रित है।

तुलनात्मक साहित्य के क्षेत्र में 'वस्तुतात्त्विक अध्ययन' को एक विशिष्ट और नवीन शाखा के रूप में माना जाता है। 'Thematology' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम अमेरिकी तुलनात्मक साहित्यकार हेनरी लेविन (Henry Levin) ने किया था। फ्रांसीसी तुलनात्मक अध्ययन पद्धति के अनुसार, वस्तुतात्विक अध्ययन साहित्यिक कृतियों का ऐसा तुलनात्मक विश्लेषण है, जिसमें विभिन्न देशों के साहित्य को उनके 'थीम' या 'विषय-वस्तु' के आधार पर तुलना की जाती है। इस दृष्टिकोण से साहित्यिक विषयों के पारस्परिक संबंधों का

अध्ययन किया जाता है। प्रारंभिक काल में वस्तुतात्विक अध्ययन केवल साहित्यिक विषय या कुछ विशेष प्रतीकों और परिस्थितियों के विश्लेषण तक सीमित था, किंतु समय के साथ इसकी दृष्टि और क्षेत्र दोनों का विस्तार हुआ। आज इस अध्ययन में यह देखा जाता है कि समान प्रतीक या विषय विभिन्न स्थानों, समयों और संस्कृतियों के अनुसार कैसे अलग-अलग अर्थों में अभिव्यक्त होते हैं। वस्तुतात्विक अध्ययन अब केवल साहित्यिक सामग्री तक सीमित नहीं रहा, बल्कि इसमें सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक संदर्भों का भी समावेश हो गया है। आलोचक के. चेलोप्पोन (K. Chelloppon) के अनुसार, साहित्य में पाए जाने वाले प्रतीक और परिस्थितियाँ अक्सर सांस्कृतिक चिह्नों के रूप में प्रकट होती हैं, ये विभिन्न युगों, समाजों और व्यक्तियों द्वारा भिन्न रूप में संरक्षित और व्यक्त की जाती हैं। इसलिए वस्तुतात्विक अध्ययन यह समझने का प्रयास करता है कि समान विषय या प्रतीक कैसे विविध सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों के अनुसार बदलते अर्थ धारण करते हैं। वस्तुतात्विक अध्ययन तुलनात्मक साहित्य का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है, जो विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों के साहित्य में निहित मुख्य विचारों, भावनाओं, प्रतीकों और विषयों का तुलनात्मक विश्लेषण करता है। इसके माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि मानव जीवन से जुड़े समान अनुभव और भाव विभिन्न समाजों और कालों में अलग-अलग रूपों में प्रकट होते हैं, जो साहित्य को एक वैश्विक और मानवीय आयाम प्रदान करते हैं।

2.3.2 प्रकार अध्ययन-

अंग्रेज़ी शब्द 'Genre' की उत्पत्ति फ्रांसीसी भाषा से हुई है। Oxford Advanced Learner's Dictionary (7th edition) में 'Genre' का अर्थ इस प्रकार दिया गया है- "A particular type or style of literature, art, film or music that you can recognize because of its special features." अर्थात, किसी साहित्यिक, कलात्मक, फिल्मी या संगीतमय कृति की वह विशिष्ट शैली या प्रकार जिससे उसकी पहचान संभव हो सके। दूसरे शब्दों में, 'Genre' का आर्थिक संकेत किसी कला या साहित्य के वर्गीकरण, विभाजन अथवा श्रेणीकरण की ओर होता है। इसलिए यह शब्द साहित्य के प्रकार और शैली दोनों से गहराई से जुड़ा हुआ है। तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रकार अध्ययन को एक विशेष स्थान प्राप्त है। सामान्य अर्थ में प्रकार अध्ययन का उद्देश्य विभिन्न भाषाओं के साहित्य में पाए जाने वाले साहित्यिक रूपों जैसे- कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि का तुलनात्मक विश्लेषण करना है। तुलनात्मक अध्ययन में यद्यपिशैली अध्ययन एक स्वतंत्र शाखा के रूप में स्वीकार किया गया है, फिर भी प्रकार अध्ययन में भी शैली का विशेष महत्त्व होता है, क्योंकि किसी भी साहित्यिक रूप का वास्तविक स्वरूप उसकी शैली से ही निर्धारित होता है। वास्तव में, शैली की विविधता ही विभिन्न प्रकार के साहित्यिक रूपों को जन्म देती है। इसी कारण 'Genology' में साहित्य के विभिन्न प्रकारों का अध्ययन करते समय शैली और प्रकार दोनों को एक साथ समाहित करके देखा जाता है। प्रकार अध्ययन में सामान्यत: दो प्रकार की पद्धतियाँ जुड़े रहते हैं-

क) सौंदर्यमूलक अध्ययन- प्रकार अध्ययन की प्रथम अवस्था में अध्ययनकर्ता को प्राप्त साहित्यिक प्रकारों की सौंदर्यमूलक विशेषताओं या नंदनात्मक का अध्ययन करना होता है। नंदनात्मक अध्ययन का तात्पर्य है- रचना में निहित सौंदर्य, भाव-गहनता, कलात्मक अभिव्यक्ति और सौंदर्यबोध को पहचानना तथा उसका विश्लेषण करना। इसमें यह देखा जाता है कि किसी साहित्यिक प्रकार के माध्यम से लेखक किस प्रकार सौंदर्य, भावना और कलात्मक अनुभव का संप्रेषण करता है।

ख) ऐतिहासिक अध्ययन- दूसरी अवस्था में उस विशेष साहित्यिक प्रकार की इतिहास-निर्धारण प्रक्रिया की जाती है, अर्थात् उस प्रकार की उत्पत्ति, विकास, परिवर्तन और उसके समय-परिवेश से संबंध का विश्लेषण किया जाता है। इस ऐतिहासिक दृष्टि से यह समझना आवश्यक है कि किसी प्रकार का विकास किन साहित्यिक परंपराओं, सांस्कृतिक संदर्भों या अन्य भाषाओं से प्रभावित होकर हुआ है।

इस द्विविध प्रक्रिया कोनीराजना महंत बेजबोरा जी की पुस्तक ''तुलनात्मक साहित्य: सिद्धांत और प्रयोग'' (पृष्ठ 37) में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है- "Genology is in the first place the aesthetic recognition of the genres available to a tradition and in the second the tracing of history of the particular genres. For both the aesthetic recognition and tracing of the history, it is imperative that more than one literature is consulted."

तुलनात्मक साहित्य के विविध प्रायोगिक कौशलों में प्रकार अध्ययन एक प्रमुख स्थान रखता है। इस अध्ययन में शोधकर्ता को पारंपरिक और शास्त्रीय स्तर पर किए जाने वाले केवल यांत्रिक विश्लेषण से आगे बढ़ना होता है। यदि अध्ययनकर्ता केवल परंपरागत पद्धति पर ही निर्भर रहेगा, तो तुलनात्मक साहित्य के प्रकार अध्ययन का वास्तविक उद्देश्य अधूरा रह जाएगा। प्रकार अध्ययन का लक्ष्य केवल साहित्यिक रूपों का वर्गीकरण करना नहीं, बल्कि यह समझना भी है कि भिन्न भाषाओं, संस्कृतियों और कालों में साहित्यिक रूपों का सौंदर्य, उनका ऐतिहासिक विकास और उनकी शैलीगत विशेषताएँ कैसे एक-दूसरे से प्रभावित होती हैं। यही तुलनात्मक दृष्टि किसी भी साहित्य को राष्ट्रीय सीमाओं से परे, एक वैश्विक और मानवीय अर्थ प्रदान करती है।

2.3.3 शैली अध्ययन-

शैली से ही किसी रचना या कृति के प्रकार (Genre) का निर्माण होता है। कई बार शैली को ''प्रकार अध्ययन (Genology)'' के एक अंग के रूप में देखा जाता है, जबकि कुछ विद्वान इसे एक स्वतंत्र शाखा मानकर साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं। 'शैली' शब्द का अर्थ केवल साहित्य तक सीमित नहीं है; यह किसी भी वस्तु की अभिव्यक्ति की रीति, रूप, निपुणता और कलात्मक पद्धतिको व्यक्त करता है। जैसे — गृह-सज्जा, पुष्प-सज्जा, स्थापत्य, मूर्तिकला, चित्रकला, नृत्य, संगीत या अभिनय आदि की अपनी-अपनी विशिष्ट शैली होती है। साहित्यिक दृष्टि से, 'शैली' का आशय है — विचारों और भावनाओं को भाषा के माध्यम से विशिष्ट ढंग से प्रस्तुत करने की पद्धति। इस संदर्भ मेंहॉकेट और अब्रैम्स की परिभाषाएँ महत्वपूर्ण हैं-

हॉकेट के अनुसार- "The term 'style' is not easy to define precisely. Roughly speaking, two utterance in the same language which convey approximately the same information, but which are different in their linguistic structure, can be different in style."

अब्रैम्स के अनुसार- "Style has traditionally been defined as the manner of linguistic expression in prose or verse as how speakers or writers say whatever it is that way."

अर्थात, मनोभावों और विचारों को भाषा के माध्यम से अपने विशिष्ट ढंग से व्यक्त करने की भिन्नता को शैली (Style) कहा जा सकता है। लेखक-विशेष के अनुसार शैली में अंतर पाया जाता है; इसी प्रकार साहित्य के विभिन्न प्रकारों (Genres) में भी शैली की भिन्नता देखी जाती है। यहाँ तक कि एक ही प्रकार के साहित्य में भी शैलीगत अंतर संभव है। इसलिए तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन में शैलीगत पक्ष को विशेष महत्त्व दिया जाता है। तुलनात्मक अध्ययन में सामान्यत: शैली के तीन प्रमुख आयामों पर विचार किया जाता है—

1. लेखक की अभिव्यक्ति की विशिष्टता (Individual Expression or Idiosyncrasy) — लेखक अपने विचारों और भावों को किस प्रकार अभिव्यक्त करता है, यह उसकी शैली की पहचान होती है।
2. अभिव्यक्ति की तकनीक (Techniques of Expression) — भाषा, प्रतीक, उपमा, वाक्य-विन्यास आदि के माध्यम से शैली का निर्माण होता है।
3. शैली का परम रूप (Style in Absolute Sense) — यह वह रूप है जिसमें किसी रचना या लेखक की संपूर्ण कलात्मकता और भाषिक विशिष्टता प्रकट होती है।

इन तीनों पक्षों के माध्यम से विभिन्न साहित्यिक प्रकारों (Genres) के तुलनात्मक अध्ययन में शैलीगत दृष्टिकोण को महत्व दिया जाता है। इस प्रकार, शैली अध्ययन तुलनात्मक साहित्य के प्रायोगिक कौशल (Practical Approach) का एक आवश्यक और प्रभावशाली अंग है, जो विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों की साहित्यिक अभिव्यक्तियों के बीच साम्य और भिन्नता को समझने में सहायता करता है।

5 महत्वपूर्ण बिंदु

प्रभाव-अध्ययन में कुछ मुख्य उपविधाएँ (Sub-categories) मानी जाती हैं—

1. अनुकरण (Imitation)
2. प्रभाव (Impact)
3. ग्रहण / संग्रहण (Reception)
4. अनुकूलन (Adaptation)
5. स्ववर्त्तन (Survival) आदि।

2.3.4 प्रभाव अध्ययन-

मानव समाज के विकास की शुरुआत से ही विभिन्न जातियों, भाषाओं और संस्कृतियों के बीच आदान-प्रदान और प्रभाव का एक स्वाभाविक क्रम चलता आ रहा है। यह प्रक्रिया कोई नई नहीं है—मानव सभ्यता का इतिहास ही बताता है कि एक संस्कृति ने हमेशा दूसरी संस्कृति को किसी न किसी स्तर पर प्रभावित किया है और यह संबंध केवल ''उच्च'' से ''निम्न'' की ओर ही नहीं बहता; कई बार अपेक्षाकृत कम प्रतिष्ठित परंपराएँ भी अधिक प्रतिष्ठित साहित्य या संस्कृतियों को गहराई से प्रभावित करती हैं। साहित्य संसार भी इसी व्यापक प्रभाव-प्रवाह का हिस्सा है। विभिन्न साहित्यिक धाराएँ, रूप और भाषाएँ—एक-दूसरे से लगातार प्रभावित होती रहती हैं। प्रभाव का यह आदान-प्रदान न केवल एक ही भाषा के भीतर बल्कि विभिन्न भाषाओं और देशों के साहित्य के बीच भी होता है। उदाहरण के लिए—

- आधुनिक साहित्य पर प्राचीन साहित्य का प्रभाव,
- भारतीय साहित्य पर विदेशी साहित्य (जैसे संस्कृत, फारसी, अंग्रेज़ी) का प्रभाव—ये सभी इसी प्रक्रिया के प्रमाण हैं।

साहित्यिक प्रभाव कई स्तरों पर दिखाई देता है कहीं यह रचना को सृजनात्मक ऊर्जा देता है, कहीं अनुकरण की ओर ले जाता है, कहीं ग्रहण (Assimilation) या परिवर्तन (Adaptation) का रूप लेता है। तुलनात्मक साहित्य में इस प्रभाव-अध्ययन (Impact Study) को एक महत्वपूर्ण प्रायोगिक विधि माना जाता है, क्योंकि इससे यह समझा जा सकता है कि एक साहित्य दूसरे साहित्य से किस प्रकार और किन माध्यमों से जुड़ता है। तुलनात्मक साहित्य का प्रभाव-अध्ययन यह खोजता है कि— ''एक कृति के सूक्ष्म तत्त्व, उसकी शैली, उसके भाव और उसके तकनीकी पहलू''। इसी प्रक्रिया को समझने के लिए प्रभाव-अध्ययन में कुछ मुख्य उपविधाएँ (Sub-categories) मानी जाती हैं—

1. अनुकरण (Imitation)
2. प्रभाव (Impact)
3. ग्रहण / संग्रहण (Reception)
4. अनुकूलन (Adaptation)
5. स्ववर्त्तन (Survival) आदि।

1. **अनुकरण (Imitation)**- जब किसी साहित्यकार को किसी अन्य साहित्य से गहरा आकर्षण होता है और वह जितना संभव हो सके उतने कम परिवर्तन के साथउसी रूप, शैली या सामग्री को अपने साहित्य में प्रयोग करता है, तो इसे अनुकरण कहते हैं। यह प्रक्रियासचेत, सावधानीपूर्वक और इच्छापूर्वक होती है। इसमें साहित्यकार मूल कृति की शैली या भाव-विन्यास को अपनाता है।
2. **प्रभाव (Impact)**- दिखने में अनुकरण और प्रभाव एक जैसे लग सकते हैं, परन्तु दोनों में एक महत्वपूर्ण अंतर है। अनुकरण में जागरूक अनुकरण शामिल होता है परंतु प्रभाव में प्रत्यक्ष नकल की चेतन प्रक्रिया नहीं होती। यह अधिक सूक्ष्म होता है—किसी लेखक का मन, उसका साहित्यिक दृष्टिकोण, उसका विचार-क्षेत्र किसी अन्य साहित्य से गहराई से प्रेरित होता है।
3. **ग्रहण / संग्रहण (Reception)**- जब किसी साहित्य को किसी अन्य साहित्य की किसी श्रेष्ठ कला, विचार या शैली से गहरा आकर्षण होता है और वह उसे अपनाकर अपनी रचनाओं में प्रयोग करने लगता है, तो इसे ग्रहण कहते हैं। यह ग्रहणसचेत भी हो सकता है और अचेत भी। प्रभाव-अध्ययन में जहाँ ''प्रभावक'' (Influencer) प्रधान होता है, वहीं ग्रहण-अध्ययन में ''प्रभावित'' (Receiver) का महत्व बढ़ जाता है।
4. **अनुकूलन (Adaptation)**- कभी-कभी एक साहित्यकार किसी अन्य कृति, कथा, शैली या साहित्यिक धारा को अपनी सांस्कृतिक या सामाजिक परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित कर देता है और एक नई रचना रचता है। इसे अनुकूलन कहते हैं। यह मूल कृति का रूपांतरण भी हो सकता है। यह प्रक्रिया अनेक फिल्मों, नाटकों और उपन्यासों में देखी जाती है। तुलनात्मक साहित्य में अनुकूलन का अध्ययन यह समझने के लिए किया जाता है कि साहित्य किस प्रकार परिवर्तित होकर नए समाज या भाषा में जीवित रहता है।
5. **स्ववर्त्तन (Survival)**- स्ववर्त्तन का अर्थ है— किसी साहित्यिक तत्व या विचार का विभिन्न कालों में लगातार बने रहना और नए-नए लेखकों को प्रभावित करना। इसका आशय यह है कि— साहित्य में प्रस्तुत अधिकांश विषय, भाव, रूप और विचार पहले से ही मौजूद होते हैं। नई रचनाएँ इन पुराने विचारों को नए ढंग से फिर से प्रस्तुत करती हैं। इसलिए कुछ साहित्यिक विषय और प्रतिमान (Motifs) लगातार ''जीवित'' रहते हैं। स्ववर्त्तन बताता है कि—किस प्रकार एक ही साहित्यिक तत्व कई सदियों तक नए-नए रूपों में उभरता है और विभिन्न समयों के लेखकों में प्रभाव बनाकर जीवित रहता है।

2.3.5 इतिहासमूलक अध्ययन-

तुलनात्मक साहित्य की प्रायोगिक विधियों में इतिहास-आधारित अध्ययन (Historiographical Study) को विशेष महत्व दिया गया है। अंग्रेज़ी में इसके लिए Historiography शब्द का प्रयोग होता है। Oxford शब्दकोश के अनुसार इसका अर्थ है— 'the study of writing about history' और Chambers शब्दकोश में इसे— 'the art or employment of writing history'। इन दो अर्थों में—

1. इतिहास लेखन की प्रक्रिया
2. इतिहास लेखन का अध्ययन, दोनों ही शामिल हैं। तुलनात्मक साहित्य में मुख्यत: दूसरे अर्थ, अर्थात इतिहास लेखन के अध्ययन को अपनाया जाता है।

साहित्य के इतिहास- आधारित अध्ययन का उद्देश्य केवल घटनाओं का वर्णन करना नहीं है, बल्कि साहित्य की विकास-यात्रा, उसके स्रोत, उसके प्रभाव-विस्तार, और विभिन्न साहित्यिक धाराओं के आपसी संबंधों को समझना है। प्रसिद्ध विद्वानरेने वेल्लेक (Rene Wellek) ने इतिहास होने की प्रक्रिया को ''साहित्यिक विकास की अवधारणा'' कहा है। उनका मानना है कि किसी भी साहित्य के इतिहास का अध्ययन करने से पहले यह स्पष्ट होना आवश्यक है कि— 'इतिहास के कौन-कौन से अंगों को शामिल किया जाएगा, साहित्य के

विकास को किन आधारों पर समझा जाएगा और कौन-से बाह्य एवं आंतरिक कारक साहित्य को प्रभावित करते हैं'।

तुलनात्मक साहित्य और साहित्य का इतिहास-अध्ययन एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं।

तुलनात्मक अध्ययन तभी सार्थक हो सकता है जब—विभिन्न साहित्यिक परंपराओं का इतिहास, रूपों का विकास, विषय-वस्तु का परिवर्तन और भाषाओं के बीच प्रभाव-सम्बंध सुस्पष्ट रूप से समझ लिए जाएँ। यदि हम किसी साहित्य का वास्तविक विकास जानना चाहते हैं, तो केवल उसी साहित्य तक सीमित रहकर निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते। इसके लिए आवश्यक है कि— एक से अधिक साहित्य का परस्पर अध्ययन किया जाए, यह देखा जाए कि किन कारकों (सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक) ने साहित्य को प्रभावित किया, किन धाराओं, परंपराओं और लेखकों ने एक-दूसरे से प्रेरणा ली और समय के साथ साहित्य में कौन से परिवर्तन आए। यही कारण है कि इतिहास-आधारित अध्यापन तुलनात्मक साहित्य की नींव को मजबूत करता है। इससे साहित्य केवल ''अपनी भाषा तक सीमित ज्ञान'' न रहकर एक व्यापक सांस्कृतिक विरासत के रूप में उभरता है।

अपनी प्रगति जांचें

1. तुलनात्मक साहित्य की प्रयोग-रीति का मुख्य उद्देश्य क्या है?
2. वस्तुतात्विक अध्ययन किस पर केंद्रित होता है?
3. प्रकार अध्ययन (Genology) में क्या किया जाता है?
4. प्रभाव अध्ययन का प्रमुख लक्ष्य क्या है?
5. तुलनात्मक साहित्य की एक प्रमुख विशेषता क्या है?

2.4 तुलनात्मक साहित्य की विशेषताएँ

तुलनात्मक साहित्य की मुख्य विशेषता यह है कि यह विभिन्न भाषाओं, संस्कृतियों, कालखंडों और साहित्यिक परंपराओं के बीच संबंधों को उजागर करता है। यह बहु-विषयी दृष्टिकोण अपनाता है, जिसमें इतिहास, समाज, संस्कृति, राजनीति, मनोविज्ञान और कला—सभी को विश्लेषण में शामिल किया जाता है। इसका लक्ष्य मात्र तुलना न होकर साहित्यिक प्रवृत्तियों, प्रभावों, आदर्शों और वैश्विक साहित्यिक संवाद को समझना है। तुलनात्मक साहित्य राष्ट्रीय सीमाओं से ऊपर उठकर अंतरराष्ट्रीय साहित्यिक बोध विकसित करता है और साहित्य की सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों को रेखांकित करता है। इस दृष्टी को ध्यान में रखकर तुलनात्मक साहित्य की विशेषताओं को इस प्रकार देख सकते हैं-

1. अंतरराष्ट्रीय दृष्टिकोण

   तुलनात्मक साहित्य का सबसे प्रमुख गुण इसकी वैश्विक दृष्टि है। यह किसी एक देश, भाषा या संस्कृति तक सीमित नहीं रहता, बल्कि विभिन्न राष्ट्रों और भाषाओं के साहित्य को एक-दूसरे से जोड़ता है। इसका उद्देश्य साहित्य के माध्यम से मानवता की साझा अनुभूतियों को समझना है।

2. बहुभाषिकता और बहुसांस्कृतिकता

   इस अध्ययन में विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों के साहित्य का तुलनात्मक विश्लेषण किया जाता है। इससे साहित्यिक प्रवृत्तियों, विषयों, प्रतीकों और शैलियों की विविधता सामने आती है।

3. अंत: विषयी स्वरूप

   तुलनात्मक साहित्य केवल साहित्यिक विश्लेषण तक सीमित नहीं है। यह इतिहास, समाजशास्त्र,

मनोविज्ञान, दर्शन, राजनीति, अर्थशास्त्र और संस्कृति जैसे विषयों से जुड़कर साहित्य को व्यापक दृष्टि से देखता है।

4. सौंदर्यपरक दृष्टिकोण

   हालाँकि यह ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भों को स्वीकार करता है, परंतु इसका मुख्य ध्यान साहित्य की कलात्मकता, शैली और सृजनात्मक सौंदर्य पर रहता है।

5. सांस्कृतिक संवाद और सेतु-स्थापना

   यह विभिन्न साहित्यों के बीच सेतु का कार्य करता है। तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से एक देश के साहित्यिक विचार और मूल्य दूसरे देशों में प्रसारित होते हैं, जिससे सांस्कृतिक संवाद संभव होता है।

6. समानता और भिन्नता की खोज

   तुलनात्मक साहित्य का मुख्य कार्य विभिन्न साहित्यों में विषय, रूप, शैली, विचारधारा और अभिव्यक्ति के स्तर पर समानता और भिन्नता की पहचान करना है।

7. समकालिक और ऐतिहासिक दृष्टि

   यह एक ही काल में विभिन्न साहित्यों के समानांतर अध्ययन और विभिन्न युगों में साहित्यिक प्रभावों के क्रमिक विकास— दोनों को समाहित करता है।

8. स्वतंत्र अनुशासन

   तुलनात्मक साहित्य अब केवल एक सहायक विषय नहीं, बल्कि अपनी पद्धति, उद्देश्य और दृष्टिकोण के कारण एक स्वतंत्र विद्याशाखा के रूप में स्थापित हो चुका है।

9. मानवतावादी दृष्टिकोण

   यह साहित्य को मानव जीवन की सार्वभौमिक अभिव्यक्ति मानता है। इसका लक्ष्य है — भाषा, जाति या देश की सीमाओं से ऊपर उठकर साहित्य में निहित मानवीय एकता और संवेदना को पहचानना।

10. समीक्षात्मक और विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति

    तुलनात्मक साहित्य केवल तुलना नहीं करता, बल्कि साहित्यिक ग्रंथों का गहराई से विश्लेषण करके उनके सौंदर्य, अर्थ और सांस्कृतिक मूल्य को उजागर करता है।

2.5 सारांश

तुलनात्मक साहित्य की प्रयोग-रीति मूलत: विभिन्न भाषाओं और साहित्यिक परंपराओं के बीच गहरे संबंधों को समझने की एक सुसंगत प्रक्रिया है, जिसमें वस्तुतात्विक, प्रकारात्मक, शैलीगत, प्रभावात्मक और इतिहासमूलक—इन पाँचों रूपों का अध्ययन मिलकर साहित्य के व्यापक स्वरूप को उद्घाटित करता है। वस्तुतात्विक अध्ययन किसी रचना के मूल तत्वों, विचारों और उसके सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों की तुलना करता है, तो प्रकार अध्ययन विभिन्न साहित्यिक विधाओं और उनके विकास को समानताओं व भिन्नताओं के आधार पर समझने में सहायता करता है। शैली अध्ययन लेखकों, भाषाओं और साहित्यिक परंपराओं की अभिव्यक्ति-शैली की तुलना कर उनके विशिष्ट सौंदर्यबोध और भाषिक-कौशल को पहचानता है। प्रभाव अध्ययन इस बात का विश्लेषण करता है कि एक साहित्यिक परंपरा ने दूसरी परंपरा को किस प्रकार प्रभावित किया या उससे प्रेरित होकर कौन-सी नई प्रवृत्ति विकसित हुई। इन सबके केंद्र में इतिहासमूलक अध्ययन है, जो विभिन्न साहित्यिक धाराओं, समय-चक्रों और सांस्कृतिक परिवर्तनों के आधार पर साहित्य के विकासक्रम का तुलनात्मक मूल्यांकन करता है और यह दिखाता है कि साहित्य का प्रवाह कभी भी एकाकी नहीं होता, बल्कि

अनेक परंपराओं, विचारों और ऐतिहासिक परिस्थितियों की पारस्परिक क्रिया से निर्मित होता है। इन समग्र प्रक्रियाओं के आधार पर तुलनात्मक साहित्य की विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं—यह बहुसांस्कृतिक दृष्टि प्रदान करता है, साहित्य को राष्ट्रीय सीमाओं से ऊपर उठाकर सार्वभौमिक परिप्रेक्ष्य में रखता है, विभिन्न साहित्यिक विधाओं और परंपराओं के अंतर्संबंधों की खोज करता है और साहित्य को एक जीवंत, गतिमान, बहुआयामी प्रवाह के रूप में समझने में सहायता करता है। अंत में यह कह सकते हैं कि- तुलनात्मक साहित्य न केवल साहित्यिक संरचनाओं और अभिव्यक्ति-रूपों की तुलना करता है, बल्कि यह दिखाता है कि मानव-अनुभव की साझी धारा विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों में किस प्रकार नए अर्थों और रूपों में अभिव्यक्त होती है। यह समग्र दृष्टि ही तुलनात्मक साहित्य को एक स्वतंत्र, वैज्ञानिक और व्यापक अनुशासन के रूप में स्थापित करती है।

K 2.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर- विभिन्न साहित्यिक रूपों, विषयों और परंपराओं कातुलनात्मक विश्लेषण करना तुलनात्मक साहित्य की प्रयोग-रीति का मुख्य उद्देश्य है।

प्रश्न 2 का उत्तर- वस्तुतात्विक अध्ययन साहित्य की मुख्य विषय-वस्तुयाथीमके तुलनात्मक अध्ययन पर केन्द्रित होता है।

प्रश्न 3 का उत्तर- प्रकार अध्ययन (Genology) में साहित्य के विभिन्न प्रकारों और उनकी संरचना का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

प्रश्न 4 का उत्तर- प्रभाव अध्ययन का प्रमुख लक्ष्य यह जानना है कि एक साहित्य ने दूसरे पर कैसा प्रभाव डाला है।

प्रश्न 5 का उत्तर- तुलनात्मक साहित्य की एक प्रमुख विशेषता यह है कि सांस्कृतिक और भाषिक सीमाओं के पार साहित्य का अध्ययन करता है।

5 2.7 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- क्लॉड पिशोआ (1982). Comparative Literature in the Twentieth Century. New York: Doubleday.
- मेलोन, डेविड एच. (1971). Modern Theories of Comparative Literature. Oxford: Oxford University Press.
- गुहा, नरेश (1977). तुलनात्मक साहित्य का स्वरूप और समस्या. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- मिश्र, रमाकांत (1989). तुलनात्मक साहित्य के सिद्धांत. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन.
- शर्मा, रामविलास (1995). तुलनात्मक साहित्य और संस्कृति अध्ययन. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन.
- तिवारी, शिवकुमार (2001). तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन. वाराणसी: भारतीय विद्या प्रकाशन.
- सिंह, सुरेश (2010). तुलनात्मक साहित्य: स्वरूप और संदर्भ. दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ.
- चौबे, विश्वनाथ (2005). तुलनात्मक साहित्य: सिद्धांत और व्यवहार. नई दिल्ली: ज्ञानपीठ.
- पांडेय, राजेन्द्र (2012). भारतीय तुलनात्मक साहित्य का विकास. पटना: छात्र साहित्य भवन.

M2.8 अभ्यास प्रश्न

क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए–

6. तुलनात्मक साहित्य की दो प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।
7. स्तुतात्विक अध्ययन किस पर केंद्रित होता है?
8. तुलनात्मक साहित्य में प्रकार अध्ययन का मुख्य उद्देश्य क्या है?
9. शैली अध्ययन में किन तत्वों की तुलना की जाती है?
10. प्रभाव अध्ययन किस प्रकार के संबंधों का अन्वेषण करता है?
11. इतिहासमूलक अध्ययन का आधार क्या माना जाता है?

ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए–

1. वस्तुतात्विक (Thematic) अध्ययन की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए बताइए कि तुलनात्मक साहित्य में इसकी क्या उपयोगिता है।
2. तुलनात्मक साहित्य में प्रकार (Genre) अध्ययन की पद्धति, प्रयोजन और महत्व पर विस्तार से चर्चा कीजिए।
3. शैली अध्ययन की परिभाषा, उसके प्रमुख घटक तथा तुलनात्मक साहित्य में उसकी भूमिका पर विस्तार से लिखिए।
4. प्रभाव अध्ययन (Influence Study) क्या है? इसकी विभिन्न अवस्थाओं और तुलनात्मक साहित्य में इसकी प्रासंगिकता का विवेचन कीजिए।
5. इतिहासमूलक अध्ययन (Historiographical Study) की संकल्पना, दायरा और तुलनात्मक साहित्य में इसके योगदान पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
6. तुलनात्मक साहित्य की प्रमुख विशेषताओं का विवेचन कीजिए तथा बताइए कि यह साहित्यिक अध्ययन को कैसे व्यापक बनाता है।

****

इकाई-3 तुलनात्मक भारतीय साहित्य की आवश्यकता

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य
3.2 प्रस्तावना
3.3 भारतीय साहित्य का आशय
3.4 प्राचीन भारतीय साहित्य का इतिहास
3.5 आधुनिक भारतीय साहित्य: परिचय
3.6 तुलनात्मक भारतीय साहित्य की आवश्यकता
3.7 सारांश
3.8 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
3.9 अधिक जानने के लिए पढ़ें
3.10 अभ्यास प्रश्न

3.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

- भारतीय साहित्य के आशय को समझ पाएंगे।
- प्राचीन भारतीय साहित्य के इतिहास को अवलोकन का सकेंगे।
- प्राचीन साहित्य की प्रमुख विशेषताओं को जानेंगे।
- आधुनिक भारतीय साहित्य से परिचित हो पाएंगे।
- तुलनात्मक भारतीय साहित्य की आवश्यकताओं को समझेंगे।

3.2 प्रस्तावना

भारतीय साहित्य की मूल अवधारणा भारत में प्राचीन काल से विकसित अनेक भाषाओं और संस्कृतियों के संयुक्त स्वरूप से जन्मी है। भारत उपमहाद्वीप सदियों से उन्नत सभ्यता और संस्कृति का केंद्र रहा है। विश्व के विद्वानों ने हमेशा भारतीय चिंतन, साहित्यिक दृष्टि और दार्शनिक परंपराओं को आदर और विस्मय के साथ देखा है। भारतीय चिंतनधारा में प्रारंभ से ही वैश्विक दृष्टि मौजूद रही है, जिसके मूल में सम्पूर्ण मानवता के कल्याण की भावना निहित है। इसी कारण यह देश हर प्रकार के वैविध्य को खुले मन से अपनाता आया है और हर नवीन तत्व को स्वीकार कर उसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता रहा है। भारत की यही समन्वयकारी, सहिष्णु और समावेशी प्रकृति उसे अन्य सभ्यताओं से अलग और विशिष्ट बनाती है। इसी भूमि की विशेषता है कि यहाँ विभिन्न जातियाँ अपनी मान्यताओं, सांस्कृतिक परंपराओं, सामाजिक तरीकों और राजनीतिक धारणाओं के साथ सुरक्षित रूप से रहती हुई निरंतर प्रगति करती आई हैं। विश्व में शायद ही कोई दूसरी ऐसी मिसाल मिले जहाँ इतनी अधिक जातियाँ, भाषाएँ, संस्कृतियाँ और आस्थाएँ एक साथ फल-फूल रही हों। भारत की बहुभाषिकता इस राष्ट्र की पहचान और शक्ति दोनों है। इसकी विविधता में एक गहरी सांस्कृतिक एकता की शक्ति छिपी है, जो अनेकता में एकता की भावना को मजबूत करती है। यहाँ की विविध सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों के बीच लोगों के रहन-सहन, धार्मिक-आध्यात्मिक चिंतन, सामाजिक मान्यताओं और राजनीतिक विचारों का निरंतर संवाद और मंथन चलता रहा है। यही निरंतरता भारत की बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक परंपरा को विशिष्ट बनाती है।

3.3 भारतीय साहित्य का आशय

'भारतीय साहित्य' से आशय भारत की सभी भाषाओं में निर्मित मौखिक और लिखित साहित्यिक निधि से है। संविधान में स्वीकृत 22 भाषाओं का साहित्य मिलकर भारतीय साहित्य का मूल स्वरूप बनाता है। यह एक व्यापक संकलन है जिसमें विभिन्न भारतीय भाषाओं में रचित समस्त साहित्यिक धरोहर शामिल होती है। वह साहित्य, जो भारतीय समाज के विविध पक्षों को प्रतिबिंबित करता है, भारतीय साहित्य कहलाता है। इसकी पहचान केवल भाषा पर आधारित नहीं है, बल्कि भारतीय समाज से जुड़े उसके सरोकारों से निर्धारित होती है। जो भी साहित्य भारत के राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और क्षेत्रीय जीवन को उजागर करता है, वह भारतीय साहित्य की परिधि में आता है। भारतीयता के सम्पूर्ण रूप को प्रस्तुत करने वाला साहित्य ही वास्तविक अर्थ में भारतीय साहित्य माना जाता है। विदेशों में रहते हुए भारतीय जीवन-स्थितियों और सामाजिक चेतना को अभिव्यक्त करने वाले रचनाकारों की कृतियाँ भी भारतीय साहित्य में शामिल की जाती हैं। संविधान में उल्लेखित भाषाओं के साथ-साथ विभिन्न भारतीय बोलियों और उपभाषाओं में रचा गया साहित्य भी भारतीय साहित्य का महत्वपूर्ण हिस्सा है। भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में अंग्रेजी भाषा शामिल नहीं है, फिर भी भारतीय लेखकों द्वारा सृजित अंग्रेजी साहित्य को भारतीय साहित्य का महत्वपूर्ण हिस्सा माना जाता है। भारतीय रचनाकारों की अंग्रेजी भाषा में लिखी कृतियों ने अपनी अलग पहचान बनाई है और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अत्यधिक सराहना प्राप्त की है। इस प्रकार भारतीय साहित्य के दायरे में भारतीय भाषाओं के साथ-साथ भारतीय अंग्रेजी साहित्य भी स्वाभाविक रूप से सम्मिलित हो गया है।

भारतीय साहित्य की मूल भारतीयता या उसकी अंतर्निहित एकता को समझना तभी संभव है जब हम उसे उसकी व्यापक विविधता के संदर्भ में देखते हैं। पाश्चात्य विचारधारा प्राय: प्रत्येक विषय को द्वैत या विरोधी धाराओं में बाँटकर देखती है, जबकि भारतीय चिंतन जीवन को समग्र रूप में ग्रहण करने में विश्वास रखता है। इसी कारण 'एकता' और 'अनेकता' जैसे विरोधी माने जाने वाले तत्व भी भारतीय मानस में परस्पर पूरक के रूप में स्वीकृत हो जाते हैं, और स्थानीय, क्षेत्रीय तथा अखिल भारतीय पहचान के बीच एक गहरा और जीवंत संबंध स्थापित हो पाता है। भारतीय साहित्य अपनी विविधता के साथ भी एकता का भाव बनाए रखता है और यही भारत का वैश्विक योगदान है। अनेकता से एकता की ओर ले जाने वाला यह दृष्टिकोण भारत की विशिष्ट विशेषता है। भारतीय साहित्य भाषाई विविधता के बावजूद एक मूलभूत एकत्व को आत्मसात किए हुए है यह निर्विवाद सत्य है। इस एकता की पुष्टि करने वाले अनेक ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक प्रमाण उपलब्ध हैं। भारतीय साहित्य की इस एकता को औपचारिक रूप से मान्यता देने के उद्देश्य से 1954 में 'साहित्य अकादेमी' की स्थापना की गई। उस अवसर पर डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णण ने कहा था- Indian literature is one though written in many languages। इसी प्रकार डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी ने अपनी पुस्तक Languages and Literatures of India में भारतीय साहित्य को 'बहुवचन' की संज्ञा देते हुए इसकी भाषिक बहुलता और अन्तर्निहित एकता दोनों को रेखांकित किया है।

सामान्यत: हम भारतीय भाषाओं को एकवचन में बोलते हैं, परंतु जब इन भाषाओं की विविधता की बात आती है तो 'भारतीय भाषाएँ' बहुवचन रूप में प्रयुक्त होता है। भारतीय साहित्य में जहाँ एक ओर विषयवस्तु की एकता दिखाई देती है, वहीं शैली, सांस्कृतिक विशिष्टताओं और साहित्यिक परंपराओं का व्यापक वैविध्य भी उपस्थित है। भारतीय लेखक लगातार यह सिद्ध करते आए हैं कि भारत विभिन्न जातियों, संस्कृतियों, प्रदेशों, धर्मों और भाषाओं का एक विशाल संगम है। भारत के किसी एक भाग की साहित्यिक या सांस्कृतिक खोज हमें अनायास ही किसी दूसरे भाग की ओर ले जाती है—उदाहरणत: हिन्दी का भक्तिकाव्य हमें तमिल प्रदेश के आलवार संतों की परंपरा तक पहुँचा देता है। इस प्रकार हम संपूर्ण भारत के सांस्कृतिक ताने-बाने का परिचय प्राप्त करते हैं। जब हम मध्यकालीन भक्ति आंदोलन को देखते हैं तो ज्ञात होता है कि यह सर्वभारतीय चेतना सबसे

पहले 6वीं-7वीं शताब्दी में तमिल आलवारों से प्रारंभ हुई और फिर कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान से होती हुई 13वीं-14वीं शताब्दियों तक कश्मीर तक फैल गई। 15वीं-16वीं शताब्दी तक यह आंदोलन पूरे मध्य भारत को भी अपने घेरे में ले चुका था। श्री चैतन्य के प्रभाव से इस भक्ति आंदोलन का एक नया रूप आकार लेता है और बंगाल, असम तथा मणिपुर तक इसका प्रभाव फैल जाता है। यह एक प्रकार की सांस्कृतिक क्रांति थी—एक नवजागरण—जिसने भक्त कवियों की कल्पना को गहराई से आंदोलित किया। भक्ति साहित्य अनेक भाषाओं में रचा गया और इसमें विभिन्न सांस्कृतिक विशेषताएँ स्पष्ट रूप से देखने को मिलती हैं। भाषाई विविधता के बावजूद इन रचनाओं में आस्था, विश्वास, मिथकों और परंपराओं की समानता विषयवस्तु की एकता को प्रमाणित करती है। आधुनिक काल के नवजागरण पर दृष्टि डालें तो पाते हैं कि जहाँ यूरोप के 14वीं शताब्दी के नवजागरण की पहचान वैज्ञानिक तर्कबुद्धि, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और मानवतावाद थी, वहीं भारत में परिस्थितियों के अनुसार राष्ट्रवाद, सुधारवाद और पुनरुत्थानवाद प्रमुख रहे। समाज सुधार की एक ही केन्द्रीय थीम के आधार पर भारत की विभिन्न भाषाओं में प्रथम उपन्यासों का लेखन हुआ—तमिल में सैमुअल वेदनायकम पिल्लई, तेलुगु में कृष्णम्मा चेट्टी, मलयालम में चंदुमेनन, हिन्दी में लाला श्रीनिवासदास, तथा बांग्ला में मेरी हचिन्सन—सभी की रचनाओं में समाज सुधार की ही प्रमुख भावना उपस्थित है। इन सभी तथ्यों से स्पष्ट होता है कि किसी एक भाषा का भारतीय साहित्य किसी अन्य भारतीय साहित्य से किसी न किसी रूप में जुड़ा हुआ है। इसलिए भारतीय साहित्य का अध्ययन केवल एक भाषा के संदर्भ में पूरी तरह न्याय नहीं कर सकता। इस बहुविधता के बीच सेतु का कार्य अनुवाद ही करता है, और भारतीय साहित्य की भाषिक विविधता को साझा मंच पर लाने में अनुवाद अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारतीय साहित्य की अवधारणा किसी एक भाषा पर आधारित नहीं हो सकती क्योंकि भारत बहुभाषिक देश है। यहाँ एक ही लेखक अनेक भाषाओं में लिख सकता है। इसलिए भारतीय साहित्य को किसी विशेष भाषा से बाँधकर नहीं देखा जा सकता। जब हम 'भारतीय साहित्य' कहते हैं, तो यह भौगोलिक क्षेत्र के साथ-साथ देश की राजनीतिक एकता से भी जुड़ा होता है, परंतु भौगोलिकता से अधिक महत्वपूर्ण भारतीयता का आदर्श है। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि भारत केवल 'नेशन-स्टेट' नहीं है, बल्कि 'राष्ट्र-निर्माण' की प्रक्रिया में स्थित देश है। रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार, हमारा राष्ट्र केवल भू-सत्ता नहीं है—वह एक विचार, एक चेतना का प्रतीक है। भारत का राष्ट्रवाद प्राचीन आदर्शों, गांधीजी के बहुलवाद, आध्यात्मिकता, सत्य और सहिष्णुता के सिद्धांतों तथा नेहरू की समाजवादी और गुटनिरपेक्ष नीतियों पर आधारित है। सबसे महत्वपूर्ण यह है कि भारतीय साहित्य की अवधारणा जनता से उसके गहरे संबंध पर आधारित है। अत: भारतीय साहित्य को केवल भाषा, क्षेत्र या राजनीतिक सीमाओं से नहीं, बल्कि इस भूमि की जनता, उनकी अनुभूतियों और उनके सांस्कृतिक अनुभवों के आधार पर पहचाना जाता है।

अपनी प्रगति जांचें

1. तुलनात्मक भारतीय साहित्य का मुख्य उद्देश्य क्या है?
2. 'भारतीय साहित्य' शब्द का आशय क्या है?
3. तुलनात्मक भारतीय साहित्य की आवश्यकता क्यों है?
4. आधुनिक भारतीय साहित्य की शुरुआत किस घटना के आसपास मानी जाती है?
5. प्राचीन भारतीय साहित्य का सर्वप्रथम स्वरूप किस रूप में मिलता है?

3.4 प्राचीन भारतीय साहित्य का इतिहास

भारतीय साहित्य में 'साहित्य' शब्द के व्यापक रूप में आने वाली सभी विधाएँ शामिल होती हैं-धार्मिक और लौकिक रचनाएँ, महाकाव्य और गीत, भावनात्मक तथा शिक्षाप्रद साहित्य, वर्णनात्मक और वैज्ञानिक गद्य,

साथ ही मौखिक परंपरा से प्राप्त पद्य एवं गीत भी। यह कहना बहुत ठीक नहीं है कि प्राचीन भारतीय साहित्य में हिन्दू, बौद्ध और जैनमतों का मात्र धार्मिक शास्त्रीय रूप ही सम्मिलित है। जैन वर्णनात्मक साहित्य, जो कि प्राकृत भाषा में है, रचनात्मक कहानियों और यथार्थवाद से परिपूर्ण है। भारतीय साहित्य के स्वरूप को समझने के लिए अज्ञेय का विचार विशेष रूप से उपयोगी है। उनका कहना है कि जब हम 'भारतीय लेखक' या 'भारतीय साहित्य' की चर्चा करते हैं, तो हमारा ध्यान सामान्यत: दो ध्रुवों पर जाकर ठहर जाता है—या तो हम संस्कृत साहित्य की ओर देखते हैं, जिसकी परंपरा बहुत पहले मंद पड़ गई अथवा हम आधुनिक काल में पश्चिमी प्रभाव के बाद विकसित हुए भारतीय अंग्रेजी साहित्य को याद करते हैं। इस दृष्टि से शेष भाषाओं—हिंदी, पंजाबी, बांग्ला, गुजराती आदि के रचनाकार केवल 'प्रादेशिक भाषा के लेखक' माने जाते हैं, जबकि 'भारतीय लेखक' केवल वे माने जाते हैं जो कभी संस्कृत में लिखते थे या आज अंग्रेजी में लिखते हैं। यदि यह सोच सही मान ली जाए, तो स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि संस्कृत साहित्य के क्षीण होने और भारतीय अंग्रेजी साहित्य के उदय के बीच के लगभग हजार-बारह सौ वर्षों में भारत में क्या होता रहा? क्या वह पूरा काल 'अंधकार युग' था? क्या उस समय कोई भारतीय परंपरा, कोई भारतीय संस्कृति, या यहाँ तक कि 'भारत' का अस्तित्व ही नहीं था? क्या ऐसा माना जाए कि भारत तभी 'उभरकर' सामने आया जब पश्चिम एक चुनौती के रूप में उपस्थित हुआ? अज्ञेय के अनुसार, इस प्रकार की सोच हमारी एक मूलभूत भूल को व्यक्त करती है हम किसी अत्यंत महत्वपूर्ण तथ्य की उपेक्षा कर रहे हैं। उनका मत है कि भारतीय जीवन-दृष्टि न तो संस्कृत तक सीमित थी और न ही उसके बाद समाप्त हो गई। यह दृष्टि संस्कृत से भी पहले अस्तित्व में थी, संस्कृत परंपरा के दौरान बनी रही और संस्कृत के क्षय के साथ नए रूपों में विकसित हुई। पश्चिमी प्रभाव आने तक यह दृष्टि पुन: संगठित भी हो चुकी थी। यह जीवन-दृष्टि कभी नष्ट नहीं हुई कभी बिखरी, कभी संहिताबद्ध हुई, परंतु निरंतर जीवित बनी रही।

भारत अनेक भाषाओं का विशाल देश है। उत्तर-पश्चिम में पंजाबी, हिंदी और उर्दू; पूर्व में उड़िया, बांग्ला और असमिया; मध्य-पश्चिम में मराठी और गुजराती; तथा दक्षिण में तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम प्रमुख भाषाएँ हैं। इनके अलावा कश्मीरी, डोगरी, सिंधी, कोंकणी, तुङ्गु आदि अन्य भाषाएँ भी हैं, जिनका साहित्यिक और भाषा वैज्ञानिक महत्त्व अत्यंत महत्वपूर्ण है। विशेष रूप से ऊपर उल्लेखित बारह प्रमुख भाषाओं में प्रत्येक का अपना समृद्ध और विविधतापूर्ण साहित्य है, जो प्राचीनता, गुणवत्ता और प्रभाव—सभी दृष्टियों से अत्यंत विशाल है। यदि केवल आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य का ही संपूर्ण संकलन किया जाए, तो वह किसी भी प्रकार से यूरोपीय भाषाओं के संयुक्त साहित्य से कम नहीं ठहरेगा। और यदि वैदिक संस्कृत, संस्कृत, पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश जैसी प्राचीन भाषाओं को भी इसमें जोड़ दिया जाए, तो भारतीय साहित्य का विस्तार इतना विशाल हो जाता है कि कल्पना की सीमा भी उसके सामने छोटी पड़ जाती है—यह ज्ञान का ऐसा अथाह भंडार है, जो गहराई में हिंद महासागर से अधिक, विस्तार में भारत के भू-भाग से व्यापक, ऊँचाई में हिमालय से ऊँचा और सूक्ष्मता में ब्रह्म की अवधारणा से भी अधिक परिष्कृत है। इन सभी साहित्य-परंपराओं का अपना-अपना स्वतंत्र और उज्ज्वल व्यक्तित्व है, जो अपने-अपने प्रदेश की सांस्कृतिक पहचान को स्पष्ट रूप से दर्शाता है। यद्यपि पंजाबी-सिंधी और हिंदी-उर्दू जैसे कुछ भाषाई क्षेत्रों की सीमाएँ एक-दूसरे से मिलती हैं, फिर भी इनके साहित्य अपने विशिष्ट गुणों के कारण भ्रमित नहीं करते। इसी तरह मराठी और गुजराती समाज भौगोलिक रूप से निकट हैं, परंतु दोनों के साहित्य में स्वतंत्र पहचान मौजूद है। दक्षिण भारतीय भाषाएँ द्रविड़ परिवार से संबंधित होने पर भी कन्नड़-मलयालम तथा तमिल-तेलुगु साहित्य की विशिष्टता स्पष्ट और निर्विवाद है। यही स्थिति बांग्ला, असमिया और उड़िया के संदर्भ में भी दिखाई देती है—यद्यपि असम और उड़िया पर बांग्ला का प्रभाव रहा है, फिर भी उन्होंने अपनी स्वतंत्र साहित्यिक पहचान को बनाए रखा है। इन सभी भारतीय भाषाओं में अपनी-अपनी विशिष्ट साहित्यिक उपलब्धियाँ हैं, जैसे—तमिल का संगम साहित्य, तेलुगु का द्विअर्थी काव्य और अवधान साहित्य, मलयालम का संदेश काव्य और कीरगीत (कलिप्पाट्टु) तथा मणिप्रवाल शैली, मराठी के पवाड़े, गुजराती के आख्यान और फागु, बांग्ला का मंगल काव्य, असमिया के बरगीत और इतिहास साहित्य, पंजाबी के

रम्याख्यान और वीरगीत, उर्दू की ग़ज़ल तथा हिंदी का रीतिकालीन और छायावादी काव्य। ये सभी कृतियाँ अपने-अपने भाषाई साहित्य की विशिष्टता के चमकदार प्रमाण हैं।

3.5 आधुनिक भारतीय साहित्य: परिचय

भारत की लगभग सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं में आधुनिक युग का प्रारम्भ सामान्यत: 1857 के प्रथम स्वतंत्रता-संग्रामके आसपास माना जाता है। यद्यपि बंगाल और दक्षिण भारत में पाश्चात्य शिक्षा, मिशनरी गतिविधियों और औपनिवेशिक प्रशासन के कारण पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव उत्तर तथा मध्य भारत की तुलना में पहले दिखने लगता है, परंतु भारतीय साहित्य की वास्तविक आधुनिकता केवल पश्चिमी प्रभाव का परिणाम नहीं थी। विगत शताब्दी में, स्वतन्त्रता से पूर्व से 1947 तक आधुनिक साहित्य के सामान्यत: चार चरण हैं-

(i) पुनर्जागरण

(ii) राष्ट्रीय-सांस्कृतिक भावना का उत्कर्ष (जागरण-सुधार)

(iii)रोमानी सौन्दर्य दृष्टि का उन्मेष

(iv)साम्यवादी सामाजिक चेतना का उदय

इन चारों प्रवृत्तियों की उपस्थिति भारत की लगभग सभी भाषाओं में दिखाई देती है — समय, गति और रूप का कुछ अंतर अवश्य है, परन्तु साहित्यिक चेतना के मूल प्रवाह में भारी समानता मिलती है। यही भारतीय साहित्य की मौलिक एकता, सांस्कृतिक निरंतरता और बहुभाषिक समृद्धि का प्रमाण है। तमिल, असमिया, पंजाबी और हिंदी भारतीय भाषाओँ का उदहारण निम्नलिखत हैं-

क) तमिल- तमिल साहित्य में आधुनिकता का सूत्रपात पुनर्जागरणकालीन नेताओं के प्रयासों से हुआ। इस दिशा में सबसे प्रमुख नामरामलिंग स्वामिगल (रामलिंग आदिगल) का है। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान का प्रयास किया, सभी धर्मों की एकता पर बल दिया और एकनवीन समन्वयवादी दृष्टि प्रस्तुत की, जो आधुनिक भारतीय चेतना का आधार बनी। उनके बाद तमिल साहित्य को आधुनिक और राष्ट्रीय दिशा देने में सबसे प्रभावशाली व्यक्तित्व सुब्रह्मण्य भारती (भारतीयर) का रहा। उन्होंने अपने काव्य में भारतीय राष्ट्रवाद, सामाजिक परिवर्तन, स्त्री-स्वतंत्रता और सांस्कृतिक नवजागरण को सशक्त स्वर में अभिव्यक्त किया। उनके साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का उत्कर्ष स्पष्ट दिखाई देता है। आगे चलकर भारतीदासन और अन्य कवियों ने प्रगतिशील तथा साम्यवादी विचारधारा को प्रमुखता से व्यक्त किया, जिससे तमिल साहित्य में जनवादी चेतना का तीव्र विकास हुआ।

ख) असमिया - असमिया साहित्य में आधुनिक युग का प्रारम्भराष्ट्रीय चेतना और सामाजिक जागृति से हुआ। इस दिशा में आनन्दराम ढेकियाल फुकन सबसे अग्रणी व्यक्तित्व माने जाते हैं। उन्हें असमिया समाज में राष्ट्रीय जागरण का प्रथम प्रवर्तक कहा जाता है। उनके साथ कमलाकान्त भट्टाचार्य, हेमचन्द्र बरुआ आदि साहित्यकार सक्रिय थे। इन लेखकों ने वीरगीतों के माध्यम से देशभक्ति का प्रचार किया तथा व्यंग्य कथाओं और लेखों के द्वारा सामाजिक कुरीतियों तथा रूढ़ियों पर तीखा प्रहार किया। असमिया साहित्य के दूसरे चरण का नेतृत्व तीन प्रमुख साहित्यकारों ने किया— चन्द्रकुमार अग्रवाल, लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ और हेमचन्द्र गोस्वामी। इन तीनों को आधुनिक असमिया साहित्य का वास्तविक निर्माता माना जाता है। राष्ट्रीय भावना की लहर, जिसने असमिया साहित्य में नई ऊर्जा का संचार किया था, इन लेखकों की रचनाओं में विविध रूपों में व्यक्त हुई। इन्हीं के साथ-साथ अन्य लेखकों में भी देशप्रेम, सांस्कृतिक जागरण और सामाजिक चेतना का व्यापक प्रसार हुआ। राष्ट्रीय चेतना के साथ-साथ असमिया साहित्य में रोमानी काव्य-प्रवृत्तिका उद्भव भी

इसी दौर में दिखाई देता है। इस रोमानी प्रवृत्ति को आगे विकसित किया हितेश्वर बरबरुआ, यतीन्द्रनाथ दुवरा, देवकान्त बरुआ जैसे कवियों ने। इन कवियों की रचनाएँ प्राय: व्यक्तित्व-प्रधान, भावनात्मक और प्रकृति-निष्ठ हैं। इन पर अंग्रेजी रोमानी कवियों तथा रवीन्द्रनाथ टैगोर का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। 1942 के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के बाद असमिया के युवा साहित्यकार समाजवाद और सामाजिक न्याय की ओर उन्मुख होने लगे। 1946 में प्रकाशित कविता-संकलन 'आधुनिक असमिया कविता' में पूँजीवादी शोषण के प्रति आक्रोश, वर्ग संघर्ष की चेतना तथा साम्यवादी दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से प्रकट होता है। वर्तमान दशक में असमिया के नए कवि भी इलियट आदि से प्रेरणा ग्रहण कर नवीन बौद्धिक धारणाओं को अभिव्यक्ति दे रहे हैं। महेन्द्र बोरा द्वारा प्रकाशित 'नूतन कविता' नामक संकलन में इस प्रवृत्ति के स्पष्ट उदाहरण मिलते हैं।

ग) पंजाबी- पंजाबी, उर्दू और हिन्दी—इन सभी उत्तर भारतीय भाषाओं में आधुनिक युग का सूत्रपात उन नेताओं और विद्वानों के प्रयासों से हुआ, जिन्होंने शिक्षा, अनुवाद तथा पत्रकारिता के माध्यम से नए ज्ञान का विस्तार किया। पंजाबी भाषा में आधुनिक विचारधारा का विकाससर अतर सिंह के प्रयासों से गति पकड़ता है। उन्होंने शिक्षा-व्यवस्था को संगठित किया,अंग्रेजी तथा संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद उपलब्ध कराए तथा समाचार-पत्रों को प्रोत्साहित किया। इन कार्यों ने पंजाबी समाज में नवचेतना और आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के प्रति रुचि उत्पन्न की। 1852 ई. में लुधियाना में क्रिस्चन मिशन ने बाइबिल का पंजाबी अनुवाद और 1854 में पंजाबी भाषा का शब्दकोश प्रकाशित किया।

घ) हिंदी- हिन्दी साहित्य में यह कालखण्ड भारतेन्दु युग के नाम से जाना जाता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके मंडल के कवियों ने साहित्य के प्राचीन रूपों का नवीनीकरण किया तथा अनेक नए रूपों का सृजन कर नवजागरण की चेतना को अभिव्यक्त किया। यह युग सृजन-उत्साह, नवीनता और साहित्यिक ऊर्जा का युग था, जिसके प्रभाव से हिन्दी के गद्य और पद्य दोनों में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। इस समय ईसाई धर्म-प्रचारक और अंग्रेज़ प्रशासक भी अपने-अपने उद्देश्य से हिन्दी, उर्दू और पंजाबी भाषाओं में धार्मिक ग्रंथों और पाठ्य-पुस्तकों के अनुवाद व प्रकाशन कर रहे थे। फोर्ट विलियम कॉलेज तथा अन्य संस्थानों के प्रयासों से शिक्षा और नये ज्ञान का द्वार खुला, जिसका परिणाम आगे चलकर तीनों भाषाओं के साहित्य में राष्ट्रीय चेतना के रूप में प्रकट हुआ। पंजाबी में गुरुमुख सिंह 'मुसाफिर' और हीरा सिंह 'दर्द' राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य के लिए प्रसिद्ध हुए, उर्दू में इक़बाल, चकबस्त और अकबर ने उदार व राष्ट्रीय भावनाओं को ऊँचाई दी, जबकि हिन्दी में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के साथ माखनलाल चतुर्वेदी और 'नवीन' आदि कवियों ने राष्ट्रीय काव्यधारा का विकास किया। आधुनिक साहित्य में छायावादी काव्य—प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी के द्वारा संवर्धित—भारतीय वाङ्मय की अमर उपलब्धि बनकर उभरा; पंजाबी में भाई वीर सिंह और पूरन सिंह तथा उर्दू में अख्तर शीरानी और मज़ाज़ रोमांटिक प्रवृत्ति के प्रतिनिधि बने। इसके बाद साहित्य में समाजवादी विचारधारा और वामपंथी चेतना मजबूत हुई, जो पंजाबी में अमृता प्रीतम और करतार सिंह दुगल, उर्दू में जोश, फ़िराक और अली सरदार जाफ़री तथा हिन्दी में पंत, नागार्जुन, नरेन्द्र अंचल, यशपाल आदि की कृतियों में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। वर्तमान में साहित्य की अत्याधुनिक प्रवृत्ति प्रयोगवाद और उसके बाद नई कविता के रूप में विकसित हुई, जिसकी झलक हिन्दी के अज्ञेय, पंजाबी के प्रीतम सिंह सफ़ीर और उर्दू के फ़ैज़ व नून मीम राशिद की रचनाओं में मिलती है।

5 महत्वपूर्ण बिंदु

स्वतन्त्रता से पूर्व से 1947 तक आधुनिक साहित्य के सामान्यत: चार चरण हैं-

(i) पुनर्जागरण

(ii) राष्ट्रीय-सांस्कृतिक भावना का उत्कर्ष (जागरण-सुधार)

(iii) रोमानी सौन्दर्य दृष्टि का उन्मेष

(iv) साम्यवादी सामाजिक चेतना का उदय

3.6 तुलनात्मक भारतीय साहित्य की आवश्यकता

भारत बहुभाषी, बहुसांस्कृतिक और बहुजातीय देश है, जहाँ विभिन्न भाषाओं—हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, बांग्ला, तमिल, मराठी, गुजराती, असमिया आदि—की अपनी-अपनी समृद्ध साहित्यिक परंपराएँ हैं। इन साहित्यिक परंपराओं में विषय, रूप, शैली, लोक-संस्कृति, सामाजिक अनुभव और ऐतिहासिक संदर्भ भले ही भिन्न हों, परन्तु उनके अंत:संबंध गहरे और बहुआयामी हैं। इसी कारण तुलनात्मक भारतीय साहित्य की आवश्यकता महसूस होती है। तुलना के माध्यम से विभिन्न भाषाओं के साहित्य में निहित समानताओं और विभिन्नताओं का अध्ययन संभव होता है, जिससे भारतीय साहित्य की समेकित सांस्कृतिक आत्मा का स्पष्ट रूप सामने आता है। यह अध्ययन न केवल साहित्यिक प्रभावों, आदान-प्रदानों और प्रेरणाओं को समझने में सहायक है, बल्कि भारत की राष्ट्रीय एकता, सांस्कृतिक बहुलता और साझा विरासत को भी मजबूत बनाता है। तुलनात्मक दृष्टि से देखकर हम यह समझ पाते हैं कि किस प्रकार एक भाषा का साहित्य दूसरी भाषा के साहित्य को प्रभावित करता है, किस प्रकार सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तन सभी भारतीय भाषाओं में समान रूप से अभिव्यक्त होते हैं और कैसे आधुनिकता, लोकजीवन, राष्ट्रवाद, स्त्री-विमर्श, दलित साहित्य तथा वैश्वीकरण जैसी प्रवृत्तियाँ एक साथ अनेक भारतीय भाषाओं में विकसित होती हैं। इस प्रकार तुलनात्मक भारतीय साहित्य की आवश्यकता इसलिए है कि यह भारतीय साहित्य को एक व्यापक राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में समझने में सहायक होकर भारतीय साहित्य की समग्र पहचान और मूल्य को उजागर करता है। मुख्य बिन्दुओं के जरिए हम निम्नलिखित रूप से समझ सकते हैं-

1. भारत की बहुभाषिकता को समझने के लिए
2. साहित्यिक समानता और भिन्नताओं को जानने के लिए
3. सांस्कृतिक एकता को मजबूत करने के लिए
4. परस्पर साहित्यिक प्रभावों को समझने के लिए
5. सामाजिक-राजनीतिक प्रवृत्तियों को पहचानने के लिए
6. साहित्यिक विकास को समग्र रूप में देखने के लिए
7. अनुवाद और अंतर-सांस्कृतिक संपर्क को बढ़ाने के लिए
8. भारतीय साहित्य की 'समग्र पहचान' बनाने के लिए
9. अनेक साहित्यिक रूपों-शैलियों के विश्लेषण के लिए
10. आधुनिक शोध और अकादमिक अध्ययन के लिए

3.7 सारांश

भारतीय साहित्य का आशय केवल किसी एक भाषा में रचित कृतियों से नहीं, बल्कि भारत की विविध भाषाओं, संस्कृतियों और परंपराओं में सृजित समस्त कृतियों से है। यह साहित्य भारतीय समाज की मूल संवेदनाओं—धर्म, दर्शन, नीति, कर्तव्यबोध, प्रकृति, भक्ति, प्रेम और जीवन-मूल्यों—का समृद्ध भंडार है। प्राचीन भारतीय साहित्य का इतिहास अत्यंत व्यापक है। वेद, उपनिषद, पुराण, महाकाव्य, बौद्ध-जैन साहित्य, तमिल संगम साहित्य, संस्कृत नाटक-काव्य आदि इसके आधारस्तंभ हैं। इस काल का साहित्य आध्यात्मिकता,

ज्ञान, मानवीय मूल्यों तथा धर्मिक-सांस्कृतिक धारणाओं से समृद्ध है। यह साहित्य भारत की सभ्यता और वैचारिक प्रगति का प्रामाणिक दर्पण है। आधुनिक भारतीय साहित्य का उदय 19वीं सदी में नवजागरण और सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन के साथ हुआ। अंग्रेजी शासन, आधुनिक शिक्षा, प्रिंट संस्कृति और राष्ट्रीय चेतना ने हिंदी, बंगला, मराठी, तमिल, उर्दू, असमिया, पंजाबी आदि भाषाओं में नवीन साहित्यिक रूपों और विचारधाराओं को जन्म दिया। आधुनिक साहित्य में राष्ट्रवाद, मानवतावाद, सामाजिक यथार्थ, स्वच्छन्दतावाद, प्रगतिवाद, स्त्री मुक्ति और लोकतांत्रिक चेतना प्रमुख रूप से उभरती है। भारत की अनेक भाषाओं और परंपराओं को समझने के लिए तुलनात्मक भारतीय साहित्य की आवश्यकता अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह अध्ययन न केवल भाषाओं और साहित्यिक धाराओं के बीच समानताओं-अंतर को प्रकट करता है, बल्कि भारतीय साहित्य की एक समग्र, एकीकृत पहचान निर्मित करता है। तुलनात्मक साहित्य परस्पर प्रभाव, सांस्कृतिक संवाद, राष्ट्रीय एकता और आधुनिक शोध-पद्धति को सुदृढ़ बनाता है।

3.8 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर- विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य में समानताओं और भिन्नताओं का अध्ययन करना तुलनात्मक भारतीय साहित्य का मुख्य उद्देश्य है।

प्रश्न 2 का उत्तर- भारत की विविध भाषाओं में रचित समस्त मौखिक और लिखित साहित्यि को भारतीय साहित्य कहा जाता है।

प्रश्न 3 का उत्तर- भारतीय बहुभाषिक साहित्य को समग्र रूप में समझने और उसकी सांस्कृतिक एकता को पहचान ने के लिए तुलनात्मक भारतीय साहित्य की आवश्यकता है।

प्रश्न 4 का उत्तर- आधुनिक भारतीय साहित्य का शुरुआत 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के आसपास माना जाता है।

प्रश्न 5 का उत्तर- प्राचीन भारतीय साहित्य का सर्वप्रथम स्वरूप वेदों में मिलता है।

3.9 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- नगेन्द्र. (2009). भारतीय साहित्य. दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन.
- दामले, वि. स. (1957). भारतीय साहित्य का इतिहास. दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन.
- गौतम, म. (सं.). (2009). भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता. दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन.
- गुहा, नरेश (1977). तुलनात्मक साहित्य का स्वरूप और समस्या. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- मिश्र, रमाकांत (1989). तुलनात्मक साहित्य के सिद्धांत. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन.
- शर्मा, रामविलास (1995). तुलनात्मक साहित्य और संस्कृति अध्ययन. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन.
- तिवारी, शिवकुमार (2001). तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन. वाराणसी: भारतीय विद्या प्रकाशन.
- सिंह, सुरेश (2010). तुलनात्मक साहित्य: स्वरूप और संदर्भ. दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ.
- चौबे, विश्वनाथ (2005). तुलनात्मक साहित्य: सिद्धांत और व्यवहार. नई दिल्ली: ज्ञानपीठ.
- पांडेय, राजेन्द्र (2012). भारतीय तुलनात्मक साहित्य का विकास. पटना: छात्र साहित्य भवन.

M3.10 अभ्यास प्रश्न

क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए

1. भारतीय साहित्य शब्द का क्या आशय है?
2. प्राचीन भारतीय साहित्य के प्रमुख स्रोत कौन-कौन से हैं?
3. आधुनिक भारतीय साहित्य के उदय का प्रमुख कारण क्या माना जाता है?
4. तुलनात्मक भारतीय साहित्य का मुख्य उद्देश्य क्या है?
5. किस काल में भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का उदय हुआ?
6. तुलनात्मक साहित्य अध्ययन में अनुवाद की क्या भूमिका है?

ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए

1. भारतीय साहित्य की व्यापकता और इसकी विविध भाषाई-सांस्कृतिक संरचना पर विस्तार से चर्चा कीजिए।
2. प्राचीन भारतीय साहित्य के विकास-क्रम का वर्णन कीजिए।
3. तुलनात्मक भारतीय साहित्य की आवश्यकता को उपयुक्त उदाहरणों सहित स्पष्ट कीजिए।
4. प्राचीन भारतीय साहित्य के दार्शनिक और नैतिक आयामों का विश्लेषण कीजिए।
5. आधुनिक भारतीय साहित्य के उद्भव के ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक कारणों पर विस्तृत टिप्पणी कीजिए।

****

इकाई-4 उद्भवकालीन असमिया साहित्य

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य
4.2 प्रस्तावना
4.3 उद्भवकालीन असमिया साहित्य का सामान्य परिचय
4.4 मंत्र साहित्य
  4.4.1 मंत्र साहित्य का परिचय
  4.4.2 मंत्र साहित्य का श्रेणी विभाजन
  4.4.3 मंत्र साहित्य की विशेषताएँ
  4.4.4 मंत्र साहित्य और असमिया समाज-जीवन
4.5 डाक के वचन (डाकर वचन)
  4.5.1 डाक के वचनका परिचय
  4.5.2 असमिया समाज-जीवन में डाक के वचन का भुमिका
4.6 सारांश
4.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
4.8 अधिक जानने के लिए पढ़े
4.9 अभ्यास प्रश्न

4.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

- असमिया उद्भवकालीन साहित्य का एक संक्षिप्त परिचय प्राप्त होगा।
- असमिया मौखिक साहित्य के बारे में जानकारी होगा।
- असमिया लोक साहित्य के अंतर्गत मंत्र साहित्य और डाक के वचन से परिचय प्राप्त होगा।
- असमिया समाज में मंत्र साहित्य की भूमिका के विषय में ज्ञान प्राप्त होगा।
- असमिया समाज जीवन में डाक के वचन की भूमिका के विषय में ज्ञान प्राप्त होगा।
- मंत्र साहित्य के श्रेणी विभाजन और विशेषताओं के बारे में ज्ञान प्राप्त होगा।
- असमिया समाज-जीवन में डाक के वचन और मंत्र साहित्य के प्रभाव के बारे में जानकारी होगा।
- डाक के वचन और मंत्र साहित्य के जरिए असमिया समाज-जीवन और समाज के व्यक्ति का ज्ञान, चिंता, विचार- बुद्धि के बारे में जानकारी होगा।

4.2 प्रस्तावना

उद्भवकालीन असमिया साहित्य तथा प्राचीन असमिया साहित्य की रूपरेखा कैसी थी, इस विषय में प्रस्तुत इकाई में चर्चा की गयी है। असमिया मौखिक तथा लोक साहित्य (Folk literature) लिखित साहित्य से बहुत प्राचीन है। यह लोक साहित्य असमिया समाज में मौखिक रूप से ही पीढ़ी दर पीढ़ी प्रचलित हो रही है। मौखिक साहित्य के अंतर्गत मंत्र साहित्य और डाक के वचन प्रमुख है। प्रस्तुत इकाई में उद्भवकालीन असमिया साहित्य के विकास में मौखिक साहित्य की भूमिका, विभाजन, मंत्र साहित्य और डाक के वचन संबंधी आलोचना प्रस्तुत किया गया है।

4.3 उद्भवकालीन असमिया साहित्य का सामान्य परिचय

उद्भवकालीन असमिया साहित्य का इतिहास बहुत प्राचीन है। विविध शिलालिपि, ताम्रलिपि से ज्ञात होता है कि 5 वीं सदी से लेकर 12 वीं सदी तक प्राचीन कामरूप के विभिन्न स्थानों पर विभिन्न राजाओं राजत्व था। असमिया साहित्य का प्रथम लिखित रूप के निदर्शन स्वरूप चर्यापद का उल्लेख किया जा सकता है। चर्यापदों में बंगाली लोग भी अपने मांग प्रदर्शन करते थे। इसके पश्चात उद्भवकालीन असमिया लिखित साहित्य के निदर्शन स्वरूप बडु चंदीदास का 'श्रीकृष्ण कीर्तन' और रामाइ पंडित द्वारा लिखित 'शून्य पुराण' का उल्लेख किया जा सकता है।

असमिया लिखित साहित्य का अस्तित्व प्राप्त होने के पूर्व से ही मौखिक रूपसे साहित्य का प्रचलन चल रहा था। इसे मौखिक या लोक साहित्य भी कहा जाता है। इसका अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द है 'Verbal Art' या 'Folk literature'। असमिया लोक साहित्य को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, जैसे - गेय साहित्य और कथा साहित्य। गेय साहित्य के अंतर्गत लोकगीत और कथा साहित्य के अंतर्गत कहानी, लोकोक्तियाँ, प्रवाद-प्रवचन आदि आते हैं। लोक साहित्य में लोक समाज से जुड़े सभी बातों का उल्लेख होता है। लोक समाज में रहनेवाले लोगों के विविध ज्ञान और अभिज्ञता लोकसाहित्य में संचित रहता है। इस अध्याय में चर्चित मंत्र साहित्य और डाक के वचनों को भी लोक साहित्य के अंतर्गत रखा जा सकता है।

5 महत्वपूर्ण बिंदु

उद्भवकालीन असमिया साहित्य मुख्यत: मौखिक परम्परा पर आधारित था, जिसमें लोक साहित्य का विशेष स्थान है। इस काल में मंत्र साहित्य और डाक के वचन महत्वपूर्ण माने जाते हैं। मंत्र साहित्य का प्रयोग देव-देवियों की स्तुति, धार्मिक अनुष्ठान, रोग निवारण और लोक विश्वासों से जुड़ा था। वहीं डाक के वचन लोक अनुभवों और व्यावहारिक ज्ञान का संग्रह हैं, जिनमें कृषि, स्वास्थ्य, नीति और सामाजिक जीवन से संबंधित उपयोगी बातें मिलती हैं। ये दोनों असमिया समाज की सांस्कृतिक परम्परा और लोक जीवन के महत्वपूर्ण दर्पण हैं।

4.4 मंत्र साहित्य

4.4.1 मंत्र साहित्य का परिचय

असमिया साहित्य के विकास के इतिहास में मंत्र साहित्य की भूमिका उल्लेखनीय है। मंत्र लोक संस्कृति और लोक साहित्य का एक अविभाजित अंग है। क्रिया-काण्ड तथा पुष्य के कर्मों सहित देव-देवी को संतुष्ट करने के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया जाता है, वही मंत्र है। अर्थात् मंत्र शक्ति की भाषा है या शब्द शक्ति का उच्चारण। मंत्र के उच्चारण द्वारा एक विशेष प्रकार के शक्ति की प्राप्ति होती है। देव-देवी को आह्वान करने के लिए मंत्र उच्चारण या स्मरण किया जाता है। मंत्र का प्रचलन बहुत प्राचीन है। विद्वानों के अनुसार ई.पू 3000 वर्षों से पहले इजिप्त में जादू के लिए मंत्र का प्रयोग किया जाता था। मंत्र जादू या इंद्रजाल का बाहन है।

असमिया मंत्र साहित्य की रचना कब से हुई यह कहना थोड़ा कठिन है। विद्वानों के अनुसार दसवीं सदी से लेकर पन्द्रहवीं सदी तक मंत्र साहित्य की रचना हुई थी। मंत्र की रचना का समय और रचयिता के विषय में कहना कठिन है। सम्भवत: कुछ विशेष लोगों के माध्यम से मौखिक रूप से प्रचलित होते हुए इन मंत्रों को लिखित रूप से लिपिवद्ध किया गया। इन मंत्रों का प्रयोग ब्राह्मण, अब्राह्मण सभी लोग कर सकते हैं। मंत्रों की रचना भी विविध सम्प्रदायों के लोगों द्वारा की गयी है ऐसा अनुमान किया जाता है। देवता-अदेवता, भूत-प्रेत, डायन आदि के कुप्रभाव के कारण उत्पन्न बीमारी, शत्रुवृद्धि आदि दूर करने के उद्देश्य से इन मंत्रों का प्रयोग

किया जाता है। वेद में उल्लेख न होने या वेदबाह्य आचरण के कारण इन्हें वेद के बाहर का साहित्य या उभोता वेद भी कहा जाता है। लोक साहित्य के अन्य भागों की भाँति परम्परागत रूप से मंत्रों का प्रचलन मौखिक रूप में होता था। संरक्षण करने के लिए धीरे-धीरे मंत्रों को लिपिवद्ध किया गया। लेकिन गोपनीयता के कारण आज भी बहुत से मंत्रों का प्रयोग मौखिक रूप से ही होता है। साधारणत: देवता-अदेवता, भूत-प्रेत, यक्ष-यक्षिणी, डायन आदि के कुप्रभाव से होनेवाली बीमारी, विपत्ती, धन-नाश, शत्रु वृद्धि आदि दूरीकरण, वशीकरण, सम्मोहन, सौभाग्य, शत्रु, जीव जंतु से लेकर व्यक्ति समाज, फसल, सम्पद आदि की रक्षा के लिए पूजा-पद्धति का उल्लेख मंत्र साहित्य में मिलता है।

मंत्र कथित भाषा में रचित है और गद्य-पद्य दोनों रूपों में मिलते हैं, लेकिन पद्य में रचित मंत्रों की संख्या अधिक है। मंत्रों में असमिया समाज में प्रचलित विविध लोक विश्वास, धर्मीय रीति-नीति, व्यवहार आदि का आभाष मिलता है। इन मंत्रों में असमिया समाज के विविध लोक विश्वास, धर्मीय रीति-नीति, व्यवहार, संस्कार आदि का आभाष मिलता है। कुछ मंत्रों के रूप में रामायण-महाभारत आदि पुराण-उपपुराणों की कहानी के साथ जन विश्वास मिश्रित होकर अलग हो गए है। कुछ में सृष्टि तत्वों का भी आभाष मिलता है। असमिया जनसमाज में कामाख्या देवी को मंत्र की अधिष्ठात्री देवी माना जाता है। इसलिए मंत्र की सिद्धि के लिए मंत्र की गुरू कामाख्या माँ की पूजा की जाती है। जैसे-

''सिद्ध गुरूर पाव, रक्षा करा कामरूप कामाख्या माव''

कुछ मंत्रों की सिद्धि के लिए बेज द्वारा मंत्र का उच्चारण करते हुए फू मारना, रोगी को झाड़ना आदि कार्य भी देखा जाता है। कुछ मंत्रों में ऊँ स्वाहा का प्रयोग करते हुए मंत्र की शक्ति बढ़ाने के साथ-साथ वेद सम्मत करने का प्रयास भी देखा जाता है। ह्रीं, क्रीं, ऊँ, ऊत, लत्त, फत्त आदि गुप्त शब्दों का प्रयोग करते हुए इंद्रजालिक परिवेश सृष्ट करने का प्रयास देखा जाता है।

4.4.2 मंत्र साहित्य का श्रेणी विभाजन

मंत्र साहित्य को प्रमुखत: तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। जैसे-

क) प्रार्थना मंत्र

ख) धर्मीय कृत्य के साथ संबंधित मंत्र

ग) जादूविद्या से संबंधित मंत्र

रोग निरामय के लिए विभिन्न कारणों से देव-देवी को संतुष्ट करने के लिए प्रार्थनामूलक मंत्र का प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा धर्मीय कृत्य और यज्ञ-पूजा, विविध गुरू स्तुति के साथ जुड़े हुए मंत्रों को धर्मीय कृत्य के साथ जुड़ा हुआ मंत्र कह सकते हैं। रोग व्याधि दूर करने के लिए जिन मंत्रों का प्रयोग किया जाता है, उनको जादू विद्या के साथ जुड़े मंत्र कह सकते हैं। इन मंत्रों को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं, जैसे- स्तुतिमूलक और धर्म प्रधान मंत्र। जादूमूलक मंत्रों को इसके अंतर्निहित उद्देश्य के आधार पर सु-मंत्र या कल्याणकारी जादू और कु मंत्र अथवा अकल्याणकारी जादूमंत्र कहा जा सकता है। कु मंत्रों को अभिचार मंत्र भी कहा जा सकता है। गोपनीयता मंत्र साहित्य की अन्यतम प्रमुख विशेषता है। गुरू से मंत्र सिखकर गुरू के आज्ञा के बिना प्रयोग करने पर यह मंत्र काम नहीं करते।

4.4.3 मंत्र साहित्य की विशेषताएँ-

- गोपनीयता और रक्षणशीलता मंत्र साहित्य की प्रमुख विशेषता है।
- मंत्र साहित्य के रचनाकाल के संबंध में कहना थोड़ा कठिन है।

- मंत्र साहित्य के रचयिता का उल्लेख कहीं नहीं मिलता।
- झाड़-फूक आदि वेद वाह्य आचरण के कारण मंत्रों को उभोता वेद कहा जाता है।
- लोक विश्वास और अलौकिक शक्ति में विश्वास के कारण मंत्रों की लोकप्रियता वृद्धि हुई है।
- कुछ मंत्रों में विविध उप-कथा जोड़ने के कारण इसकी परिसर में वृद्धि देखी जाती है।
- मंत्रों में कुछ अश्लील शब्दों का भी प्रयोग देखा जाता है।
- साहित्यिक दिशा से भी मंत्रों की भूमिका उल्लेखनीय है।
- विभिन्न रस, अलंकार, लोकोक्ति आदि के प्रयोग से मंत्रों की सौंदर्यता की वृद्धि हुई है।
- मंत्रों में रचयिता के वर्णन शक्ति का भी आभाष मिलता है।
- अलग-अलग स्थान के मंत्रों में सृष्टि तत्व का भी वर्णन देखा जाता है।
- मंत्रों में कठित भाषा के साथ-साथ वैदिक-अवैदिक उभय परम्परा का आभाष मिलता है।

4.4.4 मंत्र साहित्य और असमिया समाज-जीवन

(क) लोक समाज से जुड़े विश्वास, जीवन के अनुभवों का संचित रूप मंत्र साहित्य हैं। असम में वास करने वाले विविध जनजाति के धर्मीय विश्वास, रीति-नीति-परम्परा, लोक विश्वास, कल्पना और आर्थिक-सामाजिक दिशाओं से जुड़े विविध विषयों का प्रतिफलन मंत्र साहित्य के माध्यम से हुआ है। इसमें असमिया समाज के लोगों का धर्म-विश्वास जुरा हुआ हैं। असमिया समाज के सांसारिक जीवन में पालन करनेवाले नीति-नियम, विश्वास, लोकाचार, लोकरीति, लोक चिकित्सा और लोक पूजा पद्धति से जुड़े वैदिक और अवैदिक परम्परा का चित्रण मंत्रों के माध्यम से हुआ है। समाज के लोगों का चिंता धारा, धर्म परम्परा आदि के बारे में भी मंत्र साहित्य के अध्यन से जानकारी पा सकते हैं। मंत्र में असम में मानने वाला विभिन्न देव-देवी के याद, स्तुतिभी पाये जाते हैं। स्वरुपार्थ में कह सकते है कि मंत्र साहित्य असमिया समाज जीवन का एक अभिन्न अंग हैं; प्रार्थना, धर्मीय कृत्य के साथ संबंधित, जादूविद्या से संबंधित, रोग निरामय के लिए इत्यादि विभिन्न कारणों से मंत्र का व्यवहार करते थे। असम के समाज, संस्कृति के अध्ययन के संबंध में भी मंत्र साहित्य की भूमिका उल्लेखनीय है।

w अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1: उद्भवकालीन असमिया साहित्य किस परम्परा पर आधारित था?

प्रश्न 2: असमिया साहित्य के प्रथम लिखित रूप के रूप में किसका उल्लेख किया जाता है?

प्रश्न 3: असमिया लोक साहित्य को कितने भागों में विभाजित किया गया है?

प्रश्न 4: मंत्र साहित्य किसे कहते हैं?

प्रश्न 5: मंत्र साहित्य को मुख्यत: कितने भागों में विभाजित किया जाता है?

4.5 डाक के वचन

4.5.1 डाक के वचन का परिचय

डाक के वचन असमिया लोक साहित्य की एक अनमोल संपत्ति है। असमिया अनपढ़ लोगों के लिए डाक के वचन 'डाकर वचन वेदर वाणी' (डाक के वचन वेद वाणि स्वरूप है) की तरह ही व्यवहारिक ज्ञान का

एक मौखिक विश्वकोश है। डाक के वचन तथा वाणी साधारण जन के लिए वेद वाणी या विवेक वाणी स्वरूप है। कृषि जीवी समाज से जुड़े आवश्यक और व्यवहारिक विषय से जुड़े ज्ञान डाक के वचन में मिलता है। सो-सो वर्ष पुराने अनुभूव, विश्वास की आधारभूमि, रूचि-अभिरूचि, शुभ-अशुभ की धारणाओं की आधारभूमि है यह डाक के वचन। समाज जीवन के अनुभव से जुड़े विविध विषय जैसे- धर्म प्रकरण, नीति प्रकरण, गृहिणी का लक्षण, पुरूष लक्षण, स्वास्थ्य प्रकरण, कृषि लक्षण, वर्षा लक्षण, व्यंजन प्रकरण, ज्योतिष प्रकरण आदि डाक के वचनों में सम्मिलित किया गया है।

प्राचीन काल से ही डाक के वचन से प्राप्त अनुभव के आधार पर समाज जीवन से जुड़े विविध समस्याओं का समाधान सम्भव हो पाया है। विशेष रूप से कृषि जीवी समाज से जुड़े लोगों का दैनंदिन जीवन के विविध समस्याओं का समाधान के लिए लोक ज्ञान इन डाक के वचनों में मिलता है। डाक के वचन की भाँति भारत के विविध प्रदेशों में खनार वचन, डंक, भड्डुर, भड्डुरी आदि का उल्लेख मिलता है। विविध विद्वानों के अनुसार डाक, खना, डंक, भड्डुर, भड्डुरी के रचयिता एक ही व्यक्ति नहीं है। किसी-किसी के अनुसार डाकार्णव ग्रंथ के साथ भी डाक के वचनों का सम्पर्क है। लेकिन डाकार्णव के विषयवस्तु और प्रसंग के साथ डाक के वचनों का मेल नहीं है। डाक कोई ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं है, डाक, खना, डंक, भड्डुर सिर्फ लोक समाज में प्रचलित मौखिक परम्परा है। प्राचीन काल से ही साधारण जन में मौखिक रूप से प्रचलित कृषि, ज्योतिष और यात्रा विषयक बातों में डाक, भड्डुर, खना, डंक आदि काल्पनिक नामों का उल्लेख होने पर भी उन लोगों के जन्म स्थान, पिता-माता का प्रामाणिक तथ्य प्राप्त नहीं होता।

डाक के वचनों के अंतर्गत विषयों के बारे में चर्चा करने से पता चलता है कि जन्म प्रकरण, धर्म प्रकरण, न्याय प्रकरण, नीति प्रकरण, व्यंजन प्रकरण, रंधन प्रकरण, गृहिणी प्रकरण, परित्याग कथन, वर्षा वर्णन, वृक्ष लक्षण, कृषि लक्षण, ज्योतिष प्रकरण, यात्रा कथन, गृह लक्षण, नारी लक्षण आदि विविध विषय इनमें अंतर्निहित है।

असमिया जातीय जीवन से जुड़े सभी आवश्यक बातों का उल्लेख डाक के वचनों में मिलता है। इसलिए डाक के वचनों को असमिया जातीय जीवन के अनुभवों का एक सम्मिलित रूप कहा जा सकता है। इसमें विविध युगों के ज्ञान संचित है, इसलिए ये नै व्यक्तिक और वस्तुनिष्ठ है। इनके रचयिता सिर्फ एक ही व्यक्ति नहीं है। डाक के वचनों में लोक समाज की चिंताधारा स्पष्ट रूप से प्रतिफलित होती है। कृषिजीवी जन साधारण के कृषि, शिल्प और वाणिज्य आदि विषयों के अलावा पारिवारिक, सामाजिक जीवन के आवश्यक बहुत से बातों का उल्लेख इनमें हुआ है। असमिया सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन के प्रयोजनीय विषय, लोक जीवन के अनुभव के संरक्षण और संवर्धन में इन वचनों की भूमिका उल्लेखनीय है।

4.5.2 असमिया समाज-जीवन में डाक के वचन का भुमिका

लोक समाज के हित के लिए अति आवश्यक डाक के वचनों में समाज में प्रचलित अधिक संख्यक सामाजिक लोकाचार, लोकरीति, लोक विश्वास आदि डाक के वचनों के द्वारा सुंदर रूप से व्यक्त हुआ है। संतान जन्म के पश्चात लेनेवाली सावधानता, शिशु की देखभाल, मातृ की देखभाल, पारिवारिक और धर्मीय जीवन में पालन करने वाले प्राय: बातों का उल्लेख डाक के वचनों में मिलता है। लोक समाज में प्रचलित धर्म, परोपकार, जन कल्याण, अहिंसा आदि का उल्लेख इन प्रवचनों द्वारा अभिव्यक्त हुआ है। शरीर को रोग मुक्त करने का उपाय, खाद्याभ्यास, स्वास्थ्य सम्मत विधि, पुरूष-नारी लक्षण, कृषि के लिए भूमि का चयन, गौ धन का पालन, फसल उत्पादन, प्रकृति का क्रिया-कलाप, भविष्य के लिए सर्तकता आदि का भी उल्लेख हुआ है। असमिया जातीय जीवन के सामग्रिक दिशाओं को व्यक्त करनेवाले यह डाक के वचन असमिया लोक साहित्य के अन्यतम प्रमुख सम्पदा है।

अत: कह सकते हैं कि डाक के वचन में धर्म, परोपकार, नीतिवचन, नैतिक, आध्यात्मिक जीवन-यापन

के लिए आवश्यक परामर्श, जातीय एकता, सम्प्रीति आदि यथार्थ रूप से व्यक्त हुआ है।

4.6 सारांश

उद्भवकालीन असमिया साहित्य असमिया साहित्य की प्रारम्भिक अवस्था को दर्शाता है, जिसमें लिखित साहित्य से पहले मौखिक या लोक साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। प्राचीन असम में 5वीं से 12वीं शताब्दी तक विभिन्न राजाओं के शासनकाल में सांस्कृतिक और भाषाई विकास के साथ साहित्यिक परम्पराओं का भी विकास हुआ। इस काल में मौखिक परम्परा के रूप में लोक साहित्य का व्यापक प्रसार था, जिसमें लोकगीत, कथाएँ, लोकोक्तियाँ, मंत्र तथा डाक के वचन जैसे रूप शामिल थे।

मंत्र साहित्य असमिया लोक संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसका उपयोग देव-देवियों की स्तुति, धार्मिक अनुष्ठानों, रोग निवारण तथा जादू-टोने से संबंधित कार्यों में किया जाता था। यह मुख्यत: मौखिक परम्परा में प्रचलित रहा और बाद में कुछ मंत्रों को लिखित रूप में भी संकलित किया गया। मंत्र साहित्य में लोक विश्वास, धार्मिक आचार-व्यवहार, सामाजिक रीति-नीतियों तथा सांस्कृतिक परम्पराओं का स्पष्ट प्रतिबिंब दिखाई देता है। डाक के वचन असमिया लोक साहित्य की एक महत्वपूर्ण धरोहर हैं। इनमें कृषि, स्वास्थ्य, धर्म, नीति, परिवार, सामाजिक व्यवहार तथा प्रकृति से संबंधित व्यावहारिक ज्ञान संचित है। डाक के वचन सामान्य लोगों के अनुभवों और लोकबुद्धि का संग्रह हैं, जो समाज के दैनिक जीवन में मार्गदर्शन प्रदान करते रहे हैं। इस प्रकार उद्भवकालीन असमिया साहित्य में मंत्र साहित्य और डाक के वचन असमिया समाज की सांस्कृतिक, सामाजिक तथा बौद्धिक परम्पराओं को समझने के महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

K4.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

54.8 अधिक जानने के लिए

असमिया ग्रंथ

1. सत्येंद्र नाथ शर्मा: असमिया साहित्यर समीक्षात्मक इतिवृत्त, सौमार प्रकाश, गुवाहाटी, 2004।
2. डॉ. हेमंत कुमार शर्मा: असमिया साहित्य दृष्टिपात, बीणा लाइब्रेरी, गुवाहाटी, 2011।
3. भवजित बायन, असमिया साहित्यर बुरंजी, माँ लक्ष्मी पाब्लिकेचन, गुवाहाटी, 2019।
4. महेश्वर नेउँग: असमिया साहित्यर रूपरेखा, चंद्र प्रकाश, गुवाहाटी, 1983।
5. महेश्वर नेउँग: असमिया साहित्यर बुरंजीतए भुमुकि, शुवनिप्रकश, गुवाहाटी, 1940।
6. हेमचंद्र गोस्वामी: असमिया साहित्य रचाने कि, बाणी मंदिर, गुवाहाटी, 2001।
7. लीला गगै: असमिया लोक सहित्यर रूपरेखा, स्टुदेंतछएम्परियाम: डिब्रुगड़, 1984।
8. प्रफुल्ल कुमार नाथ: असमिया साहित्य आरु संस्कृतिर रूपरेखा, वाणी मंदिर, गुवाहाटी, 2004।
9. प्रफुल्ल कुमार नाथ: असमर लोकजीवन आरु संस्कृति, एल. एल पब्लिकेशन, गुवाहाटी, 2004।
10. विरिंचि कुमार बरुवा: असमर लोक संस्कृति, वीणा लाइब्रेरी, गुवाहाटी, 1961।

M4.10 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1 का उत्तर: उद्भवकालीन असमिया साहित्य मुख्यत: मौखिक या लोक परम्परा पर आधारित था।

प्रश्न 2 का उत्तर: असमिया साहित्य के प्रथम लिखित रूप के रूप में चर्यापद का उल्लेख किया जाता है।

प्रश्न 3 का उत्तरः असमिया लोक साहित्य को दो भागों में विभाजित किया गया है—गेय साहित्य और कथा साहित्य।

प्रश्न 4 का उत्तरः देव-देवियों को प्रसन्न करने, धार्मिक कार्यों तथा रोग निवारण आदि के लिए प्रयुक्त शब्दों या वचनों को मंत्र साहित्य कहा जाता है।

प्रश्न 5 का उत्तरः मंत्र साहित्य को मुख्यतः तीन भागों में विभाजित किया जाता है—प्रार्थना मंत्र, धर्मीय कृत्य से संबंधित मंत्र और जादूविद्या से संबंधित मंत्र।

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए

1. साहित्य कितने प्रकार के है?
2. डाक का वचन क्या है?
3. मौखिक साहित्य किसे कहते है?
4. कथ्य साहित्य क्या है?
5. डाक के वचन कथ्य साहित्य या गेय साहित्य?
6. कथ्य सहित्य के उदाहरण दीजिए।

(क) दीर्घ प्रश्न (5 और 10 नम्बर के लिए)

1. उद्भवकालीन असमिया साहित्य का संक्षिप्त परिचय दीजिए?
2. मंत्र साहित्य से तात्पर्य क्या है?
3. मंत्र साहित्य के भागों का उल्लेख करते हुए विस्तृत रूप से आलोचना कीजिए?
4. मंत्र साहित्य को क्यों जन साहित्य या लोक साहित्य कहा जाता है?
5. मंत्र साहित्य का असमिया समाज में विस्तार के संबंध में आलोचना कीजिए?
6. डाक के वचन किसे कहते हैं? असमिया जातीय जीवन में डाक के वचन की भूमिका के विषय में आलोचना कीजिए?
7. मंत्र साहित्य को क्यों 'उभोता वेद' कहा जाता है?
8. 'डाकर वचन वेदर वाणी' यानी डाक के वचन वेद के वाणी है- का तात्पर्य क्या है?
9. डाक के वचन में लोक जीवन की प्रतिच्छवि कैसे प्रतिफलित हुई है-स्पष्ट कीजिए।

****

इकाई-5 वैष्णव युग

इकाई की रूपरेखा

5.1 उद्देश्य
5.2 प्रस्तावना
5.3 शंकरी युग या वैष्णव युग:
5.4 नव-वैष्णव साहित्य का वर्गीकरण:
5.5 नव-वैष्णव भक्ति जागरण के कारण और इसके लक्षण:
5.6 वैष्णव साहित्य के सामान्य लक्षण:
5.7 सारांश
5.8 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
5.9 अधिक जानने के लिए पढ़ें
5.10 अभ्यास प्रश्न

5.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

- वैष्णव युग अथवा शंकरी युग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और उसके उद्भव के कारणों को जानेंगे।
- नव-वैष्णव भक्ति आंदोलन की प्रकृति, उद्देश्यों और सामाजिक प्रभावों को समझ सकेंगे।
- नव-वैष्णव साहित्य के वर्गीकरण एवं उसके विभिन्न रूपों का अध्ययन कर ज्ञान प्राप्त कीजिए।
- भक्ति जागरण के प्रमुख कारणों और उसके लक्षणों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- वैष्णव साहित्य के सामान्य लक्षणों, भाषा, शैली तथा विशेषताओं से परिचित होंगे। वैष्णव युग के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक योगदान का समग्र मूल्यांकन कर सकेंगे।

5.2 प्रस्तावना

वैष्णव युग, जिसे शंकरी युग के नाम से भी अभिहित किया जाता है, पंद्रहवीं से सोलहवीं शताब्दी के मध्य असमिया साहित्य एवं संस्कृति के इतिहास में एक अत्यंत महत्वपूर्ण एवं गौरवपूर्ण कालखंड के रूप में स्थापित है। इस युग का उद्भव महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव के नेतृत्व में विकसित नव-वैष्णव भक्ति आंदोलन के परिणाम स्वरूप हुआ जिसने न केवल धार्मिक चेतना को नवदिशा प्रदान की, बल्कि साहित्य, कला और समाज के विविध आयामों को भी गहराई से प्रभावित किया। इस काल में भक्ति को जीवन का केन्द्रीय तत्व मानते हुए सरल, लोकाभिमुख तथा मानवतावादी दृष्टिकोण को प्रतिष्ठित किया गया।

शंकरदेव एवं उनके प्रमुख शिष्य माधवदेव के सृजनात्मक योगदान के फलस्वरूप असमिया साहित्य में बोरगीत, अंकिया नाट, कीर्तन-घोषा, दशम आदि नई साहित्यिक विधाओं का विकास हुआ, जिनके माध्यम से भक्ति, नैतिकता और सामाजिक समरसता के आदर्शों का व्यापक प्रसार संभव हुआ। यह युग केवल साहित्यिक उन्नति तक सीमित नहीं रहा, अपितु सामाजिक पुनर्गठन, जाति-भेद के विरोध तथा धार्मिक उदारता के माध्यम से एक समन्वित सांस्कृतिक चेतना के निर्माण का भी काल रहा।

प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत शंकरी अथवा वैष्णव युग की समग्र रूपरेखा को स्पष्ट करने का प्रयास किया जाएगा। इसके अंतर्गत नव-वैष्णव साहित्य के वर्गीकरण, नव-वैष्णव भक्ति जागरण के कारणों एवं उसके प्रमुख लक्षणों तथा वैष्णव साहित्य की सामान्य विशेषताओं का विशद विवेचन किया जाएगा। साथ ही यह

समझने का प्रयास किया जाएगा कि किस प्रकार इस युग ने असमिया समाज को एक नई वैचारिक दिशा प्रदान करते हुए साहित्यिक परंपरा को सुदृढ़ एवं समृद्ध बनाया। इस प्रकार यह इकाई वैष्णव युग की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक महत्ता को समग्रता में उद्घाटित करने का प्रयास करती है।

5.3 शंकरी युग या वैष्णव युग

असमिया साहित्य के इतिहास में पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल तक (मुख्यत: 1449-1568 ईस्वी, अर्थात् शंकरदेव के जन्म से उनके तिरोभाव तक) का समयखंड 'शंकरी युग' अथवा 'नव-वैष्णव युग' के रूप में अभिहित किया जाता है। यह कालखंड असम के साहित्यिक, सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास में एक विशिष्ट मोड़ का प्रतिनिधित्व करता है। महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव द्वारा प्रवर्तित नव-वैष्णव धर्म के भक्ति आंदोलन को इस युग की केंद्रीय प्रेरक शक्ति के रूप में स्वीकार किया जाता है, जिसने असमिया समाज में व्यापक वैचारिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया को गति प्रदान की। 1449 ईस्वी में शंकरदेव के जन्म के साथ इस युग की शुरुआत मानी जाती है, जो पंद्रहवीं शताब्दी के अंत से सत्रहवीं शताब्दी के आरंभ तक विस्तृत रहा।

प्राक-शंकरी युग के साहित्यिक अवदान, विशेषत: हेमा सरस्वती, माधव कंदली आदि कवियों द्वारा निर्मित आधारभूमि, तथा पूर्ववर्ती वैष्णव परंपराओं के आलोक में शंकरदेव ने एक नवीन धार्मिक-सांस्कृतिक धारा का सूत्रपात किया। उनके द्वारा प्रतिपादित 'एक शरण नाम धर्म' इस युग की मूल वैचारिक संरचना के रूप में स्थापित हुआ जिसने जाति-पांति आधारित सामाजिक विभाजनों को चुनौती देते हुए समतामूलक सामाजिक दृष्टि का प्रतिपादन किया।

भक्ति आंदोलन के प्रसार हेतु शंकरदेव और उनके अनुयायियों द्वारा काव्य, नाटक (अंकिया नाट), गीत (बरगीत) तथा गद्य साहित्य की सशक्त परंपरा का विकास किया गया। इस सृजनात्मक प्रक्रिया ने न केवल असमिया भाषा को समृद्ध किया बल्कि उसे एक सुसंगठित साहित्यिक माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित भी किया। इस कारण यह काल असमिया साहित्य का 'स्वर्ण युग' माना जाता है। इस युग के साहित्य में शंकरदेव की रचनात्मक प्रतिभा का व्यापक परिलक्षण होता है साथ ही उनके वैचारिक आदर्शों से प्रेरित होकर अनेक साहित्यकारों और कवियों ने साहित्य-सृजन में सक्रिय सहभागिता की।

शंकरदेव के बहुआयामी योगदान को दृष्टिगत रखते हुए साहित्ये तिहासकारों ने इस काल को 'शंकरी युग' के अतिरिक्त 'नव-वैष्णव युग' तथा 'भक्ति युग' जैसे विभिन्न नामों से अभिहित किया है। वस्तुत: इस युग में विकसित 'शंकरी साहित्य', 'नव-वैष्णव साहित्य' तथा 'असमिया भक्ति साहित्य' के बीच कोई मौलिक भिन्नता नहीं है, अपितु ये सभी एक ही सांस्कृतिक-धार्मिक प्रवाह के विभिन्न रूप हैं।

इस युग की पृष्ठभूमि का सम्यक? विश्लेषण करने हेतु अखिल भारतीय स्तर पर विकसित भक्ति आंदोलन की ऐतिहासिक प्रक्रिया को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। पंद्रहवीं शताब्दी के आसपास सम्पूर्ण भारतवर्ष में वैष्णव भक्ति आंदोलन का व्यापक प्रसार हुआ, जिसका प्रमुख उद्देश्य लोकजीवन का आध्यात्मिक उत्थान था। विद्वानों के अनुसार वैदिक विष्णु-उपासना पद्धति और लोकधर्म के पारस्परिक समन्वय के परिणामस्वरूप नव-वैष्णव या भक्ति धर्म का विकास संभव हुआ। ईसा पूर्व से ही वैष्णव सम्प्रदाय की उपस्थिति के प्रमाण विभिन्न साहित्यिक, अभिलेखीय तथा शास्त्रीय स्रोतों में उपलब्ध हैं।

सातवीं से दसवीं शताब्दी के मध्य दक्षिण भारत के तमिल प्रदेश में आलवार संतों ने वैष्णव भक्ति को एक नवीन सांगीतिक एवं भावात्मक रूप प्रदान किया। उन्होंने स्थानीय भाषा में भक्तिपरक गीतों की रचना कर धर्म को जनसामान्य के निकट पहुँचाया। अनेक विद्वान इसी काल में 'भागवत पुराण' की रचना का संकेत करते हैं। इसके उपरांत यमुनाचार्य, रामानुज, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य, ज्ञानदेव, नामदेव, कबीर, बल्लभाचार्य तथा

दादूदयाल आदि संतों ने भारत के विभिन्न क्षेत्रों में भक्ति आंदोलन का विस्तार किया। उनके शिष्यों और अनुयायियों ने इस आंदोलन को व्यापक और सुदृढ़ स्वरूप प्रदान किया। चौदहवीं-पंद्रहवीं शताब्दी में बंगाल में चैतन्यदेव तथा असम में शंकरदेव ने इस आंदोलन को एक संगठित और प्रभावी दिशा प्रदान करते हुए सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को तीव्र किया।

भक्ति आंदोलन के उद्भव और प्रसार के पीछे अनेक सामाजिक, भाषिक और राजनीतिक कारक भी सक्रिय थे। इनमें प्रमुख हैं—नव भारतीय आर्य भाषाओं का विकास और उनमें संस्कृत साहित्य का अनुवाद; एकेश्वरवाद की पुनः स्थापना; क्षेत्रीय भाषाओं में साधना-पद्धति का प्रसार; तथा धर्म-सुधारकों द्वारा समाज के सभी वर्गों को आध्यात्मिक उन्नति के अवसर प्रदान करना। इन कारकों ने भक्ति आंदोलन को एक व्यापक सामाजिक आधार प्रदान किया।

असम के संदर्भ में देखा जाए तो प्रारम्भिक काल में ही विष्णु उपासना अथवा वैष्णव धर्म के बीज विद्यमान थे। प्राक-शंकरी युग के कवियों की रचनाओं में विष्णु महिमा का वर्णन मिलता है, किंतु वह व्यापक सामाजिक जागरण का रूप ग्रहण नहीं कर सका था। शंकरदेव ने इस सूप्त चेतना को जागृत करते हुए पूर्ववर्ती वैष्णव परंपराओं के आधार पर एक नवीन और सशक्त नव-वैष्णव धर्म की स्थापना की। इस प्रक्रिया के माध्यम से उन्होंने असम में एक व्यापक सांस्कृतिक पुनर्जागरण का सूत्रपात किया, जिसने साहित्य, समाज और संस्कृति के विभिन्न आयामों को गहराई से प्रभावित किया शंकरी युग केवल एक साहित्यिक कालखंड नहीं, बल्कि एक समग्र सांस्कृतिक आंदोलन का प्रतीक है, जिसने असमिया समाज को नई दिशा प्रदान करते हुए उसे भारतीय भक्ति परंपरा के व्यापक परिप्रेक्ष्य से जोड़ने का कार्य किया।

शंकरी युग, नव-वैष्णव आंदोलन और असमिया साहित्य

भारतीय साहित्य और संस्कृति के इतिहास में भक्ति आंदोलन एक अत्यंत व्यापक, गहन और प्रभावशाली धारा के रूप में प्रतिष्ठित है। यह केवल धार्मिक चेतना का प्रवाह नहीं था, बल्कि सामाजिक पुनर्गठन, सांस्कृतिक पुनर्जागरण और भाषाई विकास का भी सशक्त माध्यम बना। इसी व्यापक भारतीय परिप्रेक्ष्य में असमिया साहित्य का शंकरी युग विशेष महत्त्व रखता है, जो पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल तक विस्तृत है। यह युग मुख्यतः महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव के व्यक्तित्व, कृतित्व और उनके द्वारा प्रवर्तित नव-वैष्णव धर्म के कारण विशिष्ट बनता है। इस कालखंड ने असम के सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक जीवन में गहरे परिवर्तन उपस्थित किए और एक नए युग का सूत्रपात किया।

भक्ति आंदोलन की जड़ें भारतीय धार्मिक इतिहास की प्राचीन परंपराओं में निहित हैं। वैदिक काल में धार्मिक जीवन का केंद्र यज्ञ और कर्मकांड हुआ करता था। उस समय मनुष्य प्राकृतिक शक्तियों को देवत्व प्रदान कर उनकी आराधना करता था और विभिन्न प्रकार के अनुष्ठानों के माध्यम से उन्हें प्रसन्न करने का प्रयास करता था। किंतु कालांतर में यह बाह्य आडंबर धीरे-धीरे आंतरिक श्रद्धा, भक्ति और व्यक्तिगत ईश्वर-सम्बंध की ओर परिवर्तित होने लगा। इस प्रक्रिया में भक्ति एक ऐसे आध्यात्मिक मार्ग के रूप में उभरकर सामने आई, जिसमें मनुष्य और ईश्वर के बीच सीधा, भावनात्मक और व्यक्तिगत संबंध स्थापित होता है। 'भक्ति' शब्द की व्युत्पत्ति 'भज' धातु से मानी जाती है, जिसका अर्थ है—सेवा करना, भाग लेना या समर्पण करना। इस प्रकार भक्ति केवल उपासना का माध्यम नहीं, बल्कि ईश्वर के साथ भावात्मक एकात्मता का प्रतीक बन जाती है।

भक्ति आंदोलन का विकास केवल उत्तर भारत तक सीमित नहीं रहा, बल्कि दक्षिण भारत में भी इसका सशक्त रूप देखने को मिलता है। तमिल प्रदेश के आलवार संतों ने भक्ति को जनसामान्य की भाषा और भावनाओं से जोड़ते हुए उसे एक जीवंत सांस्कृतिक आंदोलन का रूप प्रदान किया। उन्होंने तमिल भाषा में भक्तिपरक गीतों की रचना की, जिनमें विष्णु के विभिन्न अवतारों, विशेषतः कृष्ण और राम के प्रति गहन प्रेम और समर्पण की अभिव्यक्ति मिलती है। इन संतों ने धर्म को शास्त्रीय जटिलताओं से मुक्त कर जनसुलभ बनाया

और भक्ति को एक सार्वभौमिक आध्यात्मिक मार्ग के रूप में स्थापित किया।

दक्षिण भारत की इस परंपरा को आगे बढ़ाते हुए रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य और मध्वाचार्य जैसे आचार्यों ने भक्ति को दार्शनिक आधार प्रदान किया। रामानुजाचार्य ने विशिष्टा द्वैत दर्शन के माध्यम से सगुण ब्रह्म की उपासना को महत्त्व दिया और भक्ति को मुक्ति का साधन बताया। निम्बार्काचार्य ने भेदाभेद सिद्धांत के आधार पर राधा-कृष्ण की उपासना को प्रतिष्ठित किया, जबकि मध्वाचार्य ने द्वैतवाद के माध्यम से ईश्वर और जीव के भिन्न अस्तित्व को स्वीकार करते हुए भक्ति को प्रमुख साधन माना। इन आचार्यों के विचारों ने भक्ति आंदोलन को सुदृढ़ दार्शनिक आधार प्रदान किया और उसे व्यापक स्वरूप दिया।

उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन ने और भी व्यापक जनाधार प्राप्त किया। रामानंद ने भक्ति के द्वार सभी जातियों और वर्गों के लिए खोल दिए। उनके शिष्य कबीर, रैदास, तुलसीदास आदि संतों ने भक्ति को सामाजिक समरसता और आध्यात्मिक समानता का माध्यम बनाया। कबीर ने निर्गुण भक्ति का प्रचार करते हुए धार्मिक पाखंड और बाह्याचारों का विरोध किया, जबकि तुलसीदास ने रामभक्ति के माध्यम से आदर्श जीवन मूल्यों को प्रतिष्ठित किया। इसी प्रकार महाराष्ट्र में ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ और तुकाराम ने भक्ति को लोकजीवन से जोड़ते हुए उसे एक व्यापक सामाजिक आंदोलन का रूप दिया।

भक्ति आंदोलन की एक प्रमुख विशेषता उसकी समन्वयात्मक प्रवृत्ति है। इस आंदोलन ने विभिन्न धार्मिक परंपराओं, मतों और विचारधाराओं के बीच संवाद स्थापित किया और उन्हें एक साझा मंच प्रदान किया। शैव, वैष्णव, शाक्त, बौद्ध और जैन—सभी परंपराओं पर भक्ति आंदोलन का प्रभाव देखा जा सकता है। इसने धार्मिक विभाजन को कम करते हुए एक ऐसी आध्यात्मिक चेतना का निर्माण किया, जिसमें प्रेम, करुणा और समर्पण को सर्वोच्च स्थान दिया गया।

असम में नव-वैष्णव आंदोलन का उदय इसी व्यापक भारतीय भक्ति धारा के अंतर्गत हुआ। यद्यपि असम में शंकरदेव से पूर्व भी वैष्णव धर्म के तत्व विद्यमान थे, किंतु वे संगठित और प्रभावशाली रूप में विकसित नहीं हो पाए थे। प्राक-शंकरी युग के कवियों, जैसे माधव कंदली, ने रामायण और अन्य धार्मिक ग्रंथों का स्थानीय भाषा में अनुवाद कर एक महत्वपूर्ण आधार तैयार किया। इससे असमिया भाषा में धार्मिक साहित्य के विकास की दिशा प्रशस्त हुई और जनसामान्य में धार्मिक चेतना का प्रसार हुआ।

महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव ने इस पूर्ववर्ती परंपरा को आधार बनाकर नव-वैष्णव धर्म का प्रवर्तन किया। उन्होंने व्यापक भारत-भ्रमण के दौरान विभिन्न धार्मिक संप्रदायों और उनकी साधना पद्धतियों का अध्ययन किया और उनके अनुभवों के आधार पर एक सरल, सहज और जनसुलभ भक्ति मार्ग का निर्माण किया। 'एक शरण नाम धर्म' उनके द्वारा प्रतिपादित इस नव-वैष्णव धर्म का मूल आधार था। इसमें ईश्वर के प्रति एकनिष्ठ भक्ति, नाम-स्मरण, गुरु की महत्ता और सत्संग को प्रमुख स्थान दिया गया।

शंकरदेव ने भक्ति को केवल धार्मिक साधना तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे सामाजिक सुधार का माध्यम भी बनाया। उस समय असम में विभिन्न जातियों, जनजातियों और सामाजिक समूहों के बीच गहरा विभाजन था। शंकरदेव के नव-वैष्णव धर्म ने इन विभाजनों को समाप्त करने का प्रयास किया और सभी को एक समान आध्यात्मिक मंच पर लाने का कार्य किया। उन्होंने यह सिद्ध किया कि ईश्वर की भक्ति के लिए किसी विशेष जाति या वर्ग का होना आवश्यक नहीं है, बल्कि सच्ची श्रद्धा और समर्पण ही सबसे महत्वपूर्ण हैं।

शंकरी युग में साहित्यिक सृजन की अभूतपूर्व उन्नति हुई। शंकरदेव और उनके अनुयायियों ने काव्य, नाटक, गीत और गद्य की विभिन्न विधाओं में महत्वपूर्ण रचनाएँ कीं। 'अंकिया नाट' के माध्यम से उन्होंने धार्मिक कथाओं को नाटकीय रूप में प्रस्तुत किया, जिससे जनसामान्य को धर्म और नैतिकता का संदेश सरलता से प्राप्त हो सके। 'बरगीत' के रूप में उन्होंने संगीत और भक्ति का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत किया, जो आज भी असम की सांस्कृतिक परंपरा का अभिन्न अंग है।

असमिया भाषा के विकास में भी शंकरी युग का महत्वपूर्ण योगदान रहा। इस काल में भाषा को एक सुसंगठित और परिष्कृत साहित्यिक रूप प्राप्त हुआ। धार्मिक और साहित्यिक कृतियों के माध्यम से भाषा का मानकीकरण हुआ और वह व्यापक जनसंचार का माध्यम बनी। इससे असमिया साहित्य को एक नई पहचान और प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। राजनीतिक दृष्टि से भी यह युग महत्वपूर्ण था। आहोम और कोच राजवंशों के उदय ने असम में एक स्थिर राजनीतिक वातावरण प्रदान किया, जिससे सांस्कृतिक और साहित्यिक गतिविधियों को प्रोत्साहन मिला। इन शासकों की धार्मिक सहिष्णुता और उदारता ने नव-वैष्णव आंदोलन के प्रसार में सहायक भूमिका निभाई।

अंतत: यह कहा जा सकता है कि शंकरी युग असमिया साहित्य और संस्कृति के इतिहास में एक स्वर्णिम अध्याय है। यह युग केवल साहित्यिक उत्कर्ष का काल नहीं, बल्कि एक व्यापक सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का प्रतीक है। शंकरदेव के नेतृत्व में विकसित नव-वैष्णव आंदोलन ने असमिया समाज को एक नई दिशा प्रदान की और उसे भारतीय भक्ति परंपरा के व्यापक संदर्भ से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस प्रकार शंकरी युग भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में एक अद्वितीय और प्रेरणादायक स्थान रखता है, जो आज भी अपने आदर्शों और मूल्यों के कारण प्रासंगिक बना हुआ है।

अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1: शंकरी युग या वैष्णव युग किस कालखंड को कहा जाता है?

प्रश्न 2: शंकरी युग की प्रमुख प्रेरक शक्ति क्या थी?

प्रश्न 3: 'एक शरण नाम धर्म' का क्या महत्व है?

प्रश्न 4: शंकरी युग में विकसित प्रमुख साहित्यिक विधाएँ कौन-कौन सी हैं?

प्रश्न 5: शंकरी युग को असमिया साहित्य का स्वर्ण युग क्यों कहा जाता है?

5.4 नव-वैष्णव साहित्य का वर्गीकरण

नव-वैष्णव साहित्य से आशय उन साहित्यिक कृतियों से है, जिनका मुख्य उद्देश्य वैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार था। इस दृष्टि से शंकरदेव के साहित्य से लेकर उत्तर-शंकरकालीन साहित्य तक नव-वैष्णव धर्म के प्रसार का उद्देश्य निहित दिखाई देता है। यद्यपि उत्तर-शंकरकाल में भक्ति धर्म के प्रचार की प्रवृत्ति कुछ हद तक कमजोर अवश्य हुई, फिर भी एक ही परंपरा में रचित शंकरदेव के साहित्य से लेकर सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी तक लगभग समान विशेषताएँ देखने को मिलती हैं। साहित्य के विभिन्न रूपों के माध्यम से वैष्णव आदर्श को सार रूप में प्रस्तुत करते हुए राम सरस्वती, भट्टदेव से लेकर चरितकारों तक की रचनाएँ लगभग एक ही प्रवाह में विकसित होती रहीं। समग्र रचनाओं की समान विशेषताओं के आधार पर वैष्णव साहित्य को रचना-प्रणाली के अनुसार मुख्यत: छह भागों में विभाजित किया जा सकता है—(क) काव्य, (ख) नाटक, (ग) अनुसृष्टि, (घ) गीत और भटिमा, (ङ) गद्य तथा (च) चरित-पुस्तकें।

क) काव्य

आदि-वैष्णव युग की भाँति नव-वैष्णव साहित्य पूर्णत: काव्यप्रधान नहीं था, फिर भी काव्य रचना पर विशेष ध्यान दिया गया। भागवत पुराण, हरिवंश पुराण, विष्णु पुराण, वामन पुराण, रामायण, महाभारत आदि संस्कृत ग्रंथों की कथाओं के आधार पर कवियों ने स्वतंत्र काव्यों की रचना की। शंकरदेव ने भागवत के पदों का रूपांतरण करने के अतिरिक्त उसके कथानक के आधार पर कई स्वतंत्र काव्य भी रचे। उन्होंने कुल नौ काव्यों की रचना की, जिनमें 'हरिश्चंद्र उपाख्यान', 'रुक्मिणी हरण', 'अजामिल उपाख्यान', 'बलिछलन', 'अमृत मंथन' और 'कुरुक्षेत्र' प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त 'कामजय काव्य', 'गोपी-उद्धव संवाद' और 'कृष्ण का प्रस्थान तथा पांडवों का निर्गमन' में भी काव्यगत विशेषताएँ पाई

जाती हैं।

माधवदेव का 'राजसूय काव्य' भागवत के दशम स्कंध के अध्याय 69-74 पर आधारित है। महाभारत के वनपर्व के आधार पर राम सरस्वती द्वारा रचित बधकाव्य असमिया साहित्य की अनमोल धरोहर हैं। यद्यपि इनका आधार वनपर्व है, फिर भी इनमें अनेक पौराणिक कथाएँ समाहित हैं। पांडवों के वनवास काल में भीम और अर्जुन द्वारा असुरों के वध की वीरतापूर्ण घटनाओं का काव्यात्मक चित्रण कवि की प्रतिभा को दर्शाता है। श्रीधर कंदली की 'कानखोवा' कथा भी कल्पनात्मक है, जिसमें यशोदा कृष्ण को सुलाने के लिए 'कानखोवा' का भय दिखाती हैं, परंतु कृष्ण उसके अस्तित्व पर प्रश्न उठाते हैं। यद्यपि इसमें शंकरदेव-माधवदेव के काव्यों जैसी गंभीरता नहीं है, फिर भी यह लोकसमाज में लोकप्रिय रही है।

(ख) नाटक

नव-वैष्णव युग का असमिया साहित्य को एक महत्वपूर्ण योगदान नाटक के रूप में प्राप्त हुआ। शंकरदेव ने वैष्णव धर्म के प्रचार के लिए नाटकों को एक प्रभावी माध्यम के रूप में अपनाया। उन्होंने संस्कृत नाट्य साहित्य से प्रेरणा ली, साथ ही स्थानीय लोकनाट्य और अन्य सांस्कृतिक परंपराओं के तत्वों को समाहित कर एक नई नाट्यधारा का विकास किया। माना जाता है कि तीर्थ यात्रा से लौटने के बाद उन्होंने 'चिह्न यात्रा' नामक नाटक की रचना की थी।

शंकरदेव को असमिया नाट्य साहित्य का जनक कहा जाता है, क्योंकि उन्होंने पहली बार संगठित रूप में नाटक की रचना और मंचन की परंपरा विकसित की। उनके प्रमुख नाटक हैं—'पत्नीप्रसाद', 'केलिगोपाल', 'कालिय दमन', 'रुक्मिणी हरण', 'पारिजात हरण' और 'राम विजय'। माधवदेव ने भी नाटक लिखे, परंतु उनका 'अर्जुन भंजन' ही शंकरदेव के नाटकों की श्रेणी में आता है। अन्य नाट्यरूपों को 'झुमुरा' कहा गया है। उत्तर-शंकरकाल में भी नाट्यरचना की परंपरा जारी रही। भवानीपुर के गोपाल आटा, दैतारी ठाकुर और रामचरण आटा जैसे रचनाकारों ने महत्वपूर्ण नाटक लिखे। सत्रों में नव नियुक्त सत्राधिकारी द्वारा स्वयं रचित नाटक का मंचन एक परंपरा के रूप में विकसित हुआ।

(ग) अनुसृष्टि

नव-वैष्णव साहित्य की एक विशिष्ट विशेषता 'अनुसृष्टि' है। इसमें संस्कृत ग्रंथों के मूल भाव को बनाए रखते हुए स्थानीय भाषा और संस्कृति के अनुरूप पुनः रचना की गई। यह मात्र अनुवाद नहीं, बल्कि सृजनात्मक रूपांतरण है। कवियों ने संस्कृत ग्रंथों के कथानकों को सरल भाषा में प्रस्तुत करते हुए उनमें स्थानीय तत्वों का समावेश किया। शंकरदेव द्वारा रचित रामायण का उत्तरकांड और माधवदेव का आदिकांड इसी श्रेणी में आते हैं। माधवदेव की 'नामघोषा' भी अनुसृष्टि का उत्कृष्ट उदाहरण है, जिसमें विभिन्न ग्रंथों से प्रेरणा लेकर मौलिक ढंग से प्रस्तुति दी गई है। शंकरदेव की 'भक्ति प्रदीप' तथा भट्टदेव की 'भक्तिसार' जैसी कृतियाँ भी इसी परंपरा की द्योतक हैं।

(घ) गीत और भटिमा

नव-वैष्णव युग में गीत-साहित्य का विशेष विकास हुआ। शंकरदेव और माधवदेव ने भारतीय राग-संगीत की परंपरा के आधार पर उच्च आध्यात्मिक भावों से युक्त गीतों की रचना की, जिन्हें 'बरगीत' कहा जाता है। वैष्णव युग के गीतों को मुख्यतः तीन भागों में विभाजित किया जाता है—बरगीत, नाट्यगीत और भटिमा। बरगीत केवल शंकरदेव और माधवदेव द्वारा रचित गीतों को कहा जाता है, जबकि अन्य कवियों ने भी इसी शैली में गीत रचे। नाटकों में प्रयुक्त गीत कथा के प्रस्तुतीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भटिमा स्तुति गीत होते हैं, जिनमें देवता, राजा या गुरु की प्रशंसा की जाती है। शंकरदेव ने तीन प्रकार की भटिमा लिखी—देवभटिमा, राजभटिमा और नाट्यभटिमा, जबकि माधवदेव ने 'गुरुभटिमा' को जोड़कर इन्हें चार प्रकार का बना दिया।

(ङ) गद्य

असमिया गद्य साहित्य का प्रारंभ शंकरदेव से माना जाता है। उनके नाटकों में प्रयुक्त संवाद गद्य के प्रारंभिक उदाहरण हैं। इस गद्य की भाषा 'ब्रजावली' थी, जो असमिया, उड़िया और मैथिली के मिश्रण से बनी एक कृत्रिम भाषा थी। शंकरदेव के बाद माधवदेव और अन्य रचनाकारों ने भी गद्य का प्रयोग किया। भट्टदेव ने 'कथा भागवत' और 'कथा गीता' की रचना कर असमिया गद्य को सुदृढ़ आधार प्रदान किया। उनके गद्य में संस्कृत शब्दों की प्रधानता थी, फिर भी स्थानीय भाषा का भी समावेश मिलता है। आगे चलकर चरित साहित्य में गद्य का विकास हुआ, जिसमें 'बरदोवा चरित' और 'कथागुरु चरित' प्रमुख हैं।

(च) चरित साहित्य

शंकरदेव और माधवदेव के जीवन और कार्यों पर आधारित साहित्य को 'चरित साहित्य' कहा जाता है। यह परंपरा मौखिक रूप से आरंभ हुई और बाद में लिखित रूप में विकसित हुई। इसमें संतों के जीवन, उनके कार्यों और वैष्णव धर्म के प्रसार का वर्णन किया गया है। चरित साहित्य को दो भागों में बाँटा जाता है—गद्य चरित और पद्य चरित। गद्य चरित में 'बरदोवा चरित' और 'कथागुरु चरित' प्रमुख हैं, जबकि अन्य अधिकांश चरित पद्य में रचित हैं। रामचरण ठाकुर और दैतारी ठाकुर जैसे चरितकारों ने इस परंपरा को समृद्ध किया। चरित साहित्य में केवल संतों के जीवन का वर्णन ही नहीं, बल्कि उस समय की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियों का भी विस्तृत चित्रण मिलता है। इस प्रकार यह साहित्य ऐतिहासिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

5 महत्वपूर्ण बिंदु

वैष्णव युग के अध्ययन में एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि इस काल में संस्थागत धार्मिक संरचनाओं का विकास हुआ, विशेषत: सत्र और नामघर जैसी व्यवस्थाओं ने सामुदायिक जीवन को संगठित किया। इन संस्थानों ने केवल धार्मिक गतिविधियों का संचालन ही नहीं किया, बल्कि शिक्षा, सांस्कृतिक अभिव्यक्ति और सामाजिक अनुशासन के केंद्र के रूप में भी कार्य किया। इसके अतिरिक्त हस्तलिखित पांडुलिपियों के संरक्षण, चित्रांकन (पाण्डुलिपि-चित्रकला) तथा नृत्य-नाट्य की विधाओं का क्रमिक विकास भी इसी युग की विशेष उपलब्धि है, जिसने असमिया सांस्कृतिक परंपरा को स्थायित्व और विशिष्ट पहचान प्रदान की।

5.5 नव-वैष्णव भक्ति जागरण के कारण और इसके लक्षण

भक्ति आंदोलन के सर्वभारतीय परिप्रेक्ष्य में यह स्पष्ट रूप से प्रतिपादित होता है कि ईस्वी नवमी शताब्दी से पंद्रहवीं शताब्दी के मध्यवर्ती कालखंड में समस्त भारतवर्ष के साथ-साथ असम प्रदेश में भी भक्ति आंदोलन का क्रमिक उद्भव और विकास हुआ। हिन्दू धर्म की वैष्णव शाखा ने प्राचीन असम में शाक्त तथा शैव परंपराओं के साथ विद्यमान वैचारिक एवं धार्मिक अंत:संघर्षों के मध्य भी अपनी सुदृढ़ स्थापना का प्रयास किया। प्राचीन असम में निर्मित विष्णु तथा देवी मंदिरों की भित्तियों पर उत्कीर्ण विष्णु के विविध अवतारों के चित्र इस तथ्य की ऐतिहासिक पुष्टि करते हैं। हिन्दू धर्म की अन्य शाखाओं की अपेक्षा विष्णु-उपासना पर आधारित वैष्णव भक्ति धर्म के जागरण के पीछे अनेक कारण कार्यरत रहे।

1. संस्कृत भाषा के जनसाधारण के लिए क्रमश: दुरूह होते जाने के परिणामस्वरूप, भाव-विनिमय के साधन के रूप में संस्कृत से विकसित अपभ्रंश तथा विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं का प्रचलन बढ़ा, जिससे संस्कृत का सामान्य जनजीवन से दूरी बनना स्वाभाविक था। फलत: प्राचीन संस्कृत ग्रंथों की कथात्मक परंपरा को जनसामान्य तक संप्रेषित करने के उद्देश्य से इन ग्रंथों का नव-भारतीय आर्य भाषाओं में अनुवाद किया गया। यद्यपि आर्य भाषाओं की अपेक्षा संस्कृत ग्रंथों का प्रारंभिक अनुवाद

द्रविड़ भाषाओं में हुआ, तथापि अनूदित ग्रंथों का अधिकांश भाग वैष्णव भावधारा से संपृक्त था। रामायण, महाभारत, गीता, भागवत आदि ग्रंथों में निहित वैष्णव आदर्शों ने जनमानस को सहज रूप से आकृष्ट किया; फलत: यह वैष्णव जागरण का एक प्रमुख प्रेरक तत्त्व सिद्ध हुआ।

2. वैष्णव आदर्श ने सामाजिक संरचना में व्याप्त ऊँच-नीच के भेदभाव को शिथिल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भक्ति आंदोलन से पूर्व उच्चवर्गीय हिन्दू समाज में जाति-आधारित विभाजन के कारण निम्नवर्गीय समुदायों के प्रति उपेक्षापूर्ण दृष्टिकोण विद्यमान था। वैष्णव भक्ति जागरण ने निम्नवर्गीय जनसमूह को समतुल्य धार्मिक अधिकार प्रदान करते हुए आध्यात्मिक उन्नयन के माध्यम से आत्मिक विकास का अवसर उपलब्ध कराया। भागवत के एकादश स्कंध में शंकरदेव द्वारा रचित निम्नलिखित पद इस संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय है—

   ''ब्राह्मणर चांडालर निबिचारि कुल।
   दातात चोरत दृष्टि एकतुल।।''

3. हिन्दू एवं मुसलमान समुदायों के मध्य विद्यमान वैमनस्य को दूर करने में वैष्णव आदर्श की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही। हिन्दू धर्म की पारंपरिक साधना-पद्धतियों—तप, जप, यज्ञ आदि—के स्थान पर नर-वैष्णव परंपरा ने भक्ति के श्रवण एवं कीर्तन को विशेष महत्व प्रदान किया। निराकार ब्रह्म की उपासना तथा नाम-स्मरण के माध्यम से मुक्ति प्राप्ति की यह पद्धति सर्वसाधारण के लिए ग्राह्य एवं सुगम सिद्ध हुई। पूर्वकालीन हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष की स्थिति को इस निराकार उपासना-पद्धति ने न्यून करने में सहायक भूमिका निभाई। हिन्दू और इस्लामी साधना-पद्धतियों के मध्य मूलभूत विरोध का अभाव रहा है। इस्लामी सूफी संतों एवं कवियों ने ईश्वर एवं भक्त के संबंध को स्पष्ट करते हुए प्रेम-भक्ति के सिद्धांत को प्रतिष्ठित किया। हिन्दू समाज के निम्नवर्गीय अनेक व्यक्तियों ने इस्लाम धर्म को ग्रहण किया था, किन्तु भक्ति जागरण ने उन्हें हिन्दू समाज में भी सम्मानजनक जीवन जीने का अवसर प्रदान किया। अनेक मुस्लिम कवियों ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के गीतों की रचना की। असमिया भाषा के 'जिक्र' साहित्य में इस समन्वय का उदाहरण दृष्टिगत होता है—

   ''मोर मनत भेद भाव नाइ ओ'' अल्ला
   मोर मनत भिन पर नाइ ओ'' अल्ला हिन्दु कि मुसलमान एके अल्लार फोरमान
   मोर मनत एकेटि भाव।''

4. भक्ति आंदोलन से पूर्व हिन्दू धर्म में बहुदेववादी उपासना-पद्धति का व्यापक प्रचलन था, जिसके कारण सामान्य व्यक्ति के लिए उपयुक्त साधना-पथ का चयन कठिन हो जाता था। साथ ही यह पद्धति अत्यधिक कर्मकांड प्रधान एवं व्यय-साध्य थी। नव-वैष्णव जागरण ने एकेश्वरवाद की स्थापना के माध्यम से एक सरल एवं सुलभ भक्ति-पथ का निर्देश किया, जिसके परिणामस्वरूप जनसामान्य ने इसे सहज रूप से स्वीकार किया।

5. आठवीं-नौवीं शताब्दी से लेकर पंद्रहवीं शताब्दी तक भारतवर्ष में विभिन्न संप्रदायों—जैसे श्री संप्रदाय, ब्रह्म संप्रदाय, सनक संप्रदाय आदि—ने अद्वैत, विशिष्टाद्वैत तथा द्वैत जैसे दार्शनिक सिद्धांतों को ज्ञानमार्ग के आधार पर स्थापित किया। शंकराचार्य के प्रतिपादित ज्ञानमार्ग में भक्ति का स्थान अपेक्षाकृत गौण था, तथापि इन संप्रदायों ने वैष्णव दर्शन के आलोक में भक्ति को भी समान रूप से महत्त्व प्रदान किया। इससे भक्ति मार्ग जनसाधारण के लिए अधिक सुलभ हुआ और वैष्णव जागरण को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।

6. नव-वैष्णव जागरण के प्रसार में कवियों एवं साहित्यकारों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही। संस्कृत के अधिकांश वैष्णव ग्रंथों का क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद किया गया। तुलसीदास, सूरदास,

जगन्नाथ दास, कृतिवास तथा असम में शंकरदेव एवं माधवदेव ने इन ग्रंथों को जनभाषा में रूपांतरित कर वैष्णव आदर्शों को व्यापक जनसमूह तक पहुँचाया।

7. संगीत एवं सांस्कृतिक रूपांतरण की प्रक्रियाएँ भी इस जागरण के प्रमुख कारणों में सम्मिलित थीं। दक्षिण भारत के आलवार संतों द्वारा रचित गीत, उत्तर भारत में रामायण से संबंधित गायन-परंपरा तथा उत्तर-पूर्व में शंकरदेव-माधवदेव द्वारा रचित राम एवं कृष्ण लीला संबंधी गीतों ने जनसाधारण को अत्यधिक आकर्षित किया।
8. भारत के विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित राम एवं कृष्ण लीला पर आधारित नृत्य-नाट्य परंपराओं ने भी जनमानस को वैष्णव धर्म की ओर आकृष्ट करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।
9. काशी, गया, पुरी, मथुरा आदि पवित्र तीर्थस्थलों के मंदिरों तथा उनके भित्तिचित्रों ने भी वैष्णव आदर्श के प्रति जनसाधारण की आस्था को सुदृढ़ किया।

अत: उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वैष्णव ग्रंथों के अनुवाद, सामाजिक समता की स्थापना, हिन्दू-मुस्लिम समन्वय, एकेश्वरवादी दृष्टिकोण, सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ तथा मंदिर परंपरा—इन सभी कारकों के समन्वित प्रभाव के फलस्वरूप नवमी से पंद्रहवीं शताब्दी के मध्य भक्ति जागरण की सशक्त प्रक्रिया संभव हो सकी।

5.6 वैष्णव साहित्य के सामान्य लक्षण

वैष्णव साहित्य की अवधारणा के अंतर्गत इसके तीन प्रमुख चरणों का अवलोकन किया जाता है। शंकरदेव के पूर्वकालीन कवि—हेम सरस्वती, माधव कंदली आदि—की काव्यात्मक अभिव्यक्तियों में निहित वैष्णव आदर्श; शंकरदेव एवं उनके समकालीन कवियों की विविध साहित्यिक विधाओं में अभिव्यक्त नर-वैष्णव विचारधारा; तथा शंकरदेवोत्तर काल में रचित वैष्णव आदर्श प्रधान साहित्य—ये तीनों स्तर इस साहित्यिक परंपरा के विकास को स्पष्ट करते हैं।

समग्र दृष्टि से इन तीनों कालखंडों के साहित्य को वैष्णव साहित्य के रूप में अभिहित किया जाता है, तथापि शंकरदेव द्वारा प्रवर्तित नर-वैष्णव आंदोलन ने ही साहित्य में वैष्णव धारा को सुस्पष्ट एवं सुदृढ़ स्वरूप प्रदान किया। यदि नव-वैष्णव धर्म के प्रसार के उद्देश्य से शंकरदेव ने साहित्य-सृजन न किया होता, तो संभवत: वैष्णव साहित्य की यह परंपरा इतनी व्यापक रूप में विकसित न हो पाती। उस स्थिति में पीताम्बर, दुर्गाबर कायस्थ जैसे कवियों की परंपरा में विकसित अवैष्णव साहित्य ही प्रमुख रूप से प्रवहमान रहता। तथापि वैष्णव साहित्य के लक्षणों का विश्लेषण करते समय शंकरदेव और उनके समकालीन कवियों के साहित्यिक सृजन-काल को केंद्रीय आधार के रूप में ग्रहण किया जाता है। इसके बावजूद पूर्ववर्ती और परवर्ती दोनों चरणों का संदर्भ प्रस्तुत करना समीचीन माना जाता है। वैष्णव साहित्य के सामान्य लक्षण निम्नलिखित हैं—

1) वैष्णव साहित्य का प्रमुख स्वरूप अनुवादात्मक है। एक दृष्टि से इसे 'अनुसृष्टि' भी कहा जा सकता है। वैष्णव कवियों ने संस्कृत के भागवत, पुराण, रामायण, महाभारत, गीता आदि ग्रंथों का पद्यानुवाद अथवा भंगानुवाद प्रस्तुत किया।
2) संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद की प्रक्रिया में वैष्णव कवियों ने मूलत: कथानक-तत्व को ग्रहण किया, जबकि प्रस्तुति-शैली को अपने उद्देश्य के अनुरूप रूपांतरित किया।
3) भंगानुवादात्मक स्वरूप के बावजूद कवियों ने यथासंभव स्थानीय परिवेश को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया। 'रुक्मिणी हरण' काव्य में रुक्मिणी के विवाह प्रसंग में घरेलू संवादों का चित्रण तथा द्वारका में कृष्ण-रुक्मिणी विवाह के अवसर पर ब्रह्मा द्वारा वेदमंत्रोच्चारण सहित यज्ञीय विधि से विवाह सम्पन्न होना, देवताओं एवं गंधर्वों द्वारा उपहार अर्पण, विवाह-मेला आदि प्रसंग असमिया

समाज के सांस्कृतिक आदर्शों के अनुरूप प्रस्तुत किए गए हैं। 'अर्जुन भंजन' नाटक में दांपत्य कलह तथा 'कुरुक्षेत्र' काव्य में नंद-यशोदा के स्नेहपूर्ण संबंधों के चित्रण के माध्यम से स्थानीय जीवन-परिवेश की उपस्थिति स्पष्ट होती है।

4) वैष्णव साहित्य मूलत: कथा-प्रधान है। यद्यपि 'नामघोषा' और 'गुणमाला' जैसे ग्रंथों में प्रत्यक्षत: किसी एक कथा का व्यवस्थित वर्णन नहीं मिलता, तथापि कथा के माध्यम से भक्ति-भाव का संप्रेषण तथा भक्ति-तत्त्वों को सरल एवं ग्राह्य बनाना इस साहित्य की प्रमुख विशेषता है।

5) संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद के क्रम में कवियों ने कई स्थानों पर अनावश्यक अंशों का परित्याग किया तथा आवश्यकता अनुसार नवीन प्रसंगों का समावेश भी किया। राम सरस्वती के काव्यों का अवलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि उन्होंने मूल कथानक को आधार बनाकर कल्पनाशीलता के माध्यम से नवीन काव्य-कथाओं का निर्माण किया।

6) साहित्य के नव-रसों में से अधिकांश वैष्णव ग्रंथों में श्रृंगार, वीर और करुण रसों में से कोई एक प्रमुख रूप में उपस्थित होता है, जबकि अन्य रसों की अभिव्यक्ति विषयानुसार सहायक रूप में होती है। तथापि समस्त रसों का अंतिम उद्देश्य भक्ति-भाव की अभिवृद्धि करना ही है। इस प्रकार विविध रसों की धाराएँ अंतत: भक्ति रूपी महासागर में समाहित हो जाती हैं।

7) वैष्णव युगीन साहित्य का मूल आधार एकेश्वरवादी दृष्टिकोण की स्थापना है। इसमें राम और कृष्ण को भगवान के पूर्ण अवतार के रूप में मान्यता दी गई है। जीवात्मा की मुक्ति के लिए विष्णु के अवतारी स्वरूप—राम या कृष्ण—के चरणों में शरणागति का निर्देश दिया गया है। विशेषत: भागवत-आधारित कृष्ण-चरित्र को अधिक महत्त्व प्रदान किया गया।

8) वैष्णव साहित्य का स्वरूप उद्देश्यप्रधान है। कृष्ण को भगवान के रूप में तथा समाज को भक्त के रूप में स्थापित कर शरणागति की भावना का संप्रेषण कवियों का मुख्य लक्ष्य रहा है। साहित्यकारों ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए तीन प्रमुख उपाय अपनाए—कथानक के पात्रों को राम या कृष्ण के चरणों में शरणागत दिखाना, कवि का स्वयं को 'कृष्ण का किंकर' रूप में प्रस्तुत करना तथा समाज को कृष्ण-चरणों में शरण ग्रहण करने का आह्वान करना।

9) वैष्णव साहित्य मुख्यत: अनुकरणात्मक प्रवृत्ति का परिचायक है। चतुर्दश शताब्दी के कवियों की काव्य-परंपरा का अनुकरण पंद्रहवीं शताब्दी के कवियों ने भी किया, यद्यपि वैचारिक स्तर पर कुछ भिन्नताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। तथापि शंकरदेव द्वारा स्थापित साहित्यिक धारा ही वैष्णव उत्तरकाल तक निरंतर प्रवहमान रही। कथानकों में भिन्नता के बावजूद आदर्शगत अंतर अत्यल्प रहा। शंकरदेव की अपेक्षा राम सरस्वती के साहित्य में विषय-वस्तु एवं शैलीगत भिन्नता अवश्य दिखाई देती है, किंतु उनके उद्देश्य और लक्ष्य में कोई मौलिक अंतर नहीं है। इसी प्रकार शंकरोत्तर युग में भक्ति-भाव की तीव्रता में कुछ ह्रास होने पर भी कवियों ने शंकरदेव-माधवदेव की परंपरा का अनुसरण करते हुए काव्य, नाटक, गीत तथा भटिमा आदि की रचना की। इस आधार पर वैष्णव साहित्य को मौलिकता की अपेक्षा अनुकरणप्रधान कहा जा सकता है।

10) वैष्णव साहित्य की भाषिक संरचना का विश्लेषण करने पर दो प्रमुख भाषिक रूप स्पष्ट होते हैं—ब्रजावली भाषा तथा प्राचीन असमिया भाषा। अंकिया नाटक और बोरगीतों में ब्रजावली का व्यापक प्रयोग मिलता है। शंकरोत्तर काल में रचित अंकिया नाटकों में ब्रजावली का शुद्ध स्वरूप अपेक्षाकृत कम दृष्टिगोचर होता है। प्राचीन असमिया भाषा आधुनिक असमिया की पूर्वपीठिका है। यद्यपि कालांतर में व्याकरणिक परिवर्तन हुए हैं, तथापि शंकरकालीन असमिया भाषा आज भी पूर्णत: अपरिचित नहीं प्रतीत होती और उसका स्वतंत्र एवं प्रांजल स्वरूप स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

11) वैष्णव साहित्य में साहित्यिक एवं मौखिक भाषा-रूपों का समन्वित प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। ग्रामीण एवं घरेलू जीवन के चित्रण हेतु बोलचाल की भाषा के शब्दों का प्रयोग किया गया है। एक ही शब्द के विविध रूपों—जैसे तुमार, तोह्मार, तुमासार; धरी, धरिया, धरिल, धरिलन्त आदि—का प्रयोग सर्वनाम एवं क्रिया के रूप में मिलता है।

12) वैष्णव युगीन साहित्य की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसकी सरलता के भीतर भी साहित्यिक सौंदर्य सुरक्षित रहता है। इस युग की भाषा अलंकार-समृद्ध है। शब्दालंकार—अनुप्रास, यमक तथा अर्थालंकार—उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति आदि का प्रयोग विभिन्न कवियों द्वारा किया गया है। यद्यपि सभी कवि समान रूप से दक्ष नहीं थे, तथापि अनेक कवियों की अलंकार-प्रयोग में प्रवीणता स्पष्ट होती है।

13) संस्कृत छंद-परंपरा के प्रभाव में वैष्णव कवियों ने पयार, छबी, दुलड़ी, झुमुरी आदि छंदों का प्रयोग किया। इसके अतिरिक्त असमिया साहित्य में पूर्वत: अनुपस्थित 'लेचारी' छंद का प्रयोग माधवदेव ने 'नामघोषा' में किया। सामान्यत: वर्णनात्मक प्रसंगों में पयार, प्रार्थनात्मक प्रसंगों में छबी एवं दुलड़ी तथा युद्धादि के उग्र वर्णनों में झुमुरी छंद का प्रयोग किया गया। लेचारी छंद में प्रार्थना की कोमल भावाभिव्यक्ति विशेष रूप से उभरती है।

14) वैष्णव युग के कवियों की एक विशिष्ट पहचान 'कवि-भणिता' है। प्राक-शंकरकालीन साहित्य से प्राप्त इस परंपरा में कवि अपने नाम के साथ स्वयं को प्राय: 'राम या कृष्ण का किंकर' रूप में अभिव्यक्त करता है।

इन समस्त विशेषताओं के अतिरिक्त वैष्णव साहित्य में भक्ति की एकनिष्ठता, सत्संग का महात्म्य तथा नाम-महिमा की भावना निरंतर साहित्यिक प्रवाह में अभिव्यक्त होती रहती है।

5.7 सारांश

इस इकाई में वैष्णव युग अथवा शंकरी युग के विविध पक्षों का क्रमबद्ध अध्ययन किया गया है। सर्वप्रथम इस युग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और इसके उद्भव की परिस्थितियों को समझने का प्रयास किया गया है, जिसमें नव-वैष्णव भक्ति आंदोलन की केंद्रीय भूमिका को रेखांकित किया गया है। महापुरुष शंकरदेव के नेतृत्व में विकसित इस आंदोलन ने असमिया समाज को धार्मिक ही नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर भी गहराई से प्रभावित किया। इकाई में नव-वैष्णव साहित्य के वर्गीकरण का विश्लेषण करते हुए इसके विभिन्न रूपों और धाराओं को स्पष्ट किया गया है। साथ ही भक्ति जागरण के प्रमुख कारणों—जैसे सामाजिक असमानता, धार्मिक जटिलता, तथा सरल भक्ति मार्ग की आवश्यकता—का विवेचन किया गया है। इसके अतिरिक्त भक्ति आंदोलन के लक्षणों को भी व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिनमें एकेश्वरवाद, समन्वयवादी दृष्टिकोण और लोकभाषा का प्रयोग विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

वैष्णव साहित्य के सामान्य लक्षणों का अध्ययन करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि यह साहित्य मुख्यत: भक्ति-प्रधान, उद्देश्यपरक तथा जनसाधारण के लिए सुगम था। इसमें कथा, संगीत और नाट्य के माध्यम से धार्मिक आदर्शों का प्रचार किया गया। भाषा, शैली, छंद और अलंकारों की दृष्टि से भी इसकी विशिष्टताओं को रेखांकित किया गया है। समग्रत: इस इकाई में यह प्रतिपादित किया गया है कि वैष्णव युग असमिया साहित्य के विकास में एक महत्वपूर्ण मोड़ सिद्ध हुआ, जिसने समाज में समता, भक्ति और सांस्कृतिक एकता की भावना को सुदृढ़ किया।

K5.8 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर: पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल तक, विशेषत: 1449 से 1568 ईस्वी (शंकरदेव के जन्म से तिरोभाव तक) के समय को शंकरी या वैष्णव युग कहा जाता है।

प्रश्न 2 का उत्तर: महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव द्वारा प्रवर्तित नव-वैष्णव भक्ति आंदोलन इस युग की प्रमुख प्रेरक शक्ति थी।

प्रश्न 3 का उत्तर: यह शंकरदेव द्वारा प्रतिपादित नव-वैष्णव धर्म का मूल सिद्धांत है, जो एके श्वरवाद, भक्ति, नाम-स्मरण और समता पर आधारित है।

प्रश्न 4 का उत्तर: इस युग में बोरगीत, अंकिया नाट, कीर्तन-घोषा, दशम आदि प्रमुख साहित्यिक विधाओं का विकास हुआ।

प्रश्न 5 का उत्तर: इस काल में साहित्य, भाषा, संस्कृति और समाज के क्षेत्र में व्यापक विकास हुआ तथा असमिया साहित्य को एक सुसंगठित और समृद्ध स्वरूप प्राप्त हुआ, इसलिए इसे स्वर्ण युग कहा जाता है।

5 5.9 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- सत्येंद्र नाथ शर्मा (2004) असमिया साहित्यर समीक्षात्मक इतिवृत्त, गुवाहाटी: सौमार प्रकाश, गुवाहाटी।
- डॉ. हेमंत कुमार शर्मा: असमिया साहित्य दृष्टिपात, बीणा लाइब्रेरी, गुवाहाटी, 2011।
- भवजित बायन, असमिया साहित्यर बुरंजी, माँ लक्ष्मी पाब्लिकेचन, गुवाहाटी, 2019।
- महेश्वर नेउँग: असमिया साहित्यर रूपरेखा, चंद्र प्रकाश, गुवाहाटी, 1983।
- महेश्वर नेउँग: असमिया साहित्यर बुरंजीतए भुमुकि, शुवनिप्रकश, गुवाहाटी, 1940।
- हेमचंद्र गोस्वामी: असमिया साहित्य रचाने कि, बाणी मंदिर, गुवाहाटी, 2001।
- लीला गगै: असमिया लोकसहित्यर रूपरेखा, स्टुदेंतछ एम्परियाम: डिब्रुगड़ु, 1984।
- प्रफुल्ल कुमार नाथ: असमिया साहित्य आरुसंस्कृतिर रूपरेखा, वाणी मंदिर, गुवाहाटी, 2004।
- प्रफुल्ल कुमार नाथ: असमर लोकजीवन आरु संस्कृति, एल. एल पब्लिकेशन, गुवाहाटी, 2004।
- विरिंचि कुमार बरुवा: असमर लोक संस्कृति, वीणा लाइब्रेरी, गुवाहाटी, 1961।

M5.10 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

(1) शंकरी युग के उद्भव में प्राक-शंकरी साहित्य की क्या भूमिका रही?

(2) नव-वैष्णव आंदोलन ने असमिया समाज की संरचना को किस प्रकार प्रभावित किया?

(3) शंकरदेव के भारत-भ्रमण का उनके धार्मिक विचारों पर क्या प्रभाव पड़ा?

(4) असमिया भाषा के विकास में शंकरी युग का क्या योगदान रहा?

(5) भक्ति आंदोलन की समन्वयात्मक प्रवृत्ति से क्या अभिप्राय है?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

(1) शंकरी युग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का विस्तृत वर्णन कीजिए।

(2) नव-वैष्णव भक्ति आंदोलन के उद्भव एवं विकास के प्रमुख कारणों का विश्लेषण कीजिए।

(3) शंकरदेव के धार्मिक एवं सामाजिक विचारों का असमिया समाज पर पड़े प्रभाव का विस्तार से विवेचन कीजिए।

(4) शंकरी युग में विकसित साहित्यिक विधाओं का परिचय देते हुए उनके महत्व का वर्णन कीजिए।

(5) भारतीय भक्ति आंदोलन के संदर्भ में शंकरी युग की विशेषताओं का समन्वयात्मक अध्ययन प्रस्तुत कीजिए।

****

इकाई-6 असमिया साहित्य में शंकरदेव

इकाई की रूपरेखा

6.1 उद्देश्य
6.2 प्रस्तावना
6.3 शंकरदेव सामान्य परिचय
6.4 शंकरदेव की रचनाओं का सामग्रिक परिचय
6.5 असमिया साहित्य में उनके अवदान
6.6 असमिया साहित्य जगत में उनके साहित्य की प्रासंगिकता
6.7 सारांश
6.8 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
6.9 अधिक जानने के लिए पढ़ें
6.10 अभ्यास प्रश्न

6.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप

- शंकरदेव के जीवन के बारे में परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- उनके साहित्य के बारे में जान पाएंगे।
- शंकरदेव के साहित्य की विशेषताओं के बारे में जान पाएंगे।
- असमिया साहित्य में शंकरदेव और उनके साहित्य की क्या भूमिका रही है, उससे भी आप परिचित हो पाएंगे।
- इसके अतिरिक्त इस इकाई से उनके साहित्य की प्रासंगिकता से भी अवगत हो पाएंगे।

6.2 प्रस्तावना

शंकरदेव असम की सांस्कृतिक, धार्मिक और साहित्यिक परंपरा के सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्तित्व माने जाते हैं। 15वीं-16वीं शताब्दी में जन्मे शंकरदेव ने असमिया समाज को भक्ति, समानता और मानवतावादी दृष्टि से जोड़ने का कार्य किया। वे एक महानकवि, धर्मप्रचारक, नाटककार, संगीतज्ञ और समाज-सुधारक थे। शंकरदेव द्वारा प्रवर्तित 'एकशरण नामधर्म' ने असमिया समाज को जाति-भेद और कर्मकांड से मुक्त कर भक्ति के सरल मार्ग पर अग्रसर किया। उन्होंने विष्णु-भक्ति को केंद्र में रखकर असमिया भाषा में साहित्य सृजन किया, जिससे जनसाधारण तक धर्म और संस्कृति की पहुँच संभव हुई। असमिया साहित्य को शंकरदेव की अमूल्य देनकाव्य, अनुवाद, नाटक (अंकिया नाट) और बरगीत हैं। भागवत पुराण के असमिया रूपांतर के माध्यम से उन्होंने लोकभाषा को साहित्यिक गरिमा प्रदान की। उनके नाटकों और गीतों में भावात्मक सरलता, संगीतात्मकता और नैतिक चेतना का सुंदर समन्वय मिलता है।

इस प्रकार शंकरदेव केवल एक साहित्यकार ही नहीं, बल्कि असमिया साहित्य और संस्कृति के निर्माता माने जाते हैं, जिनका प्रभाव आज भी असम की सामाजिक और साहित्यिक चेतना में जीवित है।

6.3 शंकरदेव सामान्य परिचय

शंकरदेव असम के महान संत, समाज-सुधारक, कवि, नाटककार और सांस्कृतिक चिंतक थे। उनका

जन्म 1449 ई ? में असम के नगांव जिले के बरदोआ के अलीपुखुरी नामक स्थान पर हुआ माना जाता है। उनके पिता का नाम कुसुम्बर भुञा और माता का नाम सत्यसंध्या था। माता-पिता के निधन के बाद उनका पालन-पोषण उनकी दादी खेरसूती ने किया, जिनका उनके व्यक्तित्व के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान रहा।

शंकरदेव बचपन से ही विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने कम आयु में ही शिक्षा प्राप्त कर ली थी और संस्कृत, प्राकृत तथा लोकभाषाओं का अच्छा ज्ञान अर्जित किया। प्रारंभिक जीवन में वे गृहस्थ थे और उनका विवाह सूर्यवती से हुआ, जिनसे उन्हें एक पुत्री मनुहुई। पत्नी के देहांत के पश्चात उन्होंने पुन: विवाह किया, किंतु अंतत: उनका जीवन वैराग्य और भक्ति की ओर उन्मुख हो गया। युवावस्था में शंकरदेव ने भारत के विभिन्न तीर्थस्थलों की यात्रा की। इन यात्राओं के दौरान वे वैष्णव भक्ति परंपरा से गहराई से प्रभावित हुए। विशेष रूप से भागवत पुराण और विष्णु-भक्ति ने उनके चिंतन को दिशा प्रदान की। तीर्थयात्रा से लौटने के बाद उन्होंने असम में एकशरण नामधर्म का प्रचार आरंभ किया, जिसमें एकमात्र ईश्वर विष्णु की भक्ति और नाम-स्मरण पर बल दिया गया।

शंकरदेव ने समाज में व्याप्त जाति-भेद, आडंबर और कर्मकांड का विरोध किया। उन्होंने नामघर और सत्र की स्थापना की, जो धार्मिक के साथ-साथ सामाजिक और सांस्कृतिक केंद्र बने। इन संस्थानों ने असमिया समाज को संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

अपने जीवन के अंतिम चरण में शंकरदेव बारपेटा क्षेत्र में निवास करने लगे। वहीं 1568 ई ? में उनका देहांत हुआ। शंकरदेव का जीवन भक्ति, समानता, कला और साहित्य के माध्यम से समाज को नई दिशा देने का प्रेरणास्रोत है। वे आज भी असम की आत्मा और असमिया संस्कृति के अमर प्रतीक माने जाते हैं।

6.4 शंकरदेव की रचनाओं का सामग्रिक परिचय

शंकरदेव असमिया साहित्य के ऐसे युग निर्माता हैं जिन्होंने साहित्य को धर्म, समाज और कला—तीनों से जोड़कर एक व्यापक स्वरूप प्रदान किया। उनका साहित्य विविध विधाओं में फैला हुआ है, जिसमें काव्य, अनुवाद, नाटक, गीत और गद्य सभी शामिल हैं। शंकरदेव की रचनाओं का मुख्य उद्देश्य भक्ति के माध्यम से जनसाधारण को नैतिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक रूप से जागरूक करना था। नीचे उनके प्रमुख साहित्यिक कार्यों का क्रमबद्ध उल्लेख किया जा रहा है। शंकरदेव का सबसे महत्वपूर्ण साहित्यिक कार्य भागवत पुराण का असमिया रूपांतरण है। उन्होंने इसके कई स्कंधों का भावानुवाद किया, जिनमें प्रमुख हैं—

आदि कांड, द्वितीय कांड, तृतीय कांड, षष्ठ कांड, अष्टम कांड, एकादश कांड और द्वादश कांड। इन कांडों के माध्यम से उन्होंने कृष्ण-भक्ति, ईश्वर-स्वरूप और मानव-धर्म को सरल भाषा में प्रस्तुत किया।

काव्य रचनाओं में शंकरदेव की प्रमुख कृतियाँ हैं—

हरिश्चंद्र उपाख्यान, अजामिल उपाख्यान, रुक्मिणी हरण काव्य, कुरुक्षेत्र आदि। इन काव्यों में पौराणिक कथाओं को आधार बनाकर भक्ति, नैतिकता और करुणा के भाव व्यक्त किए गए हैं। उनकी कविता की विशेषता है—सरल भाषा, भाव प्रधान शैली और लोकजीवन से जुड़ा कथ्य।

नाट्य-साहित्य के क्षेत्र में शंकरदेव का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने अंकीया नाट परंपरा की स्थापना की। उनके प्रमुख नाटक हैं—

पत्नी-प्रसाद, कालिय-दमन, केलि-गोपाल, रुक्मिणी हरण, पारिजात हरण औरराम-विजय।

इन नाटकों में गीत, संवाद, अभिनय और संगीत का सुंदर समन्वय मिलता है। नाटकों का उद्देश्य केवल मंचीय मनोरंजन नहीं, बल्कि भक्ति-प्रचार और नैतिक शिक्षा था।

शंकरदेव द्वारा रचित बरगीत असमिया साहित्य और संगीत की अमूल्य धरोहर हैं। उन्होंने लगभग 240

बरगीतों की रचना की, जिनमें से आज लगभग 34 बरगीत उपलब्ध हैं। ये गीत ब्रजावली भाषा में रचे गए हैं और इनमें कृष्ण-भक्ति, वैराग्य, आत्म समर्पण और आध्यात्मिक अनुभूति का गहन स्वर मिलता है। बरगीत आज भी असम के धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन में जीवंत रूप से गाए जाते हैं। गद्य रचनाओं में शंकरदेव ने धार्मिक और वैचारिक ग्रंथों की रचना की। इनमें प्रमुख हैं—

भक्ति प्रदीप, अनादि पातन, निमि नव सिद्ध संवाद आदि। इन गद्य कृतियों में उन्होंने भक्ति के सिद्धांतों को स्पष्ट और तार्किक रूप में प्रस्तुत किया है। इसके अलावा उन्होंने नाम-प्रसंग- कीर्तन, गुणमाला, तथा 'भक्ति रत्नाकर' नमक प्रकरण ग्रन्थ की रचना की।

इस प्रकार शंकरदेव का साहित्य बहुआयामी और व्यापक है। उन्होंने असमिया साहित्य को भाषा, विषय और उद्देश्य—तीनों स्तरों पर समृद्ध किया। उनका साहित्य आज भी असमिया समाज की धार्मिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक चेतना का मूल आधार बना हुआ है।

इसे भी पढ़िए

बरगीत असमिया वैष्णव साहित्य और संगीत परंपरा की एक विशिष्ट एवं समृद्ध विधा है। इसकी रचना महापुरुष शंकरदेव और उनके प्रमुख शिष्य माधवदेव द्वारा की गई थी। बरगीत मूलतः भक्ति-प्रधान गीत हैं, जिनमें भगवान श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य भक्ति, वैराग्य और आध्यात्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति मिलती है। ये गीत असमिया वैष्णव आंदोलन की आत्मा माने जाते हैं।

बरगीतों की भाषा ब्रजावली मिश्रित असमिया है, जो संस्कृत, ब्रज और असमिया का सुंदर समन्वय प्रस्तुत करती है। इन गीतों में रागात्मकता का विशेष महत्त्व है और इन्हें निश्चित रागों में गाया जाता है। भाव-गंभीरता, संगीतात्मक सौंदर्य और आध्यात्मिक शांति बरगीतों की प्रमुख विशेषताएँ हैं। माधवदेव के बरगीतों में करुणा, आत्मसमर्पण और भक्ति की गहन अनुभूति विशेष रूप से दृष्टिगोचर होती है।

बरगीतों का गायन आज भी असम के नामघरों और धार्मिक आयोजनों में श्रद्धा के साथ किया जाता है। ये गीत केवल संगीतात्मक रचनाएँ नहीं, बल्कि असमिया समाज की सांस्कृतिक चेतना और धार्मिक आस्था के जीवंत प्रतीक हैं। इस प्रकार बरगीत असमिया साहित्य और संगीत की एक अमूल्य धरोहर हैं, जिनकी प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है।

6.5 असमिया साहित्य में उनके अवदान

शंकरदेव असमिया साहित्य, संस्कृति और समाज के ऐसे महापुरुष हैं जिनके योगदान के बिना असमिया साहित्य का इतिहास अधूरा माना जाता है। वे केवल एक संत या धर्मप्रवर्तक नहीं थे, बल्कि असमिया भाषा को साहित्यिक स्वरूप प्रदान करने वाले प्रथम महान रचनाकार भी थे। उनके साहित्यिक अवदान ने असमिया साहित्य को विषय, भाषा, शैली और उद्देश्य—चारों स्तरों पर समृद्ध किया। शंकरदेव का साहित्य भक्ति, कला, लोकसंस्कृति और सामाजिक सुधार का समन्वित रूप है।

शंकरदेव के साहित्य का मूल आधार वैष्णव भक्ति परंपरा है, किंतु यह भक्ति संकीर्ण धार्मिक भावना तक सीमित नहीं है। उन्होंने एकशरण नामधर्म के माध्यम से ईश्वर-भक्ति को सरल, सहज और सर्वसुलभ बनाया। इस धार्मिक दृष्टि का सीधा प्रभाव उनके साहित्य पर पड़ा। उनके ग्रंथों में भक्ति के साथ-साथ नैतिकता, मानवीय समानता और सामाजिक चेतना का गहरा स्वर दिखाई देता है। इस प्रकार उनका साहित्य असमिया समाज के नैतिक पुनर्निर्माण का साधन बना।

असमिया साहित्य में शंकरदेव का सबसे बड़ा अवदान लोकभाषा को साहित्यिक प्रतिष्ठा प्रदान करना है। उनसे पहले साहित्य मुख्यतः संस्कृत या सीमित वर्गों की भाषा तक सीमित था। शंकरदेव ने संस्कृत के महान ग्रंथों—विशेषकर भागवत पुराण—का असमिया में भावानुवाद कर जनसाधारण के लिए साहित्य और धर्म के द्वार

खोल दिए। उनके अनुवाद केवल शब्दानुवाद नहीं हैं, बल्कि उनमें स्थानीय संस्कृति, लोकभावना और जनभाषा का सुंदर समन्वय मिलता है। इससे असमिया भाषा में साहित्यिक अभिव्यक्ति की क्षमता का विकास हुआ।

काव्य के क्षेत्र में शंकरदेव का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनके काव्य में कृष्ण-भक्ति, लीला-वर्णन, करुणा और वैराग्य का भाव प्रधान है। उनकी कविता की भाषा सरल, प्रवाहपूर्ण और संगीतात्मक है। अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से हुआ है, जिससे काव्य में आडंबर नहीं, बल्कि भावों की सहज अभिव्यक्ति दिखाई देती है। शंकरदेव के काव्य ने असमिया कविता को धार्मिक अनुभूति के साथ-साथ सौंदर्यबोध भी प्रदान किया। असमिया नाट्य-साहित्य के इतिहास में शंकरदेव का स्थान अत्यंत विशिष्ट है। वे अंकीया नाट परंपरा के प्रवर्तक माने जाते हैं। 'चिह्नयात्रा', 'कालिय-दमन', 'पत्नी-प्रसाद', 'रुक्मिणी हरण' आदि नाटक न केवल धार्मिक कथाओं पर आधारित हैं, बल्कि उनमें सामाजिक और नैतिक संदेश भी निहित हैं। इन नाटकों की विशेषता यह है कि इनमें संवाद, गीत, अभिनय और संगीत का समन्वय मिलता है। शंकरदेव के नाटकों ने असमिया रंगमंच को एक संगठित और सशक्त रूप दिया तथा लोकनाट्य परंपरा को साहित्यिक आधार प्रदान किया।

शंकरदेव का एक अत्यंत महत्वपूर्ण साहित्यिक अवदान बरगीत है। बरगीत असमिया साहित्य और संगीत का अनन्य रूप है, जिसमें काव्य, राग और भक्ति का अद्भुत संगम मिलता है। ये गीत ब्रजावली भाषा में रचे गए हैं और इनमें कृष्ण-भक्ति, आत्मसमर्पण और वैराग्य की भावना गहराई से व्यक्त हुई है। बरगीतों की मधुरता, भाव गंभीरता और संगीतात्मक संरचना ने असमिया सांस्कृतिक जीवन को समृद्ध किया। आज भी बरगीत न केवल धार्मिक अवसरों पर, बल्कि असमिया सांस्कृतिक पहचान के प्रतीक के रूप में गाए जाते हैं।

शंकरदेव का साहित्य केवल ग्रंथों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उसने असमिया समाज की सांस्कृतिक संरचना को भी आकार दिया। उनके द्वारा स्थापित नामघर और सत्र-साहित्य, संगीत, नाटक और सामूहिक चेतना के केंद्र बने। इन संस्थानों के माध्यम से साहित्य लोकजीवन का अंग बना। यह असमिया साहित्य की एक विशिष्ट विशेषता है कि वह सामाजिक जीवन से गहराई से जुड़ा हुआ है और इसकी नींव शंकरदेव ने ही रखी।

सामाजिक दृष्टि से शंकरदेव का साहित्य अत्यंत प्रगतिशील था। उन्होंने जाति-भेद, ऊँच-नीच और कर्मकांड का विरोध किया। उनके साहित्य में मानव-मात्र की समानता और ईश्वर के प्रति समान अधिकार की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। इस दृष्टि से उनका साहित्य केवल धार्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक सुधार का साहित्य भी है। असमिया साहित्य में मानवीय मूल्यों और सामाजिक समरसता की जो परंपरा विकसित हुई, उसकी जड़ें शंकरदेव के साहित्य में ही मिलती हैं।

असमिया साहित्य के इतिहास में शंकरदेव को आदि-आधुनिक साहित्यकार के रूप में भी देखा जा सकता है। उन्होंने साहित्य को केवल मनोरंजन या धर्मोपदेश का साधन न बनाकर समाज-निर्माण का माध्यम बनाया। भाषा की सरलता, विषय की व्यापकता और उद्देश्य की स्पष्टता उनके साहित्य को कालजयी बनाती है। बाद के असमिया साहित्यकारों- माधवदेव से लेकर आधुनिक रचनाकारों तक- पर शंकरदेव की परंपरा का गहरा प्रभाव देखा जा सकता है।

कहा जा सकता है कि शंकरदेव का साहित्य असमिया साहित्य की आत्मा है। उन्होंने भाषा को दिशा दी, साहित्य को आधार दिया और संस्कृति को पहचान प्रदान की। भक्ति, मानवता, लोकसंस्कृति और सामाजिक चेतना का जो समन्वय उनके साहित्य में मिलता है, वही उन्हें असमिया साहित्य का महान स्तंभ बनाता है। शंकरदेव का साहित्य न केवल अपने युग का प्रतिनिधि है, बल्कि आज भी असमिया समाज और साहित्य को प्रेरणा और ऊर्जा प्रदान करता है।

5 जानने के लिए पढ़िए (सत्रीय नृत्य)

सत्रीय नृत्य असम की एक प्राचीन और शास्त्रीय नृत्य परंपरा है, जिसके जनक महापुरुष शंकरदेव माने

जाते हैं। इस नृत्य शैली का विकास 15वीं-16वीं शताब्दी में असम में वैष्णव भक्ति आंदोलन के अंतर्गत हुआ। शंकरदेव ने सत्रों (वैष्णव मठों) में धार्मिक शिक्षाओं के प्रचार-प्रसार के लिए नृत्य, संगीत और नाटक को माध्यम बनाया, जिससे सत्रीय नृत्य का उद्भव हुआ। सत्रीय नृत्य को भारत के आठ मान्यता-प्राप्त शास्त्रीय नृत्यों में शामिल किया गया है।

सत्रीय नृत्य की प्रमुख विशेषता इसका भक्ति-प्रधान स्वरूप है। इसमें भगवान विष्णु और श्रीकृष्ण की लीलाओं का नाट्यात्मक और भावपूर्ण चित्रण किया जाता है। इस नृत्य में हस्त-मुद्राएँ, भाव-अभिनय, तालबद्ध पद-संचालन और शास्त्रीय संगीत का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है। परंपरागत रूप से यह नृत्य सत्रों में भिक्षुओं द्वारा प्रस्तुत किया जाता था, किंतु आज इसे मंचीय कला के रूप में भी स्वीकार किया गया है।

इस प्रकार सत्रीय नृत्य असम की धार्मिक, सांस्कृतिक और कलात्मक चेतना का जीवंत प्रतीक है।

6.6 असमिया साहित्य जगत में उनके साहित्य की प्रासंगिकता

शंकरदेव के साहित्य में व्यक्त भावनाएँ—भक्ति, करुणा, समानता और नैतिकता—आज के समाज में भी उतनी ही अर्थपूर्ण हैं जितनी उनके युग में थीं। आधुनिक असमिया साहित्य में जो जनमुखी दृष्टि दिखाई देती है, उसकी प्रेरणा शंकरदेव की साहित्यिक परंपरा में निहित है।

सामाजिक दृष्टि से भी शंकरदेव का साहित्य आज के संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने जाति-भेद, सामाजिक असमानता और बाह्य आडंबरों का विरोध किया। उनके साहित्य में मानव-मात्र की समानता और नैतिक आचरण पर जो बल दिया गया है, वह समकालीन समाज की चुनौतियों—विभाजन, असहिष्णुता और नैतिक संकट—के संदर्भ में विशेष रूप से प्रासंगिक प्रतीत होता है। इस दृष्टि से उनका साहित्य केवल धार्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना का साहित्य है।

Kप्रगति प्रतिवेदन

प्रश्न संख्या 1. सत्रीय नृत्य को भारत के आठ मान्यता-प्राप्त शास्त्रीय नृत्यों में शामिल किया गया है। (सही और गलत चयन कीजिए)

प्रश्न संख्या 2. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए- शंकरदेव का साहित्य भक्ति, ..., लोकसंस्कृति और सामाजिक सुधार का समन्वित रूप है।

प्रश्न संख्या 3. शंकरदेव का जन्म भारत के किस राज्य में हुआ था?

प्रश्न संख्या 4. बरगीत की क्या-क्या विशेषताएँ हैं?

असमिया साहित्य की भाषा और शैली पर भी शंकरदेव का प्रभाव आज तक बना हुआ है। उन्होंने जिस सहज, प्रवाहपूर्ण और भावप्रधान भाषा-शैली को स्थापित किया, वह बाद के साहित्यकारों के लिए आदर्श बनी। आधुनिक कविता, नाटक और गद्य में भाषा की जो सरलता और संप्रेषणीयता दिखाई देती है, उसमें शंकरदेव की साहित्यिक परंपरा की स्पष्ट छाया देखी जा सकती है।

सांस्कृतिक संदर्भ में शंकरदेव का साहित्य असमिया पहचान का अभिन्न अंग है। उनका साहित्य संगीत, नाटक और लोकसंस्कृति से जुड़ा हुआ है, जिससे वह केवल पाठ्य साहित्य न रहकर जीवित सांस्कृतिक परंपरा बन गया। यही कारण है कि शंकरदेव का साहित्य आज भी मंचन, गायन और सामूहिक पाठ के माध्यम से सक्रिय रूप में उपस्थित है।

इस प्रकार असमिया साहित्य जगत में शंकरदेव के साहित्य की प्रासंगिकता उसकी मानवीय दृष्टि,

सामाजिक चेतना और लोक सांस्कृतिक आधार में निहित है। उनका साहित्य अतीत की धरोहर ही नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए भी प्रेरणास्रोत बना हुआ है।

6.7 सारांश

शंकरदेव असमिया साहित्य, संस्कृति और समाज के युग प्रवर्तक व्यक्तित्व हैं। उनके साहित्य का मूल आधार वैष्णव भक्ति है, किंतु यह भक्ति संकीर्ण धार्मिक भावना तक सीमित न होकर मानवता, समानता और नैतिक चेतना से जुड़ी हुई है। उन्होंने लोकभाषा को साहित्य का माध्यम बनाकर असमिया साहित्य को जनसाधारण से जोड़ा और संस्कृत-प्रधान परंपरा से बाहर निकालकर उसे व्यापक सामाजिक आधार प्रदान किया।

शंकरदेव ने काव्य, नाटक, गीत, अनुवाद और गद्य—सभी विधाओं में सृजन किया। भागवत परंपरा के असमिया रूपांतरण, अंकीया नाटों की रचना और बरगीतों के माध्यम से उन्होंने असमिया साहित्य को विषयगत और रूपगत समृद्धि प्रदान की। उनके साहित्य में भक्ति के साथ सामाजिक सुधार की स्पष्ट चेतना दिखाई देती है, जिसमें जाति-भेद और कर्मकांड का विरोध तथा मानवीय मूल्यों का समर्थन प्रमुख है।

उनका साहित्य केवल ग्रंथों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि नामघर और सत्र जैसी संस्थाओं के माध्यम से असमिया समाज की सांस्कृतिक संरचना का अंग बन गया। भाषा की सरलता, भावों की सहजता और लोकधर्मिता के कारण उनका साहित्य आज भी प्रासंगिक बना हुआ है। इस प्रकार शंकरदेव का साहित्य असमिया साहित्य की आधारशिला होने के साथ-साथ उसकी निरंतर प्रेरणास्रोत परंपरा भी है।

K6.8 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न संख्या 1. का उत्तर: सही।

प्रश्न संख्या 2. का उत्तर: कला।

प्रश्न संख्या 3. का उत्तर: असम।

प्रश्न संख्या 3. का उत्तर: बरगीत असमिया वैष्णव परंपरा की एक विशिष्ट गीत-शैली है, जिसकी रचना महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव तथा माधवदेव ने की। इसकी प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

1. भक्ति-प्रधान विषयवस्तु - बरगीतों में मुख्य रूप से श्रीकृष्ण और विष्णु-भक्ति का भाव व्यक्त होता है।
2. शास्त्रीय रागों का प्रयोग - प्रत्येक बरगीत किसी न किसी निश्चित राग पर आधारित होता है, जिससे इसकी संगीतात्मक गरिमा बढ़ती है।
3. तालबद्ध रचना - बरगीतों में निश्चित ताल और लय का पालन किया जाता है।
4. ब्रजावली भाषा का प्रयोग - इन गीतों की भाषा ब्रज, असमिया और संस्कृत के मिश्रण से बनी ब्रजावली है।
5. गायन-प्रधान परंपरा - बरगीत मुख्यत: सामूहिक गायन के लिए रचे गए हैं और सत्रों व नामघरों में गाए जाते हैं।
6. आध्यात्मिक एवं सौम्य भाव - इनमें श्रृंगार की अपेक्षा शुद्ध भक्ति और वैराग्य का भाव अधिक मिलता है।

5 6.9 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- नेउग, महेश्वर: श्रीश्री शंकरदेव, चंद्र प्रकाशन, गुवाहाटी, 1987।
- चौधरी, भूपेन्द्र राय: श्रीमंत शंकरदेव व्यक्तित्व और कृतित्व, गुवाहाटी, 2002।
- बरा, शिवनाथ: श्रीमंत शंकरदेव कृति आरू कृतित्व, गुवाहाटी, 2008।
- चौधरी, रामानंद: श्रीश्री शंकरी धर्म और भक्तिसार, ज्योति प्रकाशन, गुवाहाटी, 1956।
- महंत, बापचंद: बरगीत, स्टूडेंट्स स्टोर, गुवाहाटी, 2008।
- शैकिया, नुरुल इस्लाम: महान असमिया व्यक्ति चिरिज, गुवाहाटी, 2013।
- शर्मा, सत्येन्द्रनाथ: असमिया साहित्यर समीक्षात्मक इतिवृत्त, गुवाहाटी, 1991।
- दास, स्वप्नाली: इलाराम दास जीवन और कृति, शब्द भारती प्रकाशन, 2025।
- दस, श्री रामप्रसाद: महापुरुष श्रीश्रीशंकरदेव- श्रीश्री माधवदेव, गुवाहाटी।
- हजारिका, प्रदीप, बरा, इंदिरा शैकिया: महापुरुष शंकरदेव-मधावदेवर अंकिया नाट आरू झुमुरा।

M6.10 अभ्यास प्रश्न

क) संक्षिप्त उत्तर दीजिए-

1. शंकरदेव किस साहित्यिक परंपरा से जुड़े हुए थे?
2. शंकरदेव द्वारा प्रवर्तित धार्मिक विचारधारा का नाम क्या है?
3. शंकरदेव के साहित्य की भाषा-शैली की एक प्रमुख विशेषता लिखिए।
4. बरगीत किससे संबंधित हैं?

ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. शंकरदेव के साहित्यिक अवदान का विस्तृत विवेचन कीजिए।
2. असमिया साहित्य के विकास में शंकरदेव की भूमिका पर प्रकाश डालिए।
3. शंकरदेव के साहित्य की सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना का विश्लेषण कीजिए।
4. आधुनिक संदर्भ में शंकरदेव के साहित्य की प्रासंगिकता पर विचार प्रस्तुत कीजिए।

****

इकाई-7 असमिया साहित्य में माधवदेव

इकाई की रूपरेखा

7.1 उद्देश्य
7.2 प्रस्तावना
7.3 माधवदेव सामान्य परिचय
7.4 माधवदेव की रचनाओं का सामग्रिक परिचय
7.5 असमिया साहित्य में उनके अवदान
7.6 असमिया साहित्य जगत में उनके साहित्य की प्रासंगिकता
7.7 सारांश
7.8 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
7.9 अधिक जानने के लिए पढ़ें
7.10 अभ्यास प्रश्न

7.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप-

- माधवदेव के जीवन के बारे में परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- उनके साहित्य के बारे में जान पाएंगे।
- माधवदेव के साहित्य की विशेषताओं के बारे में जान पाएंगे।
- असमिया साहित्य में माधवदेव और उनके साहित्य की क्या भूमिका रही है, उससे भी आप परिचित हो पाएंगे।
- इसके अतिरिक्त इस इकाई से उनके साहित्य की प्रासंगिकता से भी अवगत हो पाएंगे।

7.2 प्रस्तावना

भारत के उत्तर-पूर्व में स्थित असम अपनी भौगोलिक विविधता, सांस्कृतिक समृद्धि और ऐतिहासिक परंपराओं के लिए विशिष्ट पहचान रखता है। ब्रह्मपुत्र नदी की घाटी में विकसित यह प्रदेश न केवल प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण है, बल्कि साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी अत्यंत समृद्ध रहा है। असमिया समाज की चेतना, लोकजीवन, धार्मिक आस्थाएँ और सामाजिक मूल्यों की सजीव अभिव्यक्ति असमिया साहित्य में देखने को मिलती है।

असमिया साहित्य का इतिहास प्राचीन काल से आरंभ होकर आधुनिक काल तक निरंतर विकसित होता रहा है। इस साहित्य की नींव धार्मिक-भक्ति काव्य में दिखाई देती है, जिसमें वैष्णव भक्ति आंदोलन का विशेष योगदान रहा है। शंकरदेव और उनके अनुयायियों ने असमिया साहित्य को जनभाषा में धार्मिक, नैतिक और मानवीय मूल्यों से जोड़ा। इसी परंपरा को आगे बढ़ाने में महापुरुष माधवदेव का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

माधवदेव असमिया वैष्णव साहित्य के प्रमुख स्तंभ माने जाते हैं। वे शंकरदेव के परम शिष्य थे और उन्होंने अपने गुरु की भक्ति-परंपरा को साहित्यिक ऊँचाइयों तक पहुँचाया। माधवदेव की रचनाओं में भक्ति, वैराग्य, करुणा और मानवीय संवेदना का गहरा समन्वय देखने को मिलता है। उनके द्वारा रचित नामघोषा, भक्ति-रत्नावली और बोरगीत असमिया साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं।

इस प्रकार असम, असमिया साहित्य और माधवदेव—तीनों एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं।

माधवदेव का साहित्य न केवल धार्मिक आस्था का प्रतीक है, बल्कि असमिया भाषा और साहित्य के विकास में एक मील का पत्थर भी है। उनकी काव्यधारा आज भी असमिया समाज को नैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक रूप से दिशा प्रदान करती है।

7.3 माधवदेव सामान्य परिचय

असमिया वैष्णव परंपरा के महान संत, कवि और समाज-सुधारक माधवदेव का जन्म सोलहवीं शताब्दी में असम में हुआ। उनका जीवन भारतीय भक्ति आंदोलन की उस उज्ज्वल धारा का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें धर्म, साहित्य और मानवीय मूल्यों का सहज समन्वय दिखाई देता है। माधवदेव महापुरुष शंकरदेव के परम शिष्य थे और उन्होंने गुरु द्वारा प्रवर्तित एकशरण नामधर्म को न केवल आत्मसात किया, बल्कि उसे साहित्यिक और सांस्कृतिक स्तर पर व्यापक रूप प्रदान किया।

माधवदेव का प्रारंभिक जीवन साधारण था, किंतु उनके भीतर तीव्र बौद्धिक क्षमता और आध्यात्मिक जिज्ञासा विद्यमान थी। प्रारंभ में वे शाक्त परंपरा से प्रभावित थे और तांत्रिक साधना की ओर आकृष्ट थे। किंतु शंकरदेव के संपर्क में आने के बाद उनके जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। गुरु-शिष्य संवाद ने उनके अंतर्मन को परिवर्तित कर दिया और वे वैष्णव भक्ति मार्ग के अनन्य साधक बन गए। यह परिवर्तन उनके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता माना जाता है, जो उनके खुले मन और सत्य-खोजी स्वभाव को दर्शाता है।

माधवदेव का जीवन सादगी, संयम और त्याग का आदर्श उदाहरण है। वे सांसारिक मोह-माया से दूर रहते हुए भी समाज से कटे हुए नहीं थे। उनके व्यक्तित्व में वैराग्य के साथ-साथ करुणा और सामाजिक चेतना का गहरा समावेश था। वे समानता, प्रेम और अहिंसा के पक्षधर थे और जाति-पांति, आडंबर तथा रूढ़ियों का विरोध करते थे। इसी कारण वे असमिया समाज में व्यापक रूप से स्वीकार किए गए।

साहित्य के क्षेत्र में माधवदेव का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। 'नामघोषा' उनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति है, जिसमें भक्ति, दर्शन और नैतिक उपदेशों का सुंदर समन्वय मिलता है। इसके अतिरिक्त भक्ति-रत्नावली, राजसूय, कुमार हरण तथा अनेक बोरगीत उनकी साहित्यिक प्रतिभा के प्रमाण हैं। उनकी भाषा सरल, प्रवाहपूर्ण और जनसामान्य के लिए बोधगम्य है। यही गुण उनके व्यक्तित्व में भी दृष्टिगोचर होता है—सरलता के भीतर गहन गंभीरता।

माधवदेव का व्यक्तित्व विनम्रता और अनुशासन से परिपूर्ण था। वे स्वयं को कभी श्रेष्ठ नहीं मानते थे और सदैव अपने गुरु शंकरदेव के प्रति पूर्ण श्रद्धा और निष्ठा रखते थे। उनका जीवन गुरु-भक्ति, आत्मानुशासन और लोककल्याण की भावना से प्रेरित था। उन्होंने भक्ति को केवल आध्यात्मिक साधना तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे सामाजिक सुधार का माध्यम बनाया।

इस प्रकार माधवदेव का जीवन और व्यक्तित्व असमिया संस्कृति और साहित्य की अमूल्य धरोहर है। वे केवल संत-कवि ही नहीं, बल्कि ऐसे युगपुरुष थे जिन्होंने भक्ति, मानवता और साहित्य के माध्यम से समाज को नई दिशा प्रदान की। उनका व्यक्तित्व आज भी आदर्श, प्रेरणास्रोत और सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक बना हुआ है।

7.4 माधवदेव की रचनाओं का सामग्रिक परिचय

माधवदेव असमिया वैष्णव साहित्य के उन महान रचनाकारों में हैं, जिनकी कृतियाँ भक्ति, दर्शन और लोकमंगल की भावना से ओत-प्रोत हैं। वे महापुरुष शंकरदेव के प्रधान शिष्य थे और उन्होंने गुरु द्वारा प्रवर्तित एकशरण नामधर्म को साहित्यिक अभिव्यक्ति के माध्यम से व्यापक जनसमूह तक पहुँचाया। माधवदेव की रचनाओं में वैष्णव भक्ति का गहन स्वरूप, कृष्ण-भक्ति की एकनिष्ठ साधना और मानवीय मूल्यों की सशक्त

अभिव्यक्ति देखने को मिलती है।

माधवदेव की सर्वाधिक प्रसिद्ध और प्रतिनिधि कृति 'नामघोषा' वैष्णव भक्ति का सार प्रस्तुत करता है। इसमें कृष्ण के नाम-स्मरण, भक्ति के मार्ग, माया-बंधन, जीव-ईश्वर संबंध और नैतिक आचरण जैसे विषयों का काव्यात्मक विवेचन किया गया है। 'नामघोषा' में सरल भाषा, प्रवाहपूर्ण छंद और भाव गंभीरता का सुंदर समन्वय है, जिससे यह ग्रंथ असमिया वैष्णव समाज का धार्मिक एवं साहित्यिक आधार बन गया।

इसके अतिरिक्त 'भक्ति-रत्नावली' माधवदेव की एक महत्वपूर्ण रचना है, जिसमें शुद्ध भक्ति, गुरु-भक्ति और वैष्णव आचार पर बल दिया गया है। यह कृति वैष्णव साधकों के लिए मार्गदर्शक के रूप में प्रतिष्ठित है। इसमें दार्शनिक तत्वों के साथ-साथ नैतिक उपदेश भी सम्मिलित हैं, जो पाठक को आत्मिक शुद्धि की ओर प्रेरित करते हैं।

माधवदेव ने अनेक काव्यात्मक आख्यान भी रचे, जिनमें राजसूय और कुमार हरण उल्लेखनीय हैं। ये कृतियाँ भागवत पुराण की कथाओं पर आधारित हैं और इनमें कृष्ण की लीलाओं का काव्यात्मक चित्रण मिलता है। इन रचनाओं में माधवदेव की कथा-कौशल, भाव-संवेदना और छंद-प्रवीणता स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। इन आख्यानों के माध्यम से उन्होंने धार्मिक कथाओं को लोकभाषा में प्रस्तुत कर जनसामान्य के लिए सहज बनाया। इसके अलावा, उन्होंने अर्जुन भंजन, चोरधरा, पिंपारा गुचोवा, भूमि लेटोवा, और भोजन बिहार जैसे कई झुमुरा (एकांकी नाटक) की रचना की।

माधवदेव की रचनात्मक प्रतिभा का एक महत्वपूर्ण पक्ष उनके द्वारा रचित 'बरगीत' हैं। ये गीत भक्ति, वैराग्य और आध्यात्मिक आनंद की अनुभूति कराते हैं। बोरगीतों में रागात्मकता, काव्य-सौंदर्य और भाव-गहनता का अद्भुत समन्वय है। ये गीत आज भी नामघरों और सांस्कृतिक आयोजनों में गाए जाते हैं, जिससे उनकी जीवंत परंपरा बनी हुई है।

समग्रत: माधवदेव की रचनाएँ असमिया साहित्य की अमूल्य निधि हैं। इनमें भक्ति के साथ-साथ मानवता, नैतिकता और सामाजिक चेतना का समन्वय देखने को मिलता है। उनकी कृतियाँ न केवल धार्मिक ग्रंथ हैं, बल्कि असमिया भाषा और साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले साहित्यिक दस्तावेज भी हैं। माधवदेव ने अपनी रचनाओं के माध्यम से भक्ति को जीवन-पद्धति के रूप में प्रस्तुत किया और असमिया समाज को आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक दिशा प्रदान की।

इसे भी पढ़िए

'नामघोषा' असमिया वैष्णव साहित्य का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण और प्रतिष्ठित ग्रंथ है, जिसकी रचना महापुरुष माधवदेव ने की थी। यह ग्रंथ एकशरण नामधर्म का सार प्रस्तुत करता है और असमिया भक्ति साहित्य की आधारशिला माना जाता है। नामघोषा में भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति, नाम-स्मरण, जीव और ईश्वर के संबंध तथा नैतिक जीवन-मूल्यों का सरल और प्रभावशाली विवेचन मिलता है।

इस ग्रंथ की भाषा सरल, प्रवाहपूर्ण और जनसुलभ है, जिससे सामान्य जन भी इसके भावार्थ को सहज रूप से समझ सकता है। नामघोषा में भक्ति को केवल धार्मिक अनुष्ठान तक सीमित नहीं रखा गया, बल्कि उसे जीवन-पद्धति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें सत्य, अहिंसा, संयम, करुणा और समानता जैसे मानवीय मूल्यों पर विशेष बल दिया गया है।

नामघोषा का पाठ और गायन असम के नामघरों में सामूहिक रूप से किया जाता है, जिससे यह ग्रंथ सामाजिक एकता और सांस्कृतिक चेतना का भी प्रतीक बन गया है। धार्मिक, साहित्यिक और सामाजिक— तीनों दृष्टियों से नामघोषा असमिया समाज के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है और आज भी इसकी प्रासंगिकता बनी हुई है।

7.5 असमिया साहित्य में उनके अवदान

असमिया साहित्य के इतिहास में माधवदेव का स्थान अत्यंत गौरवपूर्ण और स्थायी है। वे केवल महापुरुष शंकरदेव के प्रधान शिष्य ही नहीं थे, बल्कि स्वयं एक महान संत, कवि, दार्शनिक और सांस्कृतिक मार्गदर्शक थे। माधवदेव ने असमिया वैष्णव भक्ति परंपरा को न केवल आगे बढ़ाया, बल्कि उसे साहित्यिक गहराई, वैचारिक परिपक्कता और सामाजिक व्यापकता प्रदान की। उनके अवदान के बिना असमिया साहित्य और संस्कृति की विकास-यात्रा की कल्पना अधूरी प्रतीत होती है।

माधवदेव का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान असमिया वैष्णव साहित्य को सुदृढ़ दार्शनिक आधार प्रदान करना है। महापुरुष शंकरदेव द्वारा प्रवर्तित एकशरण नामधर्म को माधवदेव ने अपने साहित्य के माध्यम से सुव्यवस्थित और विस्तारित किया। उनकी प्रमुख कृति 'नामघोषा' असमिया भक्ति साहित्य का केंद्रीय ग्रंथ मानी जाती है। इसमें कृष्ण-भक्ति, नाम-स्मरण, जीव और ईश्वर के संबंध, माया का स्वरूप तथा नैतिक जीवन-मूल्यों का गहन किंतु सरल विवेचन मिलता है। यह ग्रंथ केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि असमिया समाज के लिए नैतिक और आध्यात्मिक मार्गदर्शिका भी है।

भाषा और शैली के क्षेत्र में माधवदेव का अवदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने संस्कृतनिष्ठ वैष्णव दर्शन को सरल, प्रवाहपूर्ण और जनसुलभ असमिया भाषा में प्रस्तुत किया। उनकी भाषा भावानुकूल, सहज और संप्रेषणीय है, जिससे साधारण जन भी उनके साहित्य से सहज रूप से जुड़ सका। उन्होंने साहित्य को सीमित विद्वान-वर्ग से निकालकर जनसाधारण तक पहुँचाया। इस दृष्टि से माधवदेव असमिया साहित्य को जनोन्मुख बनाने वाले प्रमुख साहित्यकारों में गिने जाते हैं।

काव्य-विधाओं के विकास में भी माधवदेव का योगदान उल्लेखनीय है। उन्होंने भक्ति-काव्य को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया और साथ ही आख्यान-काव्य तथा गीतिकाव्य को भी समृद्ध किया। राजसूय और कुमार हरण जैसे आख्यान काव्यों में भागवत परंपरा की कथाओं को काव्यात्मक सौंदर्य और भाव-गंभीरता के साथ प्रस्तुत किया गया है। इन कृतियों में कथानक की सुसंगठित रचना, भावों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति और छंदों की सुचारु योजना स्पष्ट दिखाई देती है।

माधवदेव की रचनात्मक प्रतिभा का एक विशिष्ट पक्ष उनके द्वारा रचित बोरगीत हैं। ये गीत असमिया साहित्य और संगीत की अमूल्य धरोहर माने जाते हैं। बरगीतों में भक्ति, वैराग्य, करुणा और आध्यात्मिक आनंद की अनुभूति होती है। रागात्मकता, शब्द-सौंदर्य और भाव-गहनता के कारण ये गीत आज भी नामघरों और सांस्कृतिक आयोजनों में श्रद्धा के साथ गाए जाते हैं। इस प्रकार माधवदेव ने असमिया साहित्य को संगीतात्मक समृद्धि भी प्रदान की।

माधवदेव का साहित्य सामाजिक चेतना से भी गहराई से जुड़ा हुआ है। उन्होंने जाति-पांति, सामाजिक आडंबर और रूढ़िवादी मान्यताओं का विरोध किया। समानता, प्रेम, करुणा और नैतिक आचरण का संदेश देकर उन्होंने असमिया समाज में मानवतावादी दृष्टि को प्रबल किया। उनके साहित्य में भक्ति केवल व्यक्तिगत मोक्ष का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक सद्भाव और नैतिक सुधार का माध्यम बन जाती है।

असमिया संस्कृति के विकास में भी माधवदेव का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। नामघर परंपरा, सामूहिक कीर्तन और भक्ति-संगीत के प्रचार-प्रसार में उनकी रचनाओं की केंद्रीय भूमिका रही है। उनके साहित्य ने असमिया समाज की धार्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक चेतना को एक सूत्र में बाँधने का कार्य किया। आज भी असम के जनजीवन में माधवदेव की रचनाएँ जीवंत रूप में उपस्थित हैं।

समग्र रूप से कहा जा सकता है कि माधवदेव ने असमिया साहित्य को वैचारिक गहराई, भाषिक सरलता, काव्यात्मक सौंदर्य और सामाजिक चेतना प्रदान की। उनका अवदान केवल भक्ति साहित्य तक सीमित नहीं रहा,

बल्कि असमिया भाषा, साहित्य और संस्कृति के सर्वांगीण विकास में निर्णायक सिद्ध हुआ। इसलिए माधवदेव को असमिया साहित्य का महान संत-कवि, सांस्कृतिक मार्गदर्शक और युगनिर्माता कहा जाता है।

प्रगति प्रतिवेदन

प्रश्न संख्या 1. 'झुमुरा' क्या है?

प्रश्न संख्या 2. माधवदेव के गुरू कौन थे?

प्रश्न संख्या 3. स्पष्ट कीजिए कि महापुरुष माधवदेव ने शंकर के विचारधारा को वेचारिक रूप प्रदान किया।

7.6 असमिया साहित्य जगत में उनके साहित्य की प्रासंगिकता

असमिया साहित्य के विकास और उसकी सांस्कृतिक चेतना को आकार देने में माधवदेव का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण और स्थायी है। वे केवल वैष्णव भक्ति परंपरा के महान संत-कवि ही नहीं, बल्कि ऐसे साहित्यकार थे जिनकी रचनाएँ अपने युग की सीमाओं को लाँघकर आज भी समान रूप से प्रासंगिक बनी हुई हैं। माधवदेव का साहित्य असमिया समाज के धार्मिक, नैतिक और सांस्कृतिक जीवन से गहराई से जुड़ा हुआ है।

माधवदेव के साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता उसकी मानवीय संवेदना और नैतिक दृष्टि है। उनकी रचनाओं में भक्ति को केवल ईश्वर-आराधना तक सीमित नहीं रखा गया, बल्कि उसे जीवन के शुद्ध आचरण, आत्मसंयम और करुणा से जोड़ा गया है। 'नामघोषा' जैसे ग्रंथ में प्रस्तुत विचार आज के भौतिकतावादी और नैतिक संकट से जूझते समाज के लिए मार्गदर्शक सिद्ध होते हैं। सत्य, अहिंसा, समता और प्रेम जैसे मूल्य उनके साहित्य को समकालीन संदर्भों में भी प्रासंगिक बनाते हैं।

भाषा और शैली की दृष्टि से भी माधवदेव का साहित्य आज के पाठकों के लिए महत्त्वपूर्ण है। उनकी सरल, प्रवाहपूर्ण और जनसुलभ भाषा असमिया साहित्य को लोकजीवन से जोड़ती है। आधुनिक साहित्य में जनभाषा के प्रयोग और सामाजिक संप्रेषण पर जो बल दिया जाता है, उसकी स्पष्ट झलक माधवदेव की रचनाओं में पहले से ही दिखाई देती है। इस कारण उनका साहित्य आज भी सहजता से पढ़ा और समझा जाता है।

सांस्कृतिक दृष्टि से माधवदेव की प्रासंगिकता और भी अधिक बढ़ जाती है। नामघर परंपरा, सामूहिक कीर्तन और बोरगीतों के माध्यम से उनका साहित्य आज भी असमिया जनजीवन में जीवंत रूप में उपस्थित है। ये रचनाएँ सामाजिक एकता, सामूहिक चेतना और सांस्कृतिक निरंतरता को बनाए रखने में सहायक हैं।

समग्र रूप से कहा जा सकता है कि माधवदेव का साहित्य असमिया साहित्य जगत में केवल ऐतिहासिक महत्त्व ही नहीं रखता, बल्कि समकालीन समाज के लिए भी वैचारिक, नैतिक और सांस्कृतिक प्रेरणा का स्रोत है। यही कारण है कि उनका साहित्य आज भी उतना ही प्रासंगिक, प्रभावशाली और जीवंत है जितना अपने रचना-काल में था।

7.7 सारांश

माधवदेव असमिया साहित्य और संस्कृति के इतिहास में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण और युगनिर्माता व्यक्तित्व हैं। वे महापुरुष शंकरदेव के प्रधान शिष्य, महान संत, कवि और वैचारिक चिंतक थे। माधवदेव का जीवन आध्यात्मिक खोज, वैचारिक परिवर्तन और भक्ति-मार्ग की साधना का प्रेरक उदाहरण प्रस्तुत करता है। प्रारंभ में वे शाक्त परंपरा से जुड़े थे, किंतु शंकरदेव के सान्निध्य में आकर उन्होंने एकशरण नामधर्म को स्वीकार किया और जीवन को भक्ति, संयम तथा लोकमंगल के लिए समर्पित कर दिया।

माधवदेव की रचनाएँ असमिया वैष्णव साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। उनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति नामघोषा भक्ति साहित्य का आधारग्रंथ मानी जाती है, जिसमें कृष्ण-भक्ति, नाम-स्मरण, जीव-ईश्वर संबंध और नैतिक जीवन-मूल्यों का सरल तथा प्रभावशाली विवेचन मिलता है। इसके अतिरिक्त भक्ति-रत्नावली, राजसूय,

कुमार हरण तथा अनेक बोरगीत उनकी साहित्यिक प्रतिभा के सशक्त प्रमाण हैं। उनकी रचनाओं में भक्ति, वैराग्य, करुणा और मानवीय संवेदना का सुंदर समन्वय दिखाई देता है।

असमिया साहित्य में माधवदेव का अवदान बहुआयामी है। उन्होंने असमिया वैष्णव परंपरा को वैचारिक गहराई, भावनात्मक विस्तार और साहित्यिक परिपक्वता प्रदान की। उनकी भाषा सरल, प्रवाहपूर्ण और जनसुलभ है, जिससे साहित्य लोकजीवन से गहराई से जुड़ सका। काव्य-विधाओं के विकास में भी उनका योगदान उल्लेखनीय है—भक्ति-काव्य, आख्यान-काव्य और गीतिकाव्य सभी को उन्होंने समृद्ध किया।

माधवदेव का साहित्य सामाजिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने जाति-पांति, आडंबर और रूढ़ियों का विरोध कर समानता, प्रेम और नैतिकता का संदेश दिया। आज के संदर्भ में भी उनका साहित्य उतना ही प्रासंगिक है, क्योंकि उसमें निहित मानवीय मूल्य, सांस्कृतिक चेतना और नैतिक दृष्टि आधुनिक समाज को दिशा प्रदान करते हैं।

इस प्रकार माधवदेव का जीवन और साहित्य असमिया साहित्य जगत के लिए केवल ऐतिहासिक धरोहर नहीं, बल्कि सतत प्रेरणा और सांस्कृतिक चेतना का जीवंत स्त्रोत है।

K7.8 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न संख्या 1 का उत्तर: माधवदेव द्वारा रचित झुमुरा असमिया वैष्णव साहित्य की एक विशिष्ट काव्य-रूप है। उनकी झुमुरा में लोकधारा और भक्ति का सुंदर समन्वय मिलता है। झुमुरा लोकसंगीत और वैष्णव भक्ति का सफल संगम है, जिसने असमिया साहित्य और संस्कृति को समृद्ध किया। अधिक जानने के लिए माधवदेव के ग्रंथों का अध्ययन करें।

प्रश्न संख्या 2 का उत्तर: शंकरदेव।

प्रश्न संख्या 3 का उत्तर: जानने के लिए इकाई का ध्यान से अध्ययन करे।

57.9 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- बरा, लक्षिनंदन: सेही गुणनिधि, ज्योति प्रकाशन, 2024।
- बरकटकी, संजीब कुमार: माधवदेव, मोतीलाल बंसारिदास पुब्लिस्हीं हाउस, न्यू दिल्ली।
- बेजबरुआ, लक्ष्मीनाथ: महापुरुष श्री शंकरदेव आरू श्री माधवदेव, साहित्य प्रकाश, 2011।
- महंत, बापचंद: बरगीत, स्टूडेंट्स स्टोर, गुवाहाटी, 2008।
- शैकिया, नुरुल इस्लाम: महान असमिया व्यक्ति चिरिज, गुवाहाटी, 2013।
- शर्मा, सत्येन्द्रनाथ: असमिया साहित्यर समीक्षात्मक इतिवृत्त, गुवाहाटी, 1991।
- दास, स्वप्नाली: इलाराम दास जीवन और कृति, शब्द भारती प्रकाशन, 2025।
- दस, श्री रामप्रसाद: महापुरुष श्रीश्री शंकरदेव- श्रीश्री माधवदेव, गुवाहाटी।
- हजारिका, प्रदीप, बरा, इंदिरा शैकिया: महापुरुष शंकरदेव-मधावदेवर अंकिया नाट आरू झुमुरा।

M7.10 अभ्यास प्रश्न

क) संक्षिप्त उत्तर दीजिए-

1. माधवदेव किस महान संत के प्रधान शिष्य थे?

2. माधवदेव की सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति कौन-सी है?
3. माधवदेव ने किस भक्ति परंपरा को अपनाया और आगे बढ़ाया?
4. माधवदेव की रचनाओं में प्रमुख रूप से किन मूल्यों पर बल दिया गया है?
5. माधवदेव के साहित्य को आज भी प्रासंगिक क्यों माना जाता है?

ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. माधवदेव के जीवन और व्यक्तित्व का परिचय देते हुए असमिया साहित्य में उनके स्थान पर प्रकाश डालिए।
2. माधवदेव की प्रमुख रचनाओं का सामग्रिक परिचय दीजिए तथा उनकी साहित्यिक विशेषताओं पर चर्चा कीजिए।
3. असमिया साहित्य में माधवदेव के अवदान का विवेचन करते हुए उनके सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव को स्पष्ट कीजिए।
4. असमिया साहित्य जगत में माधवदेव के साहित्य की प्रासंगिकता पर विस्तार से चर्चा कीजिए।

****

इकाई-8 बरगीत

इकाई की रूपरेखा

8.1 उद्देश्य
8.2 प्रस्तावना
8.3 बरगीत का अर्थ एवं परिभाषा:
8.4 बरगीत और असमिया प्राचीन गीतों का स्वरूप:
8.5 बरगीत का उद्देश्य, विषयवस्तु और दार्शनिक आधार
8.6 सारांश
8.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
8.8 अधिक जानने के लिए पढ़ें
8.9 अभ्यास प्रश्न

8.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

- इस इकाई के अध्ययन से आप बरगीत के अर्थ और परिभाषा को स्पष्ट रूप से जानेंगे।
- इस इकाई के अध्ययन से आप बरगीत के उद्भव और प्रमुख रचनाकारों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- इस इकाई के अध्ययन से आप बरगीत के उद्देश्य और उसके महत्व को समझने में सक्षम होंगे।
- इस इकाई के अध्ययन से आप बरगीत की प्रमुख विशेषताओं को विस्तार से जानेंगे।
- इस इकाई के अध्ययन से आप बरगीतों की विषयवस्तु और उदाहरणों को समझने का प्रयास करेंगे।
- इस इकाई के अध्ययन से आप बरगीत के दार्शनिक आधार की गहरी जानकारी प्राप्त करेंगे।

8.2 प्रस्तावना

बरगीत असमिया साहित्य और भक्ति परंपरा का एक अत्यंत महत्वपूर्ण अंग है, जिसका उद्भव मुख्यत: महापुरुष शंकरदेव और उनके शिष्य माधवदेव के प्रयासों से हुआ। 'बरगीत' शब्द का अर्थ है-'उत्तम या श्रेष्ठ गीत'। ये गीत मुख्यत: ईश्वर भक्ति, विशेषकर कृष्ण भक्ति, को समर्पित होते हैं और इनमें गहरी आध्यात्मिक भावना तथा संगीतात्मकता का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है।

बरगीत की परिभाषा के अनुसार, यह एक विशिष्ट प्रकार का भक्तिपरक गीत है, जिसे निश्चित रागों में गाया जाता है और जिसका उद्देश्य ईश्वर के प्रति प्रेम, समर्पण तथा भक्ति का प्रसार करना होता है। इसका स्वरूप काव्यात्मक होने के साथ-साथ संगीतप्रधान भी है, जिससे यह साधारण जनमानस को सहज रूप से आकर्षित करता है। बरगीतों का मुख्य उद्देश्य नव-वैष्णव भक्ति आंदोलन के माध्यम से समाज में धार्मिक जागरूकता फैलाना और लोगों को सरल भक्ति मार्ग की ओर प्रेरित करना था। ये गीत जाति-पांति, आडंबर और जटिल कर्मकांडों से दूर रहकर भक्ति को एक सहज और सार्वभौमिक रूप में प्रस्तुत करते हैं।

बरगीत की प्रमुख विशेषताओं में इसकी सरल भाषा, गहन भावनात्मकता, निश्चित राग-रागिनियों का प्रयोग, तथा आध्यात्मिक गूढ़ता शामिल हैं। इनमें भगवान कृष्ण की बाल लीला, करुणा, प्रेम और भक्ति के विविध रूपों का सुंदर चित्रण मिलता है। उदाहरण के रूप में ''मन मेरो राम चरणहि लागु'' जैसे बरगीतों में भक्ति की गहनता और आत्मसमर्पण की भावना स्पष्ट रूप से व्यक्त होती है ।

दर्शन की दृष्टि से बरगीत एकेश्वरवाद, भक्ति, और आत्मा-परमात्मा के संबंध को उजागर करते हैं। इनमें भक्ति को मोक्ष का सर्वोत्तम साधन माना गया है। इस प्रकार, बरगीत न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं बल्कि धार्मिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक दृष्टि से भी अत्यंत समृद्ध परंपरा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

8.3 बरगीत का अर्थ एवं परिभाषा

असम की वैष्णव भक्ति परम्परा में बरगीतों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। वस्तुत: 'बरगीत' उन भक्तिपरक गीतों को कहा जाता है जिनकी रचना पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तथा सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में असम के महान संत-समाज सुधारक महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव और उनके प्रमुख शिष्य तथा सहयोगी श्रीश्री माधवदेव ने की थी। इन गीतों की रचना का मूल उद्देश्य संगीतकला के माध्यम से असम में नव वैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार करना था। शास्त्रीय रागों की आधारभूमि पर रचित ये गीत मूलत: भक्तिभाव से परिपूर्ण हैं और वैष्णव आध्यात्मिक परम्परा के प्रमुख अंग के रूप में प्रतिष्ठित हैं। चरित-पुथियों से यह ज्ञात होता है कि शंकरदेव और माधवदेव अपनी इन रचनाओं को केवल ''गीत'' कहकर संबोधित करते थे। बाद के समय में उनके अनुयायियों ने इन गीतों की विशिष्टता और श्रेष्ठता को दृष्टिगत रखते हुए इनके साथ ''बर'' विशेषण जोड़ दिया। असमिया भाषा में ''बर'' का अर्थ श्रेष्ठ, महान अथवा विशिष्ट होता है। इस प्रकार ''बरगीत'' शब्द का प्रयोग उन विशिष्ट गीतों के लिए होने लगा जो अपने भाव, भाषा तथा संगीतात्मक गरिमा के कारण समकालीन अन्य गीतों से भिन्न और उच्च माने गए। यह नामकरण केवल एक भाषिक परिवर्तन मात्र नहीं था, बल्कि इसके माध्यम से गुरु-परम्परा के प्रति शिष्यों की श्रद्धा और इन गीतों की सांगीतिक महत्ता की स्वीकृति भी अभिव्यक्त होती है।

शंकरदेव और माधवदेव के पश्चात् वैष्णव परम्परा के अनेक गुरुओं ने भी गीतों की रचना की। पुरुषोत्तम ठाकुर, गोपाल आटा, यदुमणि देउ, अनिरुद्ध देउ आदि अनेक संत-कवियों ने भी वैष्णव भक्ति से प्रेरित गीतों का सृजन किया। तथापि सामान्यत: उनके द्वारा रचित गीतों को 'बरगीत' की संज्ञा नहीं दी जाती। फिर भी उनके द्वारा स्थापित सत्रों में इन गुरुओं के गीतों को भी दैनिक नाम-प्रसंग के समय अत्यन्त श्रद्धा के साथ उसी प्रकार गाया जाता है जिस प्रकार बरगीतों का गायन किया जाता है। यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि संकीर्ण अर्थ में 'बरगीत' शब्द शंकरदेव और माधवदेव की रचनाओं के लिए ही प्रयुक्त होता है तथापि व्यापक वैष्णव सांस्कृतिक परम्परा में अन्य गुरुओं के गीत भी समान आदर प्राप्त करते हैं ।

शंकरदेव और माधवदेव द्वारा रचित अंकीय नाटकों में जो गीत सम्मिलित हैं, उन्हें सामान्यत: 'बरगीत' नहीं कहा जाता। उन गीतों को ''अंक-गीत'' या ''नाटक-गीत'' के नाम से जाना जाता है। इसके बावजूद यह तथ्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि बरगीत शंकर-माधव की वैष्णव परम्परा के मुख्य धार्मिक अनुष्ठान-नाम-कीर्तन अथवा नाम-प्रसंग-का आरम्भ से ही अविभाज्य अंग रहे हैं। असम के सत्रों और नामघरों में आज भी इन गीतों का गायन धार्मिक अनुष्ठान के रूप में किया जाता है, जिससे इनकी जीवित परम्परा का प्रमाण मिलता है।

बरगीत और अंक-गीत के मध्य मुख्य अंतर उनकी विषयवस्तु और प्रयोजन में निहित है। बरगीत मूलत: प्रार्थनात्मक तथा स्वतंत्र मुक्तक गीत होते हैं जिनकी विषयवस्तु गंभीर तथा गहन भक्तिभाव से ओतप्रोत रहती है। इन गीतों में ईश्वर के प्रति समर्पण, भक्ति, आध्यात्मिकता और वैष्णव धर्म के मूल सिद्धांतों का अत्यन्त प्रभावशाली प्रतिपादन मिलता है। इसके विपरीत अंकीय नाटकों में प्रयुक्त गीत नाटकीय परिस्थितियों के अनुसार रचे गए होते हैं, इसलिए उनकी विषयवस्तु अधिक विविध और अनेक रसों से युक्त होती है। कई बार उनमें भक्ति के साथ-साथ हास्य, श्रृंगार अथवा अन्य भावों की भी अभिव्यक्ति दिखाई देती है।

संगीतात्मक दृष्टि से भी बरगीत और अंक-गीत के बीच कुछ अंतर दृष्टिगत होता है। अंक-गीतों में राग के साथ-साथ ताल का भी स्पष्ट उल्लेख मिलता है जबकि बरगीतों की पांडुलिपियों में सामान्यत: ताल का उल्लेख

नहीं किया गया है। इस कारण बरगीतों के गायन में ताल का चयन गायक-वादकों की परम्परागत समझ और स्वतंत्रता पर निर्भर करता है। इसके विपरीत भाओना के समय जब नाटक प्रस्तुत किया जाता है तब अंक-गीतों का गायन उसी निश्चित ताल में किया जाता है जो उनके साथ निर्धारित होता है। उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि कई नाटक-गीत ऐसे हैं जिन्हें नाम-कीर्तन के अवसर पर बरगीतों की भाँति गाया जाता है। उस समय बरगीत और अंक-गीत के बीच किसी प्रकार का भेद नहीं रखा जाता और ताल की निश्चितता का भी विशेष ध्यान नहीं दिया जाता।

बरगीतों की एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता उनके रागों की विविधता है। अंक-गीतों सहित बरगीतों का गायन कुल छत्तीस रागों में किया जाता है। इन रागों में अहिर, अशोवारी, बसंत, बराड़ी, बेलोआर, धनश्री, माछर या माउर, श्याम, कौ, कल्याण, पूर्वी, भाटियाली, गौरी, भूपाली, कानाड़ा, सारंग, सुहाई, सिंधुरा, श्री, गांधार, तुर, नाट, मल्लार, केदार, कामोद, ललित, माछर-धनश्री, तुर-भाटियाली, तुर-बसंत, श्री-गौरी, श्री-गांधार, नाट-मल्लार, कारुण्य-केदार, श्री-पयार, श्याम-गेड़ा तथा कौ-कल्याण-सिंधुरा आदि प्रमुख हैं। इनमें से कुछ राग ऐसे भी हैं जो केवल अंक-गीतों में ही पाए जाते हैं, जैसे-गांधार, कारुण्य-केदार, कौ-कल्याण-सिंधुरा, सारंग, श्री-गौरी और श्री-पयार। इन रागों का प्रयोग अपेक्षाकृत सीमित मात्रा में मिलता है।

उदाहरण के लिए, गांधार राग का उल्लेख शंकरदेव के रुक्मिणीहरण नाटक के केवल एक-दो गीतों में ही प्राप्त होता है। विभिन्न पांडुलिपियों में इन गीतों के राग-निर्देश में भी भिन्नता देखने को मिलती है। उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं-

'ए सखी सुदिन भयोरी
हरि हरि हमार करम किना भेलि
सुन्दरी धरि हरि चरण बिनारे'

कुछ पांडुलिपियों में इन गीतों का राग 'गांधार' बताया गया है जबकि अन्य पांडुलिपियों में 'श्री-गांधार' का उल्लेख मिलता है। संगीत-शोधकर्ताओं ने स्वरलिपि के विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि श्री-गांधार राग में 'ग' और 'ध' स्वरों का स्पष्ट प्रयोग होता है, जबकि गांधार राग में 'ध' स्वर प्राय: वर्जित रहता है और 'ग' का कोमल रूप सीमित मात्रा में प्रयुक्त होता है। इसी आधार पर ''हरि हरि हमार करम किना भेलि'', ''सुन्दरी धरि हरि चरण बिनारे'' तथा ''रूपे भूले गोवाली'' जैसे गीतों को गांधार राग से सम्बद्ध माना गया है। इसी प्रकार शंकरदेव के केलिगोपाल नाटक में निम्नलिखित गीत मिलते हैं-

'हरिक गोपी देखये नपाय
सखीसब ऐचन बचन ना बोल'

इन गीतों के राग के विषय में भी पांडुलिपियों में मतभेद दिखाई देता है। कहीं इन्हें 'कारुण्य-केदार' में रखा गया है तो कहीं केवल 'केदार' राग का उल्लेख किया गया है। स्वरलिपि के विश्लेषण से यह स्पष्ट हुआ है कि केदार और कारुण्य-केदार दो भिन्न राग हैं इसलिए इन गीतों को कारुण्य-केदार राग में रखना अधिक उपयुक्त माना गया है। सारंग राग में शंकरदेव के रुक्मिणीहरण नाटक का केवल एक गीत मिलता है-

'कहतु विधाता बेदकु बाणी' इसी प्रकार कौ-कल्याण-सिंधुरा नामक मिश्र राग में माधवदेव के रास-झुमुरा नाटक का एक गीत प्राप्त होता है-

'सुन्दरी राधे बात बुललोहों तेरा'

भारतीय संगीत की व्यापक परम्परा का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि गौरी, केदार, कामोद, कानाड़ा, सारंग, मल्लार, नाट, बराड़ी और बसंत जैसे अनेक रागों की उत्पत्ति पाँचवीं से ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य मानी जाती है। बरगीतों में प्रयुक्त अन्य अनेक रागों का उल्लेख भी शारंगदेव के प्रसिद्ध संगीतशास्त्रीय ग्रंथ संगीत-रत्नाकर में मिलता है। यद्यपि ये राग हिन्दुस्तानी तथा कर्नाटक संगीत परम्परा में भी विभिन्न रूपों में

विद्यमान हैं किन्तु बरगीतों में इनका प्रयोग जिस रूप में लगभग पाँच सौ वर्षों से धार्मिक परम्परा के अंतर्गत होता आया है, उसे आधुनिक संगीत-शैलियों से पूर्णत: अभिन्न नहीं माना जा सकता।

चरित-पुथियों में यह भी उल्लेख मिलता है कि शंकरदेव ने अपने प्रथम नाट्य-प्रयोग चिह्न-यात्रा में आकाश-मंडली, वायु-मंडली और तिमिर जैसे रागों का प्रयोग किया था। दुर्भाग्यवश उन रागों में उन्होंने कोई गीत सुरक्षित नहीं छोड़ा जिसके कारण वे आज उपलब्ध नहीं हैं। फिर भी इन रागों के उल्लेख से यह स्पष्ट होता है कि शंकरदेव के समय असम में गीतों के अतिरिक्त भी राग-संगीत की एक विकसित परम्परा विद्यमान थी। समग्र रूप से देखा जाए तो बरगीत और अंक-गीत मिलकर असम की एक विशिष्ट और समृद्ध संगीत-परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं। जब हम 'बरगीत' शब्द का प्रयोग करते हैं तब वस्तुत: हम इसी व्यापक सांगीतिक परम्परा की ओर संकेत कर रहे होते हैं, जिसमें भक्ति, साहित्य और संगीत का अद्भुत समन्वय दृष्टिगत होता है। बरगीतों का सैद्धान्तिक तथा साहित्यिक महत्त्व भी अत्यन्त व्यापक है। असम की सांस्कृतिक परम्परा में इन गीतों ने भारतीय संगीत और साहित्य दोनों ही क्षेत्रों में एक विशिष्ट स्थान अर्जित किया है। सामान्यत: 'बरगीत' शब्द उन गीतों के लिए प्रयुक्त होता है जिनकी रचना शंकरदेव और माधवदेव ने की थी यद्यपि अन्य कवियों ने भी समान भाव और भाषा में कुछ गीतों की रचना की थी। रामचरण ठाकुर, भवानीपुरिया गोपाल आता, उनकी पुत्री पद्मप्रिया, बर यदुमणि, अनिरुद्ध तथा आँहतगुरिया श्रीराम विप्र जैसे कवियों के गीतों को भी उनकी-अपनी सत्रीय परम्पराओं में बरगीत के रूप में स्वीकार किया जाता है। फिर भी सामान्यत: शंकरदेव और माधवदेव की रचनाओं को ही सर्वाधिक प्रामाणिक बरगीत माना जाता है।

बरगीतों की विषयवस्तु अत्यन्त व्यापक है। इन गीतों में मुख्यत: भगवान विष्णु तथा उनके अवतार श्रीकृष्ण की लीला-महिमा का वर्णन मिलता है। कुछ गीतों में श्रीरामचन्द्र की महिमा का भी सुन्दर चित्रण प्राप्त होता है। विषयवस्तु के आधार पर बरगीतों को मुख्यत: दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-कृष्ण-लीला तथा भक्तितत्त्व। बरगीतों की विषयवस्तु को और अधिक सूक्ष्मता से देखा जाए तो इन्हें लीला, विरह, विरक्ति, परमार्थ, चौर और चातुरी—इन छह वर्गों में विभाजित किया जाता है। इन सभी वर्गों में विभिन्न प्रकार के रसों का प्रयोग हुआ है। लीला-विषयक गीतों की भी चार शाखाएँ हैं- जागन, चलन, खेलन और नृत्य। विशेषत: माधवदेव के गीतों में लीला-विषयक गीतों की संख्या अधिक है, जिनमें बालकृष्ण का अत्यन्त मनोहर चित्रण मिलता है। विरक्ति-गीतों में जीवन की अनित्यता और संसार की नश्वरता का अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया गया है। उदाहरण के लिए शंकरदेव के एक गीत की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

'अथिर धन जन
जीवन यौवन
अथिर एहु संसार।
पुत्र परिवार
सबहिं असार
करबो काहेरि सार।'

इसी भाव को आगे बढ़ाते हुए कवि भगवान से करुणापूर्वक प्रार्थना करते हैं-

'पावे परि हरि करोहूँ कातरि प्राण राखरि मोर।
विषय विषधर विषे जर जर जीवन नारहे मोर।' इन पंक्तियों में संसार के मोह-माया से मुक्ति पाने की तीव्र आकांक्षा व्यक्त हुई है।

परमार्थ-विषयक गीतों में वेदों के ज्ञान, ब्रह्म की महिमा तथा भगवान विष्णु के गुण-गौरव का विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। इन गीतों के माध्यम से जनसमाज को भक्ति और मुक्ति के मार्ग की ओर प्रेरित करने का प्रयास किया गया है। शंकरदेव के गीतों में राम और कृष्ण की अभिन्नता का भाव भी व्यक्त हुआ है-

'कृष्ण किंकर
शंकर कह
बिछुरि विषय कामा।
राम चरणे
शरण लेहु
जप गोविंदर माला॥
बोलहु राम नामेसे मुकुति निदाना।
भव बैतरणी सुख सरणी नाही नाही नाम समाना।'

5 महत्वपूर्ण बिंदु

बरगीतों की भाषा 'ब्रजावली' है, जो एक कृत्रिम साहित्यिक भाषा मानी जाती है। इसमें ब्रजभाषा और असमिया भाषा का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। दोनों महापुरुषों ने इस भाषा का प्रयोग इस प्रकार किया कि गीतों की साहित्यिक गरिमा बनी रहे और साथ ही सामान्य जन भी उनके भावों को सहजता से समझ सके। बरगीत केवल धार्मिक गीत ही नहीं हैं बल्कि वे असम की सांस्कृतिक, साहित्यिक और संगीतात्मक परम्परा के अमूल्य धरोहर भी हैं। यद्यपि इनकी रचना मूलत: वैष्णव धर्म के प्रचार के उद्देश्य से की गई थी तथापि उनकी काव्यात्मकता, संगीतात्मकता और भावात्मक गहनता के कारण ये गीत साहित्य और संगीत दोनों ही क्षेत्रों में अत्यन्त प्रतिष्ठित हो गए हैं।

8.4 बरगीत और असमिया प्राचीन गीतों का स्वरूप

असम की सांस्कृतिक और साहित्यिक परम्परा में बरगीतों का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट माना जाता है। अनुपम भाव-संपदा, सुसंस्कृत भाषा तथा राग-ताल की समन्वित संरचना से सम्पन्न बरगीत मूलत: दो महान संत-कवियों-महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव और उनके प्रमुख शिष्य श्रीश्री माधवदेव-की रचनात्मक प्रतिभा के अद्वितीय उदाहरण हैं। तथापि यह भी सत्य है कि इन गीतों की रचना किसी पूर्णत: शून्य सांस्कृतिक परिवेश में नहीं हुई थी। इनके पीछे प्राचीन असमिया सांगीतिक परम्पराओं की एक सुदीर्घ पृष्ठभूमि विद्यमान थी। बरगीतों के उद्भव, स्वरूप और प्रभावक्षेत्र का सूक्ष्म अध्ययन करने पर यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि प्राचीन असमिया गीत-परम्पराओं का इनके विकास पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव रहा है। यद्यपि बरगीतों की सांगीतिक और साहित्यिक गरिमा अत्यन्त उच्च कोटि की है फिर भी प्राचीन असम की पाँचाली परम्परा तथा अन्य लोकगीतों के साथ इनकी तुलनात्मक समीक्षा करना असंगत नहीं प्रतीत होता।

इतिहास तथा साहित्यिक प्रमाणों के आधार पर यह माना जाता है कि ओजापाली गीत-परम्परा बरगीतों से भी अधिक प्राचीन है। विभिन्न आन्तरिक प्रमाणों और सांस्कृतिक परम्पराओं के आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि ओजापाली की परम्परा शंकरदेव से पहले ही असमिया समाज में स्थापित हो चुकी थी। इतना ही नहीं शंकरदेव के जीवनकाल में भी तथा उनके पश्चात के काल में भी ओजापाली की परम्परा व्यापक रूप से प्रचलित रही। इस तथ्य से यह स्पष्ट होता है कि शंकरदेव के समय का असमिया समाज संगीत और गायन-परम्पराओं के प्रति अत्यन्त अनुरागी था। ओजापाली के प्रति जनसामान्य की जो गहरी रुचि और लोकप्रियता थी उसने उस समय के समाज में एक प्रकार की सांगीतिक चेतना का निर्माण किया। यह मानना अनुचित नहीं होगा कि उसी संगीतप्रिय सामाजिक वातावरण ने बरगीतों के उद्भव और विकास के लिए एक अनुकूल पृष्ठभूमि तैयार की थी। इस प्रकार कहा जा सकता है कि यद्यपि बरगीतों की रचना एक विशिष्ट धार्मिक उद्देश्य से हुई, फिर भी उनके पीछे प्राचीन असमिया सांगीतिक परम्पराओं की प्रेरणा निहित थी।

ओजापाली और बरगीत-दोनों ही असम की सांगीतिक परम्परा की महत्त्वपूर्ण विधाएँ हैं और दोनों में

कुछ उल्लेखनीय समानताएँ भी दृष्टिगत होती हैं। इन दोनों प्रकार के गीतों का आधार राग-संगीत है और इनके गायन में रागों का विशेष महत्त्व होता है। इसी प्रकार इन दोनों परम्पराओं का संरक्षण और प्रसार मुख्यत: गुरु-शिष्य परम्परा के माध्यम से ही होता रहा है। जिस प्रकार बरगीतों के विभिन्न गीतों को गाने के लिए विशिष्ट समय निर्धारित होते हैं, उसी प्रकार ओजापाली परम्परा में भी समयानुसार विभिन्न रागों में गीत गाने की परम्परा विद्यमान रही है। ओजापाली के गायक सामान्यत: राग-संगीत के अत्यन्त कुशल ज्ञाता होते थे और उनके गायन में रागों का अत्यन्त सुन्दर प्रयोग देखने को मिलता था। किसी राग को प्रारम्भ करने से पूर्व 'आलाप' करने की जो परम्परा है, वह ओजापाली और बरगीत—दोनों में समान रूप से दिखाई देती है। यह भी उल्लेखनीय है कि इन दोनों प्रकार के गीतों के गायन में स्वराश्रयी वाद्ययंत्रों का प्रयोग सामान्यत: नहीं किया जाता, जिससे इनके शुद्ध स्वरप्रधान स्वरूप का संरक्षण होता है।

यद्यपि इन दोनों परम्पराओं में कुछ समानताएँ दृष्टिगत होती हैं, तथापि शंकरदेव ने पाँचाली गीतों को किसी भी दृष्टि से उच्च कोटि का नहीं माना था। उन्होंने अपने धार्मिक और सांस्कृतिक आंदोलन के अंतर्गत ऐसे गीतों को स्वीकार नहीं किया और उन्हें अपनी वैष्णव परम्परा से पृथक ही रखा। इसके पीछे मुख्य कारण यह था कि बरगीतों की विषयवस्तु अत्यन्त गंभीर, आध्यात्मिक और विष्णु-भक्ति से प्रेरित है जबकि पाँचाली गीतों में अनेक स्थानों पर मनसा देवी की वंदना, हल्के मनोरंजनात्मक प्रसंग तथा आदिरसात्मक वर्णनों की प्रवृत्ति दिखाई देती है। इन गीतों में कभी-कभी लोक-मनोरंजन के लिए निम्नस्तरीय हास्य का भी प्रयोग मिलता है। इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ शंकरदेव की धार्मिक और नैतिक दृष्टि के अनुकूल नहीं थीं। उनके लिए एक अन्य असंतोषजनक पक्ष यह भी था कि पाँचाली गीतों में विष्णु के अतिरिक्त अन्य देवताओं और देवियों की महिमा का भी वर्णन मिलता है। चूँकि शंकरदेव की वैष्णव भक्ति एकेश्वरवादी सिद्धान्त पर आधारित थी, इसलिए वे ऐसे गीतों को अपने धार्मिक आंदोलन का अंग नहीं बनाना चाहते थे। फिर भी यह तथ्य स्वीकार करना होगा कि प्राचीन असम में ओजापाली गीतों द्वारा जो सांगीतिक वातावरण निर्मित हुआ था उसकी लोकप्रियता ने शंकरदेव को बरगीतों की रचना के लिए अप्रत्यक्ष रूप से प्रेरित किया होगा।

अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1: बरगीत का अर्थ क्या है?

प्रश्न 2: बरगीतों की रचना किन संतों ने की थी?

प्रश्न 3: बरगीतों का मुख्य उद्देश्य क्या था?

प्रश्न 4: बरगीत और अंक-गीत में क्या अंतर है?

प्रश्न 5: बरगीतों की भाषा क्या है?

असम की लोकसांस्कृतिक परम्परा में 'देह-विचार' नामक एक अन्य प्रकार के लोकगीत भी प्रचलित रहे हैं। इन गीतों की विषयवस्तु का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि इनके भावों का बरगीतों के साथ एक प्रकार का साम्य विद्यमान है। विशेषत: जिन गीतों में वैराग्य और संसार की नश्वरता की भावना व्यक्त होती है उनमें विरक्ति-प्रधान बरगीतों की ध्वनि स्पष्ट रूप से सुनाई देती है। इन दोनों प्रकार के गीतों में मानव जीवन की क्षणभंगुरता तथा शरीर की अनित्यता का अत्यन्त मार्मिक चित्रण मिलता है। यह धारणा कि मनुष्य का शरीर स्थायी नहीं है और यह निश्चित नहीं कि वह कब नष्ट हो जाएगा-दोनों ही परम्पराओं में समान रूप से व्यक्त हुई है। विभिन्न उपमाओं और रूपकों के माध्यम से इन गीतों में जीवन की असारता और क्षणभंगुरता का अत्यन्त प्रभावशाली निरूपण किया गया है। जन्म के साथ ही मृत्यु का अवश्यंभावी होना एक शाश्वत सत्य है, किन्तु मनुष्य इस सत्य की उपेक्षा करके तुच्छ भौतिक सुखों में ही अपना समय व्यतीत करता रहता है। माया, मोह और सांसारिक वासनाएँ उसे इस प्रकार आच्छादित कर लेती हैं कि वह जीवन के वास्तविक उद्देश्य को समझ ही

नहीं पाता। यही विचारधारा बरगीतों और देह-विचार गीतों-दोनों में समान रूप से परिलक्षित होती है।

5 महत्वपूर्ण बिंदु

बरगीत केवल भक्तिपरक गीत ही नहीं, बल्कि एक सजीव सांस्कृतिक परंपरा के रूप में आज भी असम के धार्मिक जीवन में सक्रिय हैं। इनका गायन विशेष रूप से नामघर और सत्रों में निर्धारित समय और नियमों के अनुसार किया जाता है, जिससे उनकी शास्त्रीयता और पवित्रता बनी रहती है। बरगीतों की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इनके प्रस्तुतीकरण में शुद्ध उच्चारण, स्वर-साधना और राग की मर्यादा का विशेष ध्यान रखा जाता है।

इसके अतिरिक्त, बरगीतों का संरक्षण मुख्यत: मौखिक परंपरा के माध्यम से हुआ है, जिससे गुरु-शिष्य संबंध की महत्ता स्पष्ट होती है। समय के साथ इन गीतों के लिपिबद्ध रूप भी तैयार किए गए, जिससे इनके अध्ययन और शोध को बल मिला। आधुनिक समय में भी बरगीतों का प्रयोग सांस्कृतिक कार्यक्रमों, शैक्षणिक अध्ययन तथा शोध कार्यों में किया जा रहा है। इस प्रकार, बरगीत अतीत की धरोहर होने के साथ-साथ वर्तमान में भी जीवंत और प्रासंगिक बने हुए हैं।

माधवदेव के कुछ गीतों तथा शंकरदेव के अधिकांश गीतों में जो वैराग्यपरक उपदेश मिलता है, वह देह-विचार गीतों की भावना से अत्यन्त निकट प्रतीत होता है। इस तथ्य से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय के समाज में इन दोनों प्रकार की परम्पराएँ समानांतर रूप से विद्यमान थीं और एक-दूसरे को किसी न किसी रूप में प्रभावित भी कर रही थीं। इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेखनीय है कि माधवदेव के गीतों की अत्यधिक लोकप्रियता के कारण अनेक लोकगीतों में उनकी 'भणिता' भी जोड़ी जाने लगी। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि वैष्णव भक्ति-गीतों का प्रभाव लोकसांस्कृतिक परम्पराओं तक भी पहुँच चुका था।

बरगीतों की एकशरणवादी तथा भक्ति-प्रधान प्रकृति की तुलना यदि शतिका के जिकिर गीतों के साथ की जाए तो यह अध्ययन भी अत्यन्त रोचक और महत्वपूर्ण सिद्ध होता है। जिकिर गीत इस्लाम धर्म से सम्बद्ध भक्तिपरक गीत हैं जिनमें ईश्वर के प्रति प्रेम, समर्पण और आध्यात्मिक अनुभूति की अत्यन्त मधुर अभिव्यक्ति मिलती है। इन गीतों की संरचना और भाव-संवेदना का सूक्ष्म अध्ययन करने पर ऐसा प्रतीत होता है मानो वैष्णव भक्तों और मुस्लिम भक्तों की आध्यात्मिक अनुभूतियाँ एक ही भावभूमि पर आकर एकत्रित हो गई हों। जिकिर गीतों में 'अल्ला' और 'रसूल' जैसे इस्लामी शब्दों का प्रयोग अवश्य मिलता है किन्तु उनकी रचना-शैली और भावाभिव्यक्ति में असमिया वैष्णव गीत-परम्परा की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। विषयवस्तु की दृष्टि से भी जिकिर गीतों में बरगीतों की ध्वनि सुनाई देती है।

इन गीतों में भक्ति का महत्त्व, सर्वशक्तिमान ईश्वर के चरणों में शरण ग्रहण करने की आवश्यकता, मानव शरीर की असारता तथा जीवन की अनित्यता जैसे विषय अत्यन्त प्रमुख रूप से व्यक्त हुए हैं। यह तथ्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि विष्णु के भक्त नववैष्णव और अल्लाह के उपासक मुसलमान-इन दोनों भिन्न धार्मिक समुदायों के मध्य जो मानसिक और आध्यात्मिक निकटता विद्यमान थी उसका सशक्त प्रमाण जिकिर गीतों में मिलता है। उस समय के सामाजिक जीवन में शंकरदेव द्वारा प्रचारित अनेक शब्द—जैसे 'नाम', 'देउ', 'गुरु', 'मुक्ति', 'ब्रह्माण्ड' और 'भवनदी'-जिकिर गीतों में भी व्यापक रूप से प्रयुक्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त 'वन के समान संसार', 'संसार रूपी बाजार' तथा 'भगवान से विमुख व्यक्ति को यमदूतों द्वारा यातना मिलना' जैसी अनेक कल्पनाएँ भी दोनों प्रकार के गीतों में समान रूप से व्यक्त हुई हैं। अनित्य संसार की भावना बरगीत में इस प्रकार अभिव्यक्त हुई है-

'अथिर धन जन
जीवन यौवन

अथिर एहु संसार।
पुत्र परिवार
सबहिं असार
करिबो काहेक सार।' इसी भाव को जिकिर गीत में भी अत्यन्त मार्मिक रूप से व्यक्त किया गया है-

'दुनिया एकदिनर दुनिया दुदिनर
दुनिया फूलनि बारी,
कतक छलेबले कर तइ
दुनियाइ राखिब खेयाली मारी।'

जिकिर गीतों में गुरु-भक्ति की चरम अभिव्यक्ति भी अत्यन्त स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं-

'एकत धरिबा, पिच्छलि नपरा, यदि सच्चा गुरु होय।
सच्चा गुरु बुलि तोमाते भजिलो, चिनाइ दिया त्रिपनीर घाट।'

यद्यपि विषयवस्तु की दृष्टि से जिकिर गीतों और बरगीतों के मध्य पर्याप्त समानता दिखाई देती है तथापि उनकी गायन-पद्धति में कुछ भिन्नताएँ भी विद्यमान हैं। बरगीत सामान्यत: एक गायक द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं जबकि जिकिर गीत सामूहिक रूप से अनेक व्यक्तियों द्वारा एक साथ गाए जाते हैं। इस प्रकार जिकिर गीतों की प्रस्तुति में सामूहिकता का तत्व अधिक प्रमुख होता है। फिर भी यह स्वीकार करना होगा कि असम की धार्मिक गीत-परम्परा में जिकिर गीतों का स्वरूप अनेक दृष्टियों से नवीन और विशिष्ट है।

समग्रत: कहा जा सकता है कि बरगीतों का प्रभाव असम की अन्य धार्मिक और लोकगीत परम्पराओं पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अवश्य पड़ा है। जिकिर गीतों के अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट रूप से प्रमाणित होता है कि असम की सांस्कृतिक चेतना में विभिन्न धार्मिक समुदायों के मध्य एक गहरी आध्यात्मिक समानता और सहअस्तित्व की भावना विद्यमान थी। इसी कारण बरगीतों की परम्परा केवल वैष्णव साहित्य तक सीमित न रहकर व्यापक असमिया सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न अंग बन गई। बरगीत और प्राचीन असमिया गीतों का तुलनात्मक अध्ययन यह सिद्ध करता है कि असम की सांगीतिक परम्परा बहुआयामी, समन्वयवादी तथा अत्यन्त समृद्ध रही है जिसमें विभिन्न धार्मिक और सांस्कृतिक धाराएँ एक-दूसरे को प्रभावित करती हुई विकसित होती रही हैं ।

8.5 बरगीत का उद्देश्य, विषयवस्तु और दार्शनिक आधार

(क) बरगीत का उद्देश्य और विषयवस्तु:

असम में वैष्णव भक्ति आंदोलन के प्रसार और सुदृढ़ीकरण के लिए महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव और उनके प्रमुख शिष्य श्रीश्री माधवदेव ने साहित्य, नाटक और काव्य के साथ-साथ एक विशिष्ट प्रकार के भक्तिपरक गीतों की भी रचना की। इन गीतों की रचना केवल भावात्मक अभिव्यक्ति के लिए नहीं, बल्कि समाज में भक्ति, नैतिकता और आध्यात्मिक चेतना के प्रसार के उद्देश्य से की गई थी। इन गीतों की भावधारा, भाषा-शैली, संगीतात्मक संरचना तथा आध्यात्मिक गहनता उन्हें सामान्य गीतों से भिन्न और विशिष्ट बनाती है। इनकी रचना के माध्यम से गूढ़ दार्शनिक विचारों तथा आध्यात्मिक अनुभूतियों को सहज रूप में व्यक्त किया गया है।

इन गीतों की श्रेष्ठता को ध्यान में रखते हुए बाद के काल में वैष्णव भक्तों और चरितकारों ने इन्हें 'बरगीत' की संज्ञा प्रदान की। यह माना जाता है कि स्वयं शंकरदेव और माधवदेव ने इन गीतों को यह नाम नहीं दिया था बल्कि समय के साथ इनके उच्च कलात्मक और आध्यात्मिक स्वरूप के कारण यह नाम प्रचलित हुआ।

'कथागुरुचरित' में उल्लेख मिलता है कि शंकरदेव की प्रेरणा और आज्ञा से ही माधवदेव ने बरगीतों की रचना प्रारम्भ की थी।

बरगीतों की विषयवस्तु का मूल आधार वैष्णव धर्म है। इनमें वैष्णव उपासना के प्रमुख देवता भगवान विष्णु के पूर्णावतार श्रीकृष्ण तथा अवतारी पुरुष रामचन्द्र की लीलाओं और महिमा का अत्यंत भावपूर्ण वर्णन मिलता है। शंकरदेव और माधवदेव ने अपने गीतों में राम और कृष्ण को एक ही परम सत्ता के रूप में प्रस्तुत किया है-

'कृष्ण किंकर
शंकर कह
बिछुरि विषय कामा।
राम चरणे
शरण लेहु जप गोविंदर नामा॥
शंकरदेव-
'जय जय राम राघव रघुकुल पंकज दिनकर दिन मुरारि।
जो पद कमल
सुरासुर सेवक
सकल भुवन अधिकारी॥

इन गीतों में भगवान की लीलाओं को ही मुख्य विषय बनाकर गुरुद्वय ने जनसाधारण के बीच भक्ति का व्यापक प्रसार किया। इन लीलाओं में भक्तिरस की प्रधानता है और श्रृंगार रस का पूर्ण अभाव दिखाई देता है। 'कथागुरुचरित' में उल्लेख मिलता है कि बरगीतों में मुख्यत: छह प्रकार के रसों का प्रयोग हुआ है, जिनके आधार पर इन्हें छह भागों में विभाजित किया गया है-लीला, विरह, विरक्ति, परमार्थ, चौर और चातुरी।

लीला-विषयक गीतों में बालकृष्ण की विविध क्रीड़ाओं का अत्यंत मनोहर चित्रण मिलता है। इनमें बालकृष्ण को निद्रा से जगाने, वृन्दावन जाने, गौचारण करने, गोपबालकों के साथ खेल-कूद करने और नृत्य करने जैसी लीलाओं का अत्यंत सजीव वर्णन किया गया है। विरह-विषयक गीतों में कृष्ण के वियोग में नन्द, यशोदा और गोप-गोपियों के हृदय में उत्पन्न पीड़ा और विषाद का मार्मिक चित्रण मिलता है। विरक्ति-विषयक गीतों में संसार की मायामयता और क्षणभंगुरता का उल्लेख करते हुए सांसारिक सुखों के प्रति अनासक्ति का भाव व्यक्त किया गया है।

परमार्थ-विषयक गीतों में यह प्रतिपादित किया गया है कि ईश्वर ही एकमात्र शाश्वत सत्ता है और उसकी भक्ति तथा अनुभूति ही परम ज्ञान का मार्ग है। चौर और चातुरी विषयक गीतों में बालकृष्ण की बाल-लीलाओं का वर्णन मिलता है, जहाँ वे ग्वालिनों के घरों में जाकर माखन चुराते हैं और अपनी चतुराई से पकड़े जाने से बच निकलते हैं। इन लीलाओं के माध्यम से भी अंतत: कृष्ण की दिव्यता और महिमा ही प्रकट होती है।

शंकरदेव के अधिकांश बरगीत प्रार्थनामूलक हैं। इन गीतों में वे स्वयं को पापी और दोषपूर्ण मानते हुए भगवान की शरण ग्रहण करते हैं और इस मायामय संसार से मुक्ति की कामना करते हैं। मनुष्य अज्ञान के कारण परम सत्य को नहीं पहचान पाता और अनेक प्रकार के दुष्कर्मों में लिप्त हो जाता है। संसार के प्रत्येक अंश में परमपुरुष की उपस्थिति है, किन्तु इस सत्य को न जान पाने की भूल को शंकरदेव स्वयं स्वीकार करते हुए भगवान की शरण में जाते हैं। इसका अत्यंत सुंदर उदाहरण उनका प्रसिद्ध बरगीत ''नारायण काहे भकति करो तेरा'' है। शंकरदेव के गीतों में संसार की अनित्यता की भावना अत्यंत स्पष्ट रूप में व्यक्त हुई है—

'पावे परि हरि प्राण राखबि मोर।
करोहूँ कातरि

विषय विषधर
विषे जर जर
जीवन नारहे मोर॥
अथिर धन जन जीवन यौवन अथिर एहु संसार।
पुत्र परिवार
सबहि असार
करबो काहेरि सार।'

इसी प्रकार माधवदेव ने भी संसार की क्षणभंगुरता को स्मरण कराते हुए हरिभक्ति को ही जीवन का सर्वोच्च मार्ग बताया है-

'बुढ़ा भाइ हरिर गुण गाइ नाचा
कोन दिना ढलि शरीर परय
आर कि बाट चाहि आछा।'

इन गीतों के माध्यम से वेदान्त के गूढ़ तत्वों को भी सरल रूप में प्रस्तुत किया गया है। ब्रह्म का स्वरूप, संसार की अनित्यता तथा जीव और परमात्मा के संबंध जैसे जटिल दार्शनिक विषयों को बरगीतों में अत्यंत सहज और भावपूर्ण ढंग से व्यक्त किया गया है।

(ख) चर्यापद का उद्देश्य और विषयवस्तु

चर्यापद बौद्ध धर्म की सहजयान परम्परा से संबंधित सिद्धाचार्यों द्वारा रचित धार्मिक गीतों का एक महत्वपूर्ण संग्रह है। इन गीतों का स्वरूप अत्यंत रहस्यमय और प्रतीकात्मक है। सिद्धाचार्यों ने अपने गूढ़ आध्यात्मिक अनुभवों और साधना-पद्धति को प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त करने के बजाय प्रतीकों और रूपकों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इसी कारण चर्यापद की भाषा सामान्य पाठकों के लिए अत्यंत दुरूह और जटिल प्रतीत होती है।

विद्वान हरप्रसाद शास्त्री ने इस भाषा को ''संध्या-भाषा'' की संज्ञा दी है। संध्या-भाषा में प्रयुक्त शब्दों का सामान्य अर्थ नहीं होता, बल्कि वे किसी विशेष आध्यात्मिक या दार्शनिक तत्त्व की ओर संकेत करते हैं। उदाहरण के रूप में-

अलि-फलि : श्वास-प्रश्वास

चन्द्र-सूर्य, रवि-शशि : इड़ा-पिंगला नाड़ियाँ

गंगा-यमुना : ग्राही-ग्राहक

नाद-बिंदु : शून्य और करुणा

नौका : महासुखकाय

मूषा : चित्तपवन

कमल-कुलिश : ज्ञान और शून्यता

हरिण-हरिणी : चित्त और नैरात्म्य

डोम्बी : शुक्रनाड़ी

इन प्रतीकों के माध्यम से सिद्धाचार्यों ने धर्म और साधना के गूढ़ तत्वों की व्याख्या की है। इन गीतों का उद्देश्य यह था कि गुरु के मार्गदर्शन में शिष्य इन रहस्यमय संकेतों को समझ सके और साधना के वास्तविक अर्थ को आत्मसात कर सके।

चर्यापद का मुख्य लक्ष्य 'महासुख' अर्थात निर्वाण की प्राप्ति है। सिद्धाचार्यों के अनुसार गुरु के उपदेश और

मार्गदर्शन के बिना इस परम अवस्था की प्राप्ति संभव नहीं है। लुइपाद की प्रथम चर्या में कहा गया है-

दिढ़ करिअ महासुह परिमाण।
लुइ भनइ गुरु पुछिअ जान॥

इसी प्रकार कम्बलाम्बरपाद की चर्या में कहा गया है—

खुन्टि उपाड़ी मेलि लि कच्छी।
बाहतु कामलि सद्गुरु पुछ्छी॥

काह्नुपाद ने भी आध्यात्मिक अनुभूति के महत्व को स्वीकार करते हुए कहा है—

जे तइ बोली तेत ब टाल।
गुरु बोब से सीस काल॥

सिद्धाचार्यों के अनुसार इस संसार के दु:खों से मुक्ति ही निर्वाण है और वही 'महासुख' की अवस्था है—

दिढ़ करिअ महासुह परिमाण (चर्या 1- लुइपाद)
बाटत मिलिल महासुह सांगा (चर्या 8-कम्बलाम्बरपाद)
चलिल काह्नु महासुह सांगे (चर्या 13-काह्नुपाद)

चर्यापदों में आध्यात्मिक विचारों के साथ-साथ उस समय के समाज और जीवन का भी रूपकात्मक चित्रण मिलता है। इनमें बुनकरों का कार्य, मछुआरों का जीवन, नाविकों की गतिविधियाँ, विवाह-पद्धति, शबर और डोम जातियों का जीवन तथा अन्य सामाजिक गतिविधियों का भी उल्लेख मिलता है। इस प्रकार चर्यापद उस समय के सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन की महत्वपूर्ण झलक प्रस्तुत करते हैं।

(ग) बरगीत का दर्शन : ब्रह्म, माया और अविद्या

शंकरदेव और माधवदेव की समस्त रचनाओं में भागवत पुराण का गहरा प्रभाव देखा जा सकता है। उनके अनुसार वेदान्त का सार भागवत में निहित है। शंकरदेव ने 'भक्ति रत्नाकर' में भागवत पुराण के इस श्लोक का उल्लेख किया है-

सर्ववेदान्तसारं हि श्रीभागवतमिष्यते।
तद्रसामृततृप्तस्य नान्यत्र स्याद्रतिः कचित्॥

माधवदेव ने 'नामघोषा' में इसी विचार को इस प्रकार व्यक्त किया-

समस्त वेदान्त सार महाभागवत शास्त्र।
इयार अमृतरस पाइ
करिले यिजने तार
परम संतोषे पान
अन्यत्र रसत रति नाइ॥

बरगीतों का दार्शनिक आधार वेदान्त दर्शन पर आधारित है। वेदान्त का मूल आधार उपनिषदों का ब्रह्मवाद और बादरायण द्वारा रचित ब्रह्मसूत्र है। अद्वैत, विशिष्टाद्वैत और द्वैत जैसे विभिन्न मतों के माध्यम से वेदान्त की व्याख्या की गई है। शंकरदेव और माधवदेव के विचारों में अद्वैतवाद का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

शंकराचार्य के अनुसार ब्रह्म ही परम सत्य है और संसार माया का परिणाम है। जीव और ब्रह्म में वास्तविक भेद नहीं है। यही विचार बरगीतों में भी व्यक्त हुआ है-

'यत जीव जंगम कीट पतंगम

अग नग जग तेरी काया।
सबकहु मारि पूरत ओहि उदर
नाहि करत भूत दाया॥
अथिर धन जन जीवन यौवन
अथिर एहु संसार।
पुत्र परिवार
सबहि असार
करबो काहेरि सार॥

इसी प्रकार माधवदेव ने भी संसार की अनित्यता का वर्णन किया है—

धन जन जीवन यौवन जाया
काया ऐसव धान्धा।
जैसन बिजुरी
उजुरि मिलावत
ताहे नाहि आंधा।'

इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि बरगीतों में भक्ति, दर्शन और आध्यात्मिक चिंतन का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है।

(घ) बरगीत में भक्ति और गुरु की महिमा

शंकरदेव और माधवदेव दोनों ने भगवान की प्राप्ति के सभी साधन मार्गों में भक्ति को सर्वोच्च स्थान दिया। उनकी रचनाओं में भक्ति की महिमा अत्यंत प्रभावशाली रूप में व्यक्त हुई है। यहाँ तक कि गीतों की कलात्मकता के भीतर भी भक्ति की धारा निरंतर प्रवाहित होती रहती है।

उनकी दृष्टि में मुक्ति से भी अधिक श्रेष्ठ भक्ति है—

यद्यपि मुकुति पद सुख रूप होय।
तथापि भकति श्रेष्ठ कहिलो निश्चय॥
सेवार आनंद सुखे मुकुतित नाइ।
मुकुतिर सुख सुखे भकतिते पाइ॥

बरगीतों में हरिभक्ति को ही जीवन का परम मार्ग बताया गया है। हृदय को हरि के चरणों में समर्पित कर एकाग्र भाव से भक्ति करने का संदेश दिया गया है-

'हरि पद कमने बिछुरि बहु एमन पामारा।
हरि बिने झुण्टा ओहि सयल संसारा॥

इसी प्रकार गुरु-महिमा का भी विशेष महत्व है। माधवदेव ने गुरु को ईश्वर के समान स्थान देते हुए कहा-

'गुरुक ईश्वर आत्मा बुलि मानि मने।
करिब भकति एक कृष्णर चरणे।'

इससे स्पष्ट होता है कि बरगीतों में भक्ति का अर्थ केवल भगवान विष्णु की उपासना ही नहीं, बल्कि गुरु के प्रति श्रद्धा और समर्पण भी है। गुरु-द्वय की इन रचनाओं में भक्ति, दर्शन और आध्यात्मिक अनुभव का ऐसा समन्वय दिखाई देता है जो भारतीय भक्ति साहित्य की एक विशिष्ट और महत्वपूर्ण धरोहर के रूप में सदैव स्मरणीय रहेगा।

8.6 सारांश

बरगीत असमिया वैष्णव भक्ति परम्परा की एक विशिष्ट और समृद्ध सांगीतिक-काव्यात्मक विधा है, जिसकी रचना मुख्यत: शंकरदेव और माधवदेव ने की। 'बरगीत' का शाब्दिक अर्थ 'श्रेष्ठ गीत' है, जो अपने उच्च भाव, भाषा और संगीतात्मक गरिमा के कारण अन्य गीतों से भिन्न माने जाते हैं। ये गीत निश्चित रागों पर आधारित भक्तिपरक रचनाएँ हैं, जिनमें ईश्वर, विशेषकर कृष्ण के प्रति प्रेम, समर्पण और भक्ति की अभिव्यक्ति होती है।

बरगीतों का स्वरूप काव्य और संगीत के सुंदर समन्वय से निर्मित है। इनकी भाषा ब्रजावली है, जो ब्रजभाषा और असमिया के मिश्रण से बनी एक साहित्यिक भाषा है। इन गीतों का प्रमुख उद्देश्य नव-वैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार, सामाजिक समरसता की स्थापना तथा भक्ति के सरल मार्ग को जनसामान्य तक पहुँचाना है। बरगीतों में जीवन की नश्वरता, ईश्वर की महिमा, भक्ति की महत्ता तथा आत्मा-परमात्मा के संबंध जैसे गूढ़ दार्शनिक तत्व भी व्यक्त होते हैं।

इनकी प्रमुख विशेषताओं में सरलता, भावगहनता, रागबद्धता और आध्यात्मिकता शामिल हैं। उदाहरणस्वरूप विभिन्न लीला, विरह और विरक्ति से संबंधित गीतों में भक्ति और मानवीय संवेदनाओं का सुंदर चित्रण मिलता है। इस प्रकार बरगीत न केवल धार्मिक अभिव्यक्ति हैं, बल्कि असम की सांस्कृतिक, साहित्यिक और संगीत परंपरा के अमूल्य धरोहर भी हैं।

K8.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर: बरगीत का अर्थ 'श्रेष्ठ या उत्तम गीत' है, जो भक्तिपरक और रागबद्ध होते हैं।

प्रश्न 2 का उत्तर: बरगीतों की रचना महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव और उनके शिष्य श्रीश्री माधवदेव ने की थी।

प्रश्न 3 का उत्तर: बरगीतों का मुख्य उद्देश्य नव-वैष्णव भक्ति का प्रचार-प्रसार और भक्ति भावना का विकास करना था।

प्रश्न 4 का उत्तर: बरगीत स्वतंत्र भक्तिपरक गीत होते हैं, जबकि अंक-गीत नाटकों के लिए रचे गए और नाटकीय परिस्थितियों पर आधारित होते हैं।

प्रश्न 5 का उत्तर: बरगीतों की भाषा 'ब्रजावली' है, जो ब्रजभाषा और असमिया का मिश्रित रूप है।

58.8 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- नेउग, महेश्वर (1987). श्रीश्री शंकरदेव. गुवाहाटी: चंद्र प्रकाशन।
- चौधरी, भूपेन्द्र राय (2002). श्रीमंत शंकरदेव व्यक्तित्व और कृतित्व, गुवाहाटी।
- बरा, शिवनाथ (2008). श्रीमंत शंकरदेव कृति आरू कृतित्व, गुवाहाटी।
- चौधरी, रामानंद (1956). श्रीश्री शंकरी धर्म और भक्तिसार, गुवाहाटी: ज्योति प्रकाशन।
- महंत, बापचंद (2008). बरगीत, गुवाहाटी: स्टूडेंट्स स्टोर।
- शैकिया, नुरुल इस्लाम (2013). महान असमिया व्यक्ति चिरिज, गुवाहाटी।
- शर्मा, सत्येन्द्रनाथ (1991). असमिया साहित्यर समीक्षात्मक इतिवृत्त, गुवाहाटी।
- दास, स्वप्नाली (2025) इलाराम दास जीवन और कृति, शब्द भारती प्रकाशन।
- दस, श्री रामप्रसाद: महापुरुष श्रीश्री शंकरदेव- श्रीश्री माधवदेव, गुवाहाटी।
- हजारिका, प्रदीप, बरा, इंदिरा शैकिया: महापुरुष शंकरदेव-माधवदेवर अंकिया नाट आरू झुमुरा।

M8.9 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. बरगीतों में किन-किन प्रमुख रागों का प्रयोग किया जाता है?
2. बरगीतों का नव-वैष्णव भक्ति आंदोलन से क्या संबंध है?
3. 'ब्रजावली' भाषा का स्वरूप कैसा है और यह कैसे बनी है?
4. बरगीतों में कृष्ण-लीला का चित्रण किस प्रकार किया गया है?
5. बरगीतों के माध्यम से समाज में कौन-कौन से संदेश प्रसारित किए गए हैं?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. बरगीत का अर्थ, परिभाषा और स्वरूप स्पष्ट करते हुए इसके साहित्यिक एवं सांगीतिक महत्व पर विस्तार से प्रकाश डालिए।
2. बरगीतों के उद्देश्य, विषयवस्तु तथा उनके दार्शनिक आधार का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
3. बरगीत और असमिया प्राचीन गीत-परंपराओं (जैसे ओजापाली, देह-विचार, जिकिर आदि) के बीच संबंध और अंतर का विश्लेषण कीजिए।
4. बरगीतों में भक्ति, गुरु-महिमा तथा जीवन की नश्वरता के विचारों का विवेचन उदाहरण सहित कीजिए।
5. बरगीतों में प्रयुक्त राग-परंपरा और उनकी सांगीतिक विशेषताओं का विस्तृत वर्णन कीजिए।

****

इकाई-9 नारायण काहे भकति (शंकरदेव)

इकाई की रूपरेखा

9.1 उद्देश्य
9.2 प्रस्तावना
9.3 असम में नव-वैष्णव भक्ति आन्दोलन: ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और स्वरूप
9.4 महापुरुष शंकरदेव: जीवन और व्यक्तित्व
9.5 'नारायण काहे भकति'- मूल पाठ और शब्दार्थ
9.6 'नारायण काहे भकति' सारांश
9.7 सारांश
9.8 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
9.9 अधिक जानने के लिए पढ़ें
9.10 अभ्यास प्रश्न

9.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

- असम में विकसित नव-वैष्णव भक्ति आन्दोलन की पृष्ठभूमि, स्वरूप और उसके सामाजिक-सांस्कृतिक महत्व के बारे में ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- असमिया भक्ति-साहित्य के प्रमुख कवियों तथा उनके योगदान के संबंध में जानकारी प्राप्त करेंगे और उनसे परिचित होंगे।
- नव-वैष्णव भक्ति की मुख्य विशेषताओं, उसके आदर्शों तथा उसकी मूल भावनाओं को समझ सकेंगे।
- महापुरुष शंकरदेव के जीवन, व्यक्तित्व, उनकी प्रमुख रचनाओं तथा असमिया समाज, संस्कृति और साहित्य के विकास में उनके योगदान के बारे में जान सकेंगे।
- 'नारायण काहे भकति करू' बरगीत के मूल पाठ और उसके शब्दार्थ को समझकर उसके भाव एवं आध्यात्मिक संदेश से परिचित हो सकेंगे।
- बरगीत के सार और उसमें निहित भक्ति-भाव, मानवता, करुणा तथा ईश्वर-समर्पण के आदर्शों को समझकर उनके महत्व का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

9.2 प्रस्तावना

भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में भक्ति आन्दोलन का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा है। मध्यकालीन भारत में जब समाज अनेक प्रकार की सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जटिलताओं से घिरा हुआ था तब भक्ति आन्दोलन ने लोगों को एक सरल और सहज आध्यात्मिक मार्ग प्रदान किया। इसी व्यापक भक्ति धारा का प्रभाव असम में भी देखा गया, जहाँ महापुरुष शंकरदेव के नेतृत्व में नव-वैष्णव भक्ति आन्दोलन का उदय हुआ। इस आन्दोलन ने असमिया समाज को धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से एक नई दिशा प्रदान की।

असम में विकसित नव-वैष्णव भक्ति परम्परा की प्रमुख विशेषता यह रही कि इसमें भगवान विष्णु अथवा कृष्ण के प्रति एकनिष्ठ भक्ति, नाम-स्मरण, कीर्तन तथा सत्संग को अत्यन्त महत्व दिया गया। इस भक्ति परम्परा ने जाति-भेद, बाह्य आडम्बर और जटिल कर्मकाण्डों का विरोध करते हुए सरल भक्ति मार्ग को अपनाने

का संदेश दिया। इस आन्दोलन के प्रभाव से असमिया साहित्य में भी एक नई चेतना का विकास हुआ और अनेक कवियों तथा संतों ने भक्ति भावना से प्रेरित साहित्य की रचना की।

महापुरुष शंकरदेव इस नव-वैष्णव भक्ति आन्दोलन के प्रमुख प्रवर्तक थे। वे केवल एक महान धर्मगुरु ही नहीं, बल्कि असमिया साहित्य और संस्कृति के महान निर्माता भी थे। उन्होंने भक्ति धर्म के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से अनेक काव्य, गीत, नाटक और धार्मिक ग्रंथों की रचना की। उनके द्वारा रचित बरगीत असमिया भक्ति-साहित्य की महत्वपूर्ण धरोहर माने जाते हैं, जिनमें गहन आध्यात्मिक भाव और भक्तिपूर्ण संवेदना व्यक्त हुई है। प्रस्तुत इकाई में असम में नव-वैष्णव भक्ति की पृष्ठभूमि, उसके प्रमुख कवियों तथा भक्ति की मुख्य विशेषताओं का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। साथ ही महापुरुष शंकरदेव के जीवन, उनकी रचनाओं और उनके साहित्यिक-सांस्कृतिक योगदान पर भी प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त उनकी प्रसिद्ध रचना 'नारायण काहे भकति करू' बरगीत का मूल पाठ, उसका शब्दार्थ तथा भावार्थ सहित सार प्रस्तुत किया गया है जिससे पाठक इस बरगीत के आध्यात्मिक संदेश और भावगत गहराई को समझ सकें।

9.3 असम में नव-वैष्णव भक्ति आन्दोलन: ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और स्वरूप:

ईस्वी की पंद्रहवीं शताब्दी के आसपास का कालखंड केवल असम के इतिहास में ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। इसी युग में पूरे भारत में वैष्णव भक्ति की एक नई धारा विकसित हुई, जिसे सामान्यत: नव-वैष्णव भक्ति आन्दोलन के रूप में जाना जाता है। वास्तव में भागवत धर्म के व्यापक प्रसार और उसके आध्यात्मिक प्रभाव के कारण भक्ति आन्दोलन का उदय हुआ। इस आन्दोलन ने भारतीय समाज में एक प्रकार के सांस्कृतिक जागरण को जन्म दिया। भक्ति आन्दोलन की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह रही कि इसकी प्रवृत्ति लोकजीवन की ओर उन्मुख थी। परिणाम स्वरूप विभिन्न प्रादेशिक भाषाएँ धार्मिक अनुभूति और भक्ति-भाव की अभिव्यक्ति का माध्यम बनने लगीं। लोकभाषाओं के प्रयोग से धार्मिक साहित्य की रचना में तीव्र वृद्धि हुई और भक्ति से सम्बद्ध अनेक काव्य, गीत तथा धार्मिक ग्रंथ सामने आए। यह प्रवृत्ति केवल वैष्णव परंपरा तक सीमित नहीं रही, बल्कि शैव, शाक्त, बौद्ध तथा जैन जैसे अन्य धार्मिक मतों में भी इसका प्रभाव देखा गया।

भारतीय भक्ति आन्दोलन को आगे बढ़ाने में दक्षिण भारत के अनेक संतों और आचार्यों की उल्लेखनीय भूमिका रही। आलवार संतों के साथ-साथ नाथ मुनि, रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य तथा वल्लभाचार्य जैसे वैष्णव धर्माचार्यों ने भक्ति के सिद्धांतों को जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास किया। उत्तर भारत में इस आन्दोलन को संगठित रूप देने का श्रेय स्वामी रामानन्द को दिया जाता है। निर्गुण भक्ति के महान संत कबीर और स्वामी रामानन्द के सम्बन्ध में एक प्रसिद्ध उक्ति भी प्रचलित है-

'भक्ति द्राविड़ उपजी, लाये रामानन्द।
परगट किया कबीर ने, सप्तदीपनवखण्ड।।''

सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में वल्लभाचार्य ने 'शुद्धाद्वैत' दर्शन तथा पुष्टिमार्ग का प्रचार मुख्यत: मथुरा-वृन्दावन क्षेत्र में किया और बाद में इसे गुजरात तथा अन्य प्रदेशों तक फैलाया। लगभग इसी समय असम में श्रीमंत शंकरदेव तथा बंगाल में श्री चैतन्य ने भक्ति की नई चेतना का प्रसार प्रारम्भ किया। वैष्णव भक्ति आन्दोलन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता समन्वय और संगठन की भावना थी। यह आन्दोलन पूरे देश में सक्रिय रहा किन्तु इसका प्रमुख केन्द्र मध्य भारत रहा। पूर्वी भारत में कामरूप और गौड़ इस आन्दोलन के प्रमुख केन्द्रों के रूप में उभरे। कामरूप और गौड़ का क्षेत्र वर्तमान कोचबिहार तथा असम से सम्बद्ध माना जाता है। शंकरदेव की भक्ति-धारा पर ब्रज क्षेत्र की कृष्ण-भक्ति का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। उन्होंने उसी परम्परा को आधार बनाकर असम की सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल एक विशिष्ट वैष्णव परम्परा का विकास किया।

शंकरदेव ने जिस सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण में वैष्णव धर्म का प्रचार किया, उसकी पृष्ठभूमि को समझना आवश्यक है। उस समय की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके प्रयासों की आवश्यकता क्यों महसूस हुई। राजनीतिक दृष्टि से उस समय असम में कोई सशक्त और एकीकृत केन्द्रीय शासन व्यवस्था नहीं थी। सम्पूर्ण क्षेत्र अनेक छोटे-छोटे राज्यों और स्थानीय शासकों में विभाजित था। पंद्रहवीं शताब्दी के आरम्भिक काल में दो शक्तिशाली राज्यों का उदय हुआ था। गुवाहाटी के पूर्व में आहोम राज्य का प्रभाव था जबकि गुवाहाटी के पश्चिम की ओर उत्तर बंगाल के कुछ भागों तक कोच राज्य का प्रभुत्व देखा जाता था। यद्यपि इन दोनों राज्यों के बीच कभी-कभी संघर्ष भी होते थे किन्तु वे स्थायी नहीं रहते थे। इस कारण दोनों क्षेत्रों के लोगों के बीच व्यापार, आवागमन और सांस्कृतिक सम्पर्क बना रहता था।

उस समय तक आहोम शासकों ने हिन्दू धर्म को औपचारिक रूप से स्वीकार नहीं किया था, जबकि कोच राजाओं ने हिन्दू धर्म को अपनाकर उसके संरक्षण का दायित्व भी निभाया। आहोम शासन व्यवस्था अपेक्षाकृत कठोर मानी जाती थी। साधारण अपराधों के लिए भी कठोर दंड दिया जाता था। कहा जाता है कि शंकरदेव के एक वैष्णव अनुयायी दामाद को भी मृत्यु-दंड से नहीं बचाया गया। परिणामस्वरूप शंकरदेव को आहोम राज्य छोड़कर अपने परिवार और अनुयायियों के साथ कोच राज्य में निवास करना पड़ा। सामाजिक दृष्टि से असम उस समय अत्यन्त विविधतापूर्ण था। यहाँ आर्य और अनार्य दोनों प्रकार की जातियाँ और जनजातियाँ निवास करती थीं। अनेक कबीलाई समूहों के कारण समाज कई छोटे-छोटे समुदायों में विभाजित था। इन समूहों के बीच परस्पर मेल-मिलाप बहुत कम था और अलगाव की भावना अधिक दिखाई देती थी। उस समय दास-प्रथा भी प्रचलित थी और अधिकांश किसान, मजदूर तथा दास अत्यन्त दयनीय स्थिति में जीवन व्यतीत करते थे।

समाज में ब्राह्मण, कायस्थ और कलिता जैसे उच्चवर्गीय हिन्दू समुदायों के साथ-साथ बोडो, राभा, बराही, मराण, चुतिया, आहोम, मिरि और कोच जैसी अनेक जनजातियाँ भी रहती थीं किन्तु इन समुदायों के बीच सामाजिक संपर्क या पारस्परिक सहयोग का कोई प्रभावी सूत्र नहीं था। वैष्णव धर्म के प्रसार ने इन विभिन्न समुदायों को जोड़ने का प्रयास किया और सामाजिक समन्वय की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। धार्मिक जीवन भी सामाजिक जीवन की तरह अत्यन्त जटिल और विविधतापूर्ण था। समाज में नैतिकता और आध्यात्मिक आदर्शों की अपेक्षा अनेक प्रकार की कुप्रथाएँ और अंधविश्वास फैल चुके थे। लोगों के सामने कोई स्पष्ट धार्मिक मार्गदर्शन नहीं था, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अपनी सुविधा के अनुसार विभिन्न मतों को अपनाता था। तांत्रिक और वामाचारी परम्पराओं का प्रभाव बढ़ रहा था। धार्मिक अनुष्ठानों के नाम पर अनेक देवी-देवताओं की पूजा, कुमारी-पूजा, शबरोत्सव तथा देवदासियों के नृत्य जैसी प्रथाएँ प्रचलित थीं।

जनजातीय समुदायों की अपनी अलग-अलग पूजा पद्धतियाँ थीं। शैव और शाक्त धर्म में भी तांत्रिक प्रभाव दिखाई देने लगा था जिसके कारण धार्मिक शोषण की प्रवृत्ति बढ़ गई थी। इसके अतिरिक्त शैव, शाक्त, नाथ-पंथ, वैष्णव और बौद्ध जैसे अनेक सम्प्रदाय भी सक्रिय थे। इस प्रकार अनेक मतों और देवताओं की पूजा-प्रणालियों ने लोगों को अनेक धार्मिक बन्धनों में जकड़ रखा था। ऐसी परिस्थितियों को देखकर शंकरदेव ने अनुभव किया कि असम के बहुभाषी, बहुजातीय और जनजाति-प्रधान समाज में एक सरल और सर्वस्वीकार्य धार्मिक मार्ग की आवश्यकता है। उन्हें विश्वास था कि वैष्णव भक्ति-मार्ग ही इस आवश्यकता को पूरा कर सकता है। इसी उद्देश्य से उन्होंने लगभग बारह वर्षों तक भारत के विभिन्न तीर्थस्थलों की यात्रा की और उसके पश्चात् अपने जीवन का शेष भाग वैष्णव धर्म के प्रचार-प्रसार में समर्पित कर दिया। तीर्थयात्रा के दौरान उनकी भेंट कबीर, श्रीचैतन्य, हरिव्यास तथा गोस्वामी जैसे अनेक संतों से हुई। उनके 'कीर्तन-घोषा' में कबीर से भेंट का उल्लेख भी मिलता है।

भारत के विभिन्न क्षेत्रों का भ्रमण करने के बाद शंकरदेव ने अनुभव किया कि असम की परिस्थितियाँ विशिष्ट हैं। इसलिए उन्होंने वहाँ के सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण के अनुरूप भक्ति-धर्म का प्रचार

किया। जिस प्रकार बाद के समय में रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द की गुरु-शिष्य परम्परा प्रसिद्ध हुई, उसी प्रकार शंकरदेव और माधवदेव की गुरु-शिष्य परम्परा ने असम में वैष्णव धर्म के प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

भक्ति का स्वरूप

असम के नव-वैष्णव धर्म में भगवान विष्णु को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। उस समय समाज में अनेक प्रकार की उपासना पद्धतियाँ प्रचलित थीं। शंकरदेव ने उनमें समन्वय स्थापित करते हुए एक सरल और व्यावहारिक धार्मिक मार्ग प्रस्तुत किया। इस धर्म की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. इस परम्परा में कृष्ण-भक्ति को विशेष महत्व दिया गया है तथा कृष्ण की लीलाओं के गायन के माध्यम से भक्ति-भाव की अभिव्यक्ति की जाती है।
2. अनेक देवताओं की उपासना के स्थान पर एक ईश्वर की शरण ग्रहण करने का संदेश दिया गया।
3. ईश्वर-नाम के स्मरण तथा श्रवण-कीर्तन को भक्ति प्राप्ति का मुख्य साधन माना गया।
4. यज्ञ, तप, योग, व्रत और तीर्थ जैसे बाह्य आडम्बरों का विरोध किया गया।
5. गुरु, भक्त और सत्संग की महत्ता पर विशेष बल दिया गया।
6. भक्ति के क्षेत्र में ब्राह्मण और चाण्डाल के बीच किसी प्रकार का भेदभाव नहीं माना गया।
7. सत्य, अहिंसा, प्रेम, दया और मैत्री जैसे मानवीय गुणों के विकास द्वारा नैतिक जीवन को श्रेष्ठ बनाने का संदेश दिया गया।

इन सिद्धांतों को सरल रूप में जनसामान्य तक पहुँचाने के लिए शंकरदेव, माधवदेव और अन्य वैष्णव संतों ने अनेक गीत, काव्य और नाटकों की रचना की। उन्होंने भागवत तथा अन्य भक्ति-ग्रंथों का स्थानीय भाषा में अनुवाद भी किया, जिससे सामान्य लोग इनका अर्थ आसानी से समझ सकें। असम के नव-वैष्णव धर्म में दार्शनिक जटिलताओं की अपेक्षा भक्ति-भाव को अधिक महत्व दिया गया। सत्र और कीर्तन-घर इस आन्दोलन के प्रमुख केन्द्र बन गए।

भक्ति की विविध धाराएँ

असम में प्राचीन काल से ही अनेक धार्मिक परम्पराएँ विद्यमान थीं। आर्य और अनार्य समुदायों के कारण विभिन्न प्रकार की पूजा-पद्धतियाँ प्रचलित थीं। उस समय शैव, शाक्त, वैष्णव, बौद्ध, नाथ तथा इस्लामी परम्पराओं का प्रभाव देखा जा सकता है।

(क) शैव भक्ति

असम में शिव-पूजा का प्रचलन अत्यन्त प्राचीन माना जाता है। किवदंतियों के अनुसार राजा जल्पेश्वर के समय से शिव-उपासना का उल्लेख मिलता है। जब नरकासुर मिथिला से कामरूप क्षेत्र में आया, तब भी यहाँ के किरात समुदाय शिव-भक्त थे। शिव-उपासना का प्रभाव राजवंशों के माध्यम से भी जनसाधारण तक पहुँचा। दसवीं शताब्दी के ताम्रपत्रों में अधिकांश अभिलेख शिव-स्तुति से आरम्भ होते हैं। कोच राज्य के संस्थापक विश्वसिंह तथा अन्य मेच सरदार भी शिव-भक्त थे। बाद में जब आहोम शासकों ने हिन्दू धर्म को अपनाया, तब उन्होंने भी शिव-उपासना को स्वीकार किया। शिव-पूजा पौराणिक और तांत्रिक दोनों पद्धतियों से की जाती थी।

(ख) शाक्त भक्ति

असम में शक्ति-पूजा की परम्परा भी अत्यन्त प्राचीन है। ऐसा माना जाता है कि नरकासुर ने देवी-उपासना को विशेष महत्व दिया था। कामाख्या मंदिर इस परम्परा का प्रमुख केंद्र है। शक्ति को विभिन्न रूपों में पूजा जाता है-मातृरूप में कामाख्या, पत्नीरूप में पार्वती, कुमारिका रूप में त्रिपुरसुन्दरी और उग्र रूप में ताम्रेश्वरी। इसके अतिरिक्त मनसा और शीतला देवी की पूजा भी प्रचलित रही है। तांत्रिक परम्पराओं के कारण शक्ति-पूजा में

बलि-प्रथा भी प्रचलित थी। कोचराजा नरनारायण और उनके सेनापति चिलाराय द्वारा कामाख्या मंदिर का पुनर्निर्माण करवाना इस परम्परा के महत्व को दर्शाता है।

(ग) वैष्णव भक्ति

गुवाहाटी के दक्षिण-पश्चिम में स्थित वशिष्ठ आश्रम में एक प्राचीन वैष्णव मंदिर है। परम्परा के अनुसार ऋषि वशिष्ठ का इस स्थान से सम्बन्ध माना जाता है। कुछ कथाओं में उनका सम्बन्ध नरकासुर से भी जोड़ा जाता है। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि असम में वैष्णव धर्म की परम्परा बहुत प्राचीन रही होगी। कुछ प्राचीन अभिलेखों से भी इस क्षेत्र में वैष्णव धर्म के प्रचार का संकेत मिलता है।

(घ) बौद्ध, नाथ और अन्य परम्पराएँ

असम में बौद्ध, नाथ, सूर्य-पूजक, गणेश-पूजक और मंत्र-साधना से जुड़े अनेक सम्प्रदाय भी विद्यमान थे। बौद्ध धर्म की वज्रयान शाखा का प्रभाव यहाँ देखा जाता है। नाथ सम्प्रदाय के साधुओं को भी सम्मान प्राप्त था। गोवालपारा जिले का सूर्य-पहाड़ तथा गुवाहाटी का चित्रांचल सूर्य-पूजा के प्रमुख केन्द्र थे। इसके अतिरिक्त अनेक प्राचीन स्थलों पर गणेश की मूर्तियाँ भी प्राप्त होती हैं जिससे इस देवता की लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है।

(ङ) इस्लामी प्रभाव

पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इस्लाम का प्रभाव भी असम में दिखाई देने लगा। 1498 ईस्वी में गौड़ के शासक हुसैन शाह ने पश्चिमी असम के कुछ क्षेत्रों पर अधिकार कर रंगामाटी को अपना केन्द्र बनाया और वहाँ पहली मस्जिद का निर्माण कराया। बाद में गयासुद्दीन औलिया ने हाजो में 'पोवा मक्का' नामक मस्जिद बनवाई। धीरे-धीरे मुसलमान समुदाय यहाँ बसने लगा और इस्लामी धार्मिक परम्पराएँ भी स्थानीय समाज में स्थापित होने लगीं। उल्लेखनीय है कि शंकरदेव के शिष्यों में चाँदसाई नामक एक मुस्लिम अनुयायी का भी उल्लेख मिलता है।

प्रमुख कवि:

असम के भक्ति-साहित्य में मुख्यत: दो प्रकार के कवियों का उल्लेख मिलता है-वैष्णव कवि और वैष्णवेतर कवि। वैष्णव परम्परा के प्रमुख कवियों में शंकरदेव, माधवदेव, अनन्त कंदली, राम सरस्वती, कंसारि कवि, रत्नाकर कंदली, श्रीधर कंदली, कलापचन्द्र, गोपालचरण द्विज, गोपालदेव तथा रामचरण ठाकुर आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त कुछ कवि ऐसे भी थे जो वैष्णव परम्परा से सीधे जुड़े नहीं थे। इनमें पीताम्बर, मनकर, दुर्गावर कायस्थ तथा नारायण देव प्रमुख माने जाते हैं। इन कवियों ने मुख्यत: पौराणिक कथाओं और मनसा देवी से सम्बन्धित आख्यानों को अपने साहित्य का आधार बनाया और उन्हें विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया। असम में विकसित भक्ति-परम्परा ने केवल धार्मिक जीवन को ही प्रभावित नहीं किया, बल्कि साहित्य, संस्कृति और समाज के विभिन्न क्षेत्रों में भी गहरा प्रभाव छोड़ा।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि असम में नव-वैष्णव भक्ति आन्दोलन केवल धार्मिक आन्दोलन नहीं था बल्कि यह एक व्यापक सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन का माध्यम भी बना। पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी के समय असम की राजनीतिक अस्थिरता, सामाजिक विभाजन तथा धार्मिक अंधविश्वासों से युक्त परिस्थितियों में श्रीमंत शंकरदेव ने वैष्णव भक्ति के माध्यम से समाज को एक नई दिशा प्रदान की। उन्होंने एक ऐसे सरल और सर्वसुलभ धार्मिक मार्ग का प्रतिपादन किया, जिसमें जाति-भेद, ऊँच-नीच और बाह्य आडंबरों के स्थान पर भक्ति, प्रेम, समानता और नैतिकता को प्रमुख स्थान दिया गया।

शंकरदेव और उनके प्रमुख शिष्य माधवदेव ने भक्ति-धर्म के प्रचार के साथ-साथ साहित्य, संगीत और नाटक के माध्यम से भी समाज को जागरूक करने का प्रयास किया। उनके द्वारा रचित काव्य, गीत और धार्मिक ग्रंथों ने असमिया भाषा और साहित्य को समृद्ध बनाया तथा लोकजीवन को सांस्कृतिक रूप से संगठित किया।

सत्र और कीर्तन-घर जैसे संस्थानों के माध्यम से इस आन्दोलन ने सामाजिक एकता को मजबूत किया और विभिन्न जातियों तथा जनजातियों के बीच संपर्क और सहयोग की भावना को विकसित किया। अत: कहा जा सकता है कि असम का नव-वैष्णव भक्ति आन्दोलन भारतीय भक्ति परम्परा की एक महत्वपूर्ण कड़ी है, जिसने धार्मिक चेतना के साथ-साथ सामाजिक समरसता, सांस्कृतिक विकास और साहित्यिक समृद्धि को भी नई दिशा प्रदान की।

w अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. असम में नव-वैष्णव भक्ति आन्दोलन के प्रमुख प्रवर्तक कौन थे?

प्रश्न 2. नव-वैष्णव भक्ति परम्परा की प्रमुख विशेषता क्या थी?

प्रश्न 3. असम में भक्ति आन्दोलन के प्रमुख केन्द्र कौन-से थे?

प्रश्न 4. नव-वैष्णव भक्ति आन्दोलन ने समाज को क्या संदेश दिया?

प्रश्न 5. असम के वैष्णव भक्ति-साहित्य के प्रमुख कवि कौन-कौन थे?

9.4 महापुरुष शंकरदेव : जीवन और व्यक्तित्व

किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व और उसके वास्तविक स्वरूप को समझने का सबसे विश्वसनीय माध्यम उसकी जीवनी होती है। जीवनी के अंतर्गत उस व्यक्ति के जन्म से लेकर उसके जीवन के अंतिम समय तक की घटनाओं और अनुभवों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया जाता है। इसमें उसके परिवार, सामाजिक परिवेश, शिक्षा-दीक्षा, जीवन संघर्ष तथा विचारधारा से जुड़े विभिन्न पक्षों का समग्र चित्र सामने आता है। जिस प्रकार इतिहास वास्तविक घटनाओं पर आधारित होता है, उसी प्रकार किसी महान व्यक्ति की जीवनी भी उसके जीवन में घटित सत्य घटनाओं और अनुभवों का प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत करती है।

असम के महान संत और समाज-सुधारक महापुरुष शंकरदेव को इसी दृष्टि से एक युग-परिवर्तनकारी व्यक्तित्व के रूप में देखा जाता है। वे केवल असम के ही नहीं, बल्कि मध्यकालीन भारत में विकसित हुए व्यापक भक्ति आन्दोलन के प्रमुख नेताओं में भी गिने जाते हैं। उस समय पूरे भारत में जिस भक्ति-चेतना का प्रसार हो रहा था उसमें शंकरदेव का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। उन्होंने अपने विचारों और शिक्षाओं के माध्यम से असम के विभिन्न क्षेत्रों और समाज के विविध वर्गों को प्रभावित किया। आज भी असम के प्रत्येक भाग में उनका स्मरण अत्यंत श्रद्धा के साथ गुरु के रूप में किया जाता है। उनकी वाणी और उपदेशों की मधुर धारा आज भी असम के जनजीवन में प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है।

शंकरदेव का व्यक्तित्व अत्यन्त बहुआयामी था। वे केवल धर्म के प्रचारक ही नहीं थे, बल्कि आध्यात्मिक मार्गदर्शक, साहित्यकार, अभिनेता, नर्तक, गायक, संगीत-रचनाकार, वादक, कुशल आयोजक, शिल्पकार तथा चित्रकार भी थे। इन सभी गुणों के कारण उनका व्यक्तित्व अत्यन्त समृद्ध और प्रभावशाली बन गया था। उनकी रचनाओं का मुख्य उद्देश्य वैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार करना था किन्तु इसके साथ-साथ उन्होंने असमिया साहित्य को भी वैचारिक और बौद्धिक दृष्टि से अत्यन्त सुदृढ़ बनाया। उन्नीसवीं शताब्दी में विदेश से आए विद्वान डॉ. माइल्स ने भी असम में शंकरदेव के महत्व को स्वीकार करते हुए उनके कार्यों की सराहना की है। उन्होंने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं-"He come down to the level of the people and translated from Sanskrit these portions of the hindu sacred book, and presented them to the people in their own familiar dialect. Relieved of a foreing tongue and from difficult and abstruse terms, the people could now chant the praises of their gods in their familiar language of childhood. The took among them like wild-fire, and to this day increasingly popular."(प्रफुल्ल

चन्द्र बरा, आधुनिक असमिया साहित्यत शंकरदेवर प्रसंग, पृ-10)

इस कथन से स्पष्ट होता है कि शंकरदेव ने संस्कृत के कठिन धार्मिक ग्रंथों को सरल स्थानीय भाषा में प्रस्तुत करके सामान्य जनता के लिए सुलभ बनाया। इसके कारण लोग अपनी मातृभाषा में भगवान की स्तुति और भक्ति का अनुभव करने लगे, जिससे उनकी शिक्षाएँ समाज में अत्यन्त तीव्र गति से फैल गईं और समय के साथ उनकी लोकप्रियता निरंतर बढ़ती चली गई। महापुरुष शंकरदेव का जीवन अनेक प्रकार की कठिनाइयों और संघर्षों से भरा हुआ था। उन्होंने अपना जीवन किसी राजा या शासक के संरक्षण में नहीं बिताया। जीवन के अंतिम चरण में उन्हें कोच राजा नरनारायण का आश्रय अवश्य प्राप्त हुआ किन्तु उससे पूर्व उन्होंने अनेक चुनौतियों का सामना करते हुए अपने कार्यों को आगे बढ़ाया। अपने साहित्य और धार्मिक विचारों के प्रचार-प्रसार में उन्हें अपने शिष्यों का महत्वपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ। उनके प्रमुख और प्रिय शिष्य माधवदेव थे, जिन्होंने अपने गुरु के सिद्धांतों और आदर्शों का पूर्ण निष्ठा के साथ पालन किया और उनके मार्ग का अनुसरण करते हुए वैष्णव धर्म के प्रसार में विशेष योगदान दिया।

शंकरदेव केवल धर्म के उपदेशक ही नहीं थे बल्कि असमिया साहित्य के महान कवि और एक विशिष्ट भाषाविद के रूप में भी प्रतिष्ठित हैं। उन्होंने वैष्णव धर्म के सिद्धांतों को जनसामान्य तक पहुँचाने के उद्देश्य से अनेक साहित्यिक कृतियों की रचना की। विश्व इतिहास यह प्रमाणित करता है कि जब-जब समाज में अधर्म, अत्याचार और अनैतिकता का विस्तार होता है, तब-तब मानव समाज के मार्गदर्शन और कल्याण के लिए महान व्यक्तित्वों का उदय होता है। परिवर्तनशील समाज में यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। रामानुजाचार्य, गुरु नानक, चैतन्य प्रभु तथा शंकरदेव जैसे महापुरुषों ने अपने-अपने समय में समाज में मानवता, प्रेम और नैतिकता की स्थापना के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया।

शंकरदेव ने धर्म को केन्द्र में रखकर असमिया समाज, संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में अपना अमूल्य योगदान प्रदान किया। उस समय असमिया समाज अनेक जातीय और सांस्कृतिक विभाजनों में बँटा हुआ था। शंकरदेव ने अपनी शिक्षाओं और भक्ति आन्दोलन के माध्यम से इस बिखरे हुए समाज को एक सूत्र में बाँधने का प्रयास किया। इस प्रकार उन्होंने एक युगनायक के रूप में असमिया समाज को नई दिशा और गौरव प्रदान किया। उनकी महानता का उल्लेख उनके प्रिय शिष्य माधवदेव ने भी अत्यंत भावपूर्ण शब्दों में किया है-

'हेनय शंकर गुरु कमन कारने आन जने
लूकर माजत आपुनी गुरु बुलवे' (628 निंदा, नामघूखा)

इस कथन के माध्यम से माधवदेव ने यह स्पष्ट किया है कि शंकरदेव जैसे महान गुरु का समकक्ष कोई अन्य नहीं है जिनकी महिमा और प्रभाव के कारण लोग स्वयं उन्हें अपना गुरु मानते हैं।

निस्संदेह शंकरदेव को असमिया जाति, साहित्य और संस्कृति के महान निर्माता के रूप में सम्मानित किया जाता है। असमिया तथा भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के विकास में उनका योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। इसी कारण उन्हें महापुरुष तथा अवतारी पुरुष की संज्ञा दी जाती है। उपलब्ध ऐतिहासिक तथ्यों और प्रमाणों के आधार पर शंकरदेव के जीवन को विभिन्न चरणों में समझा जा सकता है जिनका विवरण आगे प्रस्तुत किया जा सकता है। श्रीमंत शंकरदेव का जन्म 1449 में असम प्रांत के नगाँव जिला के आली-पुखुरी में हुआ था। उनके पिता का नाम कुसुम्बर भुइयाँ और माता का नाम सत्यसंध्या था। माता-पिता दोनों के अकाल मृत्यु के कारण उनकी देखभाल दादी खेरसुती ने की। बारह वर्ष की अवस्था में उन्होंने महेंद्र कंदली की पाठशाला में अध्ययन शुरु किया। केवल वर्णमाला सीखकर ही उन्होंने एक मात्राविहीन कविता की रचना की-

''करतल कमल कमलदल नयन।
भव दव दहन गहन बन शयन।।
नपर नपर पर शतरत गमय।

सभय मभय भय ममहर शततय।।
खरतर वरसर हतदश वदन।
खगचर नगधर फनधर शयन।।
जगदघ मपहर भवभय तरण।
परपद लयकर कमलज नयन।।''

एक बार पाठशाला के सभी छात्र अपनी पढ़ाई खत्म कर के घर के लिए चले गए लेकिन शंकर पाठशाला में ही सो गए थे। उस समय महेंद्र कंदली ने एक ऐसा दृश्य देखा जिसे देखकर वह चकित रह हए। जब सूरज की रौशनी शंकर पर पड़ रहा था तो एक साँप अपने फन से उन्हें छाया दे रहा था। यह दृश्य देखने के बाद महेंद्र कंदली शंकर के महिमा के बारे में समझ गए और उस दिन के बाद उन्होंने अपने छात्रों को शंकर को 'शंकरदेव' बुलाने का आदेश दिया।

32 वर्ष के आयु में वह तीर्थयात्रा के लिए निकले थे। तीर्थयात्रा के दौरान वे मथुरा, पुरी, वृंदावन, गया, रामेश्वरम, अयोध्या आदि स्थान पर गये। जिससे उनके सामाजिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, और धार्मिक दृष्टिकोण पर गहरा प्रभाव पड़ा। उसी समय भारत में भक्ति आंदोलन पुरे जोरों पर था। तीर्थयात्रा से लौटने के बाद शंकरदेव ने अपना जीवन पूरी तरह से भक्ति के संदेश प्रचार और प्रसार में व्यतीत किया।

भारत का मध्यकाल धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आंदोलनों से परिपूर्ण रहा है। जिनमें भक्ति आंदोलन सर्वाधिक प्रभावशाली और व्यापक जनजागरण का प्रतीक रहा। यह आंदोलन न केवल धार्मिक साधना की एक सहज और सर्वसुलभ पद्धति का परिचायक था बल्कि इसने सामाजिक असमानताओं, जातिगत भेदभाव, बाह्य आडंबरों और रूढ़ियों के विरुद्ध भी व्यापक रूप से संघर्ष किया। भक्ति आंदोलन ने एक समावेशी धार्मिक दृष्टिकोण को जन्म दिया, जिसने समस्त भारतवर्ष में समानता, प्रेम, भक्ति और सामाजिक सद्भाव को प्रोत्साहित किया। मध्यकाल में भक्ति आंदोलन का उदय सर्वप्रथम दक्षिण भारत में सातवीं शतब्दी के आस-पास हुआ। इस आंदोलन का नेतृत्व अलवार तथा नयनार संतों ने लिया था। बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में रामानंद द्वारा यह आंदोलन दक्षिण भारत से उत्तर भारत में लाया गया।

''भक्ति द्राविड़ ऊपजी, लाये रामानंद।'' अर्थात भक्ति का जन्म दक्षिण में हुआ और इसे उत्तर भारत में रामानंद ने लाया।

इस आंदोलन को चैतन्य महाप्रभु, नामदेव, तुकाराम, जयदेव ने अधिक मुखरता प्रदान की। भक्ति आंदोलन का मूल उद्देश्य था हिंदु धर्म एवं समाज में सुधार लाना। साथ ही इस्लाम एवं हिंदु धर्म में समन्वय स्थापित करना। अपने उद्देश्यों में यह आंदोलन काफी हद तक सफल रहा। उत्तर भारत में कबीर, तुलसीदास, सूरदास, मीरा, रैदास और दक्षिण में अलवार-नायनार, रामानुज, बसवेश्वर, नामदेव, ज्ञानेश्वर जैसे संतों ने इस आंदोलन को दिशा दी। इसी क्रम में भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र विशेष रूप से असम में महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव ने भक्ति आंदोलन को नई ऊँचाइयों पर पहुँचाया और उसे क्षेत्रीय स्तर पर जनसामान्य से जोड़कर एक सांस्कृतिक पुनर्जागरण का रूप दिया। शंकरदेव की भक्ति रामानुज और चैतन्य महाप्रभु की भक्ति परंपरा से जुड़ी हुई थी किंतु उन्होंने उसे असमिया जनजीवन, संस्कृति और भाषा के अनुरूप ढालकर एक नयी वैष्णव धारा 'एकशरण नामधर्म' की स्थापना की। शंकरदेव ने भक्ति को केवल मंदिर तक सीमित न रखकर उसे जन चेतना और लोक संस्कृति से जोड़ा। उनका साहित्यिक योगदान असमिया भाषा और साहित्य को समृद्ध करता है।

शंकरदेव की रचनाओं में गीत, काव्य, नाटक (अंकिया नाट) के साथ-साथ अनुवाद मूलक साहित्य भी प्राप्त होते हैं।

गीत

1. बरगीत

2. भटिमा
3. टोटय
4. चपय

काव्य

1. हरिश्चंद्र उपाख्यान
2. गजेंद्र उपाख्यान
3. अजामिल उपाख्यान
4. रुक्मिणी हरण
5. बलिछलन
6. अमृत मंथन

अनुदित काव्य

भागवत

1. प्रथम स्कंध
2. द्वितीय स्कंध
3. तृतीय स्कंध (अनादि पातन)
4. षष्ठ स्कंध (अजामिल उपाख्यान)
5. अष्टम स्कंध (अमृत मंथन और बलिछलन)
6. दशम स्कंध (आदि और कुरुक्षेत्र)
7. एकादश स्कंध
8. द्वादश स्कंध
9. रामायण (उत्तराखंड)

नाटक (अंकिया नाट)

1. पत्नी-प्रसाद
2. कालीयदमन
3. केलिगोपाल
4. रुक्मिणी हरण
5. पारिजात हरण
6. रामविजय

भक्तिमूलक ग्रंथः

1. भक्ति प्रदीप
2. अनादि पातन
3. भक्ति रत्नाकर
4. निमि नव सिद्ध संवाद
5. कीर्तन

6. गुणमाला

'कीर्तन घोषा' उनकी सबसे प्रसिद्ध कृति है। उनकी अन्य एक प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण कृति है 'गुणमाला'। यह एक संक्षिप्त किंतु अत्यंत सारगर्भित कृति मानी जाती है। इसमें भागवत पुराण के उपदेशों और कृष्ण के महिमा का वर्णन किया गया है। इस ग्रंथ के रचना के लिए शंकरदेव को कहा गया था कि 'हाती मारि भुरुकात भोरुआ'। इसका अर्थ है एक छोटे से पात्र में हाथी को भर देना, जैसे 'गागर में सागर'।

शंकरदेव ने असम की विशाल सामाजिक, सांस्कृतिक और जातीय विविधताओं के बीच अखंडता स्थापित करने के लिए नव-वैष्णववाद का प्रचार किया और इस प्रयास ने इस भारतीय भक्ति आंदोलन के क्षेत्र को व्यापक बनाया। नव-वैष्णववाद को एक-शरन-नाम-धर्म के रूप में भी जाना जाता है। उस समय असम विभिन्न जातियों और समुदायों का निवास स्थान था। लोग शक्तिवाद और तांत्रिकवाद में विश्वास रखते थे। लोग विभिन्न देवताओं और तंत्रों के अस्तित्व में विश्वास करते थे। शंकरदेव ने अपने अभिनव विचारों से भागवत के आदर्शों का प्रचार किया। सर्वोच्च ईश्वर, भगवान कृष्ण के रूप में विष्णु के अलावा कोई नहीं, इस मान्यता का प्रचलन किया। उन्होंने लोगों को 'नाम' (प्रार्थना) और 'कीर्तन' (पाठ) के माध्यम से दिव्यता तक पहुंचने का एक नया मार्ग दिखाया ।

शंकरदेव एकेश्वरवाद के कट्टर अनुयायी थे। उनके पंथ का सिद्धांत भगवान विष्णु के प्रति पूर्ण समर्पण और भक्ति पर आधारित है। संसार की अन्य सभी वस्तुएँ उस परम सत्ता की अभिव्यक्ति मात्र हैं । ब्रह्माण्ड और भौतिकवादी दुनिया का केवल अनुभवजन्य अस्तित्व है। गीता के उपदेश के आधार पर उन्होंने-

'एक देव एक सेव
एक बिने नाइ केव'

सिद्धांत का प्रचार किया।

अर्थात ईश्वर एक ही है, एक ईश्वर के अलावा कोई नहीं है।

नव-वैष्णव भक्ति आंदोलन की शुरुआत शंकरदेव ने 18वीं सदी के आरंभ में की थी। वैष्णव पंथ के आदर्शों को फैलाने के लिए, उन्होंने कला, संस्कृति और साहित्य के माध्यम से व्यवस्थित प्रयास किया। इससे असमिया समाज में स्वर्ण युग की शुरुआत हुई। अपने नए धर्म को जनता के करीब लाने के लिए उन्होंने असमिया भाषा में कई किताबें लिखीं। इससे उनका धर्म और भी लोकप्रिय हुआ और विभिन्न वर्गों के लोगों को धार्मिक परिधि के एकल के दायरे में लाया गया। इसका प्रभाव युगों-युगों से असमवासियों के बीच आज तक प्रवाहित हो रहा है।

9.5 'नारायण काहे भकति'- मूल पाठ और शब्दार्थः

रागः धनश्री (परिताल)

ध्रुवः नारायण काहे भरूति करू तेरा।
मेरि पामरू मन माधव धन धन
धातुक पाप नछोड़ा।।

पदः यत जीव जंगम कीट पंतगम
अग नग जग तेरि काया।
सवकहु मारि पूरत ओहि उदर
नाहि करत भूत-दाया।।
ईश स्वरूपे हरि सब घटे बैठक

यैचन गगन बियापि।
निदांबाद पशुन्य हिंसा हरि
तेरि करोहों हामु पापी।।
काकु शंकर कय करहु करुणा नाथ
जो न छाड्यों राम वाणी।
सव अपराधक बाधक तुवा नाम
ताहे शरण लेहु जानी।

शब्दार्थः

काहेः कैसे

मेरिः मेरा

पामरूः पापी

नछोड़ाः न छोड़ना

घने-धनेः बार-बार

जंगमः मनुष्य या प्राणी

अगः प्रकृति (पेड़-पौधे)

नगः पर्वत

सवकहुः सभी

बादः तर्क

धातुकः मारक, विनाशकारी

काकुः प्रार्थना करना

5 महत्वपूर्ण बिंदु

शंकरदेव को असमिया नाट्य साहित्य का जन्मदाता कहा जाता है। उनके द्वारा लिखित नाटकों से पूर्व असम में कोई नाटक लिखित रूप में नहीं मिलता। असम में प्रचलित 'उजपाली', 'ढूलिया', 'पुतला नृत्य' आदि असम के समृद्ध लोक नाट्य परंपरा है। असम में पूर्ण नाट्य परंपरा का शुरुआत शंकरदेव द्वारा ही संभव हो उठा। अंकिया नाट्य के कथानक को देखा जाए तो यह शंकरदेव के अभिज्ञता का फल है। भरत मुनि का नाट्यशास्त्र, संस्कृत नाट्य का अध्ययन, बारह वर्ष तीर्थ भ्रमण की अभिज्ञता, लोक नाट्य और नृत्य धर्मी अनुष्ठान के साथ परिचय तथा उनका अनुभव ही अंकिया नाटक को मौलिकता प्रदान करता है।

9.6 'नारायण काहे भकति' सारांशः

महापुरुष शंकरदेव द्वारा रचित ''नारायण काहे भकति करू'' नामक बरगीत में भक्त की गहरी आत्मस्वीकृति, पश्चाताप और ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण की भावना प्रकट होती है। इस गीत में एक साधारण मनुष्य की मनः स्थिति को अत्यंत मार्मिक रूप में व्यक्त किया गया है। मनुष्य अपने जीवन की कमजोरियों और पापपूर्ण प्रवृत्तियों को पहचानते हुए भगवान नारायण के सामने विनम्रता से प्रश्न करता है कि वह किस प्रकार उनकी सच्ची भक्ति कर सकता है, क्योंकि उसका मन बार-बार पाप की ओर आकर्षित हो जाता है। इस प्रकार यह बरगीत मानव की आत्मिक पीड़ा और ईश्वर की शरण में जाने की आकांक्षा को अत्यंत सरल और भावपूर्ण ढंग

से प्रस्तुत करता है।

इस बरगीत में शंकरदेव ने मनुष्य के अंत: करण की उस द्वंद्वात्मक स्थिति को चित्रित किया है जिसमें एक ओर ईश्वर के प्रति श्रद्धा और भक्ति की इच्छा होती है तो दूसरी ओर सांसारिक वासनाएँ और स्वार्थ उसे बार-बार पाप के मार्ग पर ले जाती हैं। मनुष्य स्वीकार करता है कि उसका मन स्थिर नहीं है और वह अनेक प्रकार के दोषों से ग्रस्त है । इसलिए वह भगवान से मार्गदर्शन और कृपा की याचना करता है। यह भावना भक्ति साहित्य की उस परम्परा को दर्शाती है जिसमें भक्त अपने को दीन और असहाय मानकर ईश्वर की करुणा पर पूर्ण विश्वास करता है।

बरगीत का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि इसमें समस्त सृष्टि को भगवान की ही अभिव्यक्ति माना गया है। संसार में जितने भी जीव-जंतु, कीट-पतंग, पर्वत, वृक्ष और अन्य स्थिर-चल वस्तुएँ हैं, वे सब ईश्वर की ही सृष्टि हैं और उनमें उसी परमात्मा का अंश विद्यमान है। इस दृष्टि से किसी भी प्राणी के प्रति हिंसा या क्रूरता करना वास्तव में भगवान के प्रति ही अनादर प्रकट करना है। मनुष्य जब अपने स्वार्थ के कारण दूसरे जीवों को कष्ट देता है या उन्हें मारकर अपने जीवन का निर्वाह करता है, तब वह अनजाने में ईश्वर की ही अवमानना करता है। शंकरदेव इस बरगीत के माध्यम से यह भी बताते हैं कि ईश्वर प्रत्येक जीव के भीतर उसी प्रकार विद्यमान है जैसे आकाश सर्वत्र व्याप्त रहता है। अत: यदि मनुष्य इस सत्य को समझ ले, तो उसके भीतर दया, करुणा और प्रेम की भावना स्वत: विकसित हो सकती है। यह विचार असम के नव-वैष्णव धर्म की मूल शिक्षाओं से भी जुड़ा हुआ है, जहाँ अहिंसा, करुणा और समता को अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है।

गीत के अंत में भक्त अत्यंत विनम्र भाव से भगवान नारायण से प्रार्थना करता है कि वे उस पर अपनी कृपा दृष्टि रखें। वह स्वीकार करता है कि उसके जीवन में अनेक प्रकार के दोष और अपराध हैं, किन्तु भगवान का नाम इतना पवित्र और शक्तिशाली है कि वह सभी पापों का नाश कर सकता है। इसलिए वह भगवान से यह वरदान माँगता है कि उसके मुख से कभी भी ईश्वर का नाम छूटने न पाए। ''नारायण काहे भकति करू'' बरगीत केवल एक भक्ति गीत नहीं है, बल्कि यह मनुष्य के आत्मशोधन और नैतिक जागरण का भी संदेश देता है। इसमें ईश्वर के प्रति प्रेम, सभी जीवों के प्रति दया और नाम-स्मरण की महिमा को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है। शंकरदेव ने इस गीत के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि सच्ची भक्ति का मार्ग बाहरी आडंबरों में नहीं बल्कि विनम्रता, आत्मचिंतन और ईश्वर के नाम में पूर्ण विश्वास रखने में निहित है।

9.7 सारांश

'नारायण काहे भकति करू' इकाई में असम के नव-वैष्णव भक्ति आंदोलन, उसके प्रमुख कवियों तथा भक्ति की विशेषताओं का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। इस इकाई के माध्यम से असम में विकसित वैष्णव भक्ति परम्परा की पृष्ठभूमि और उसके सामाजिक-सांस्कृतिक महत्व को समझाया गया है। साथ ही महापुरुष शंकरदेव के जीवन, व्यक्तित्व और उनके साहित्यिक तथा धार्मिक योगदान पर भी प्रकाश डाला गया है। शंकरदेव को असमिया समाज, साहित्य और संस्कृति का महान निर्माता माना जाता है। उन्होंने नव-वैष्णव धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए अनेक काव्य, गीत, नाटक तथा धार्मिक ग्रंथों की रचना की। उनके द्वारा रचित बरगीत असमिया भक्ति-साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। इस इकाई में उनकी प्रसिद्ध रचना 'नारायण काहे भकति करू' बरगीत का मूल पाठ, उसका शब्दार्थ तथा भावार्थ सहित विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

इस बरगीत के माध्यम से मनुष्य की आत्मस्वीकृति, ईश्वर के प्रति समर्पण तथा सभी जीवों के प्रति दया और करुणा की भावना को व्यक्त किया गया है। गीत में यह बताया गया है कि भगवान का नाम ही मनुष्य के पापों का नाश करने वाला है और सच्ची भक्ति का मार्ग सरल तथा सहज है। इस प्रकार यह इकाई विद्यार्थियों को असमिया भक्ति परम्परा, शंकरदेव के साहित्य और 'नारायण काहे भकति करू' बरगीत के भाव और महत्व से

परिचित कराती है।

K9.8 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर: असम में नव-वैष्णव भक्ति आन्दोलन के प्रमुख प्रवर्तक महापुरुष शंकरदेव थे। उन्होंने भक्ति-धर्म के प्रचार के साथ-साथ साहित्य, संगीत और नाटक के माध्यम से समाज को नई दिशा प्रदान की।

प्रश्न 2 का उत्तर: नव-वैष्णव भक्ति परम्परा की प्रमुख विशेषता भगवान विष्णु या कृष्ण के प्रति एकनिष्ठ भक्ति, नाम-स्मरण, कीर्तन और सत्संग पर विशेष बल देना था।

प्रश्न 3 का उत्तर: असम में भक्ति आन्दोलन के प्रमुख केन्द्र सत्र और कीर्तन-घर थे, जहाँ भक्ति-साधना, सत्संग और धार्मिक शिक्षा का प्रसार किया जाता था।

प्रश्न 4 का उत्तर: इस आन्दोलन ने जाति-भेद, ऊँच-नीच और बाह्य आडम्बरों का विरोध करते हुए भक्ति, प्रेम, समानता और नैतिक जीवन का संदेश दिया।

प्रश्न 5 का उत्तर: असम के वैष्णव भक्ति-साहित्य के प्रमुख कवियों में शंकरदेव, माधवदेव, अनन्त कंदली, राम सरस्वती, कंसारि कवि और रत्नाकर कंदली आदि शामिल हैं।

5 9.9 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- नेउग, महेश्वर: श्रीश्री शंकरदेव, चंद्र प्रकाशन, गुवाहाटी, 1987।
- चौधरी, भूपेन्द्र राय: श्रीमंत शंकरदेव व्यक्तित्व और कृतित्व, गुवाहाटी, 2002।
- बरा, शिवनाथ: श्रीमंत शंकरदेव कृति आरू कृतित्व, गुवाहाटी, 2008।
- चौधरी, रामानंद: श्रीश्री शंकरी धर्म और भक्तिसार, ज्योति प्रकाशन, गुवाहाटी, 1956।
- महंत, बापचंद: बरगीत, स्टूडेंट्स स्टोर, गुवाहाटी, 2008।
- शैकिया, नुरुल इस्लाम: महान असमिया व्यक्ति चिरिज, गुवाहाटी, 2013।
- शर्मा, सत्येन्द्रनाथ: असमिया साहित्यर समीक्षात्मक इतिवृत्त, गुवाहाटी, 1991।
- दास, स्वप्नाली: इलाराम दास जीवन और कृति, शब्द भारती प्रकाशन, 2025।
- दस, श्री रामप्रसाद: महापुरुष श्रीश्री शंकरदेव- श्रीश्री माधवदेव, गुवाहाटी।
- हजारिका, प्रदीप, बरा, इंदिरा शैकिया: महापुरुष शंकरदेव-माधवदेवर अंकिया नाट आरू झुमुरा।

M9.10 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. 'नारायण काहे भकति करू' किस प्रकार की काव्य रचना है और इसे क्या कहा जाता है?
2. नव-वैष्णव भक्ति आन्दोलन की पृष्ठभूमि किन सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों में तैयार हुई?
3. असमिया भक्ति-साहित्य के विकास में बरगीतों का क्या महत्व है?
4. नव-वैष्णव भक्ति परम्परा में नाम-स्मरण और कीर्तन का क्या स्थान है?
5. 'नारायण काहे भकति करू' बरगीत में किस प्रकार की आध्यात्मिक भावना व्यक्त की गई है?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. असम में नव-वैष्णव भक्ति आन्दोलन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और उसके स्वरूप का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. महापुरुष शंकरदेव के जीवन, व्यक्तित्व और उनके सामाजिक-सांस्कृतिक योगदान पर विस्तार से प्रकाश डालिए।
3. नव-वैष्णव भक्ति आन्दोलन की प्रमुख विशेषताओं का विवेचन कीजिए।
4. 'नारायण काहे भकति करू' बरगीत के भाव, संदेश और उसके आध्यात्मिक महत्व की विवेचना कीजिए।
5. असमिया समाज और साहित्य के विकास में नव-वैष्णव भक्ति परम्परा की भूमिका का विश्लेषण कीजिए।

****

इकाई-10 'मन मेरि राम चरणहि लागु' (शंकरदेव)

इकाई की रूपरेखा

10.1 उद्देश्य
10.2 प्रस्तावना
10.3 महापुरुष शंकरदेव के काव्य में सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण
10.4 महापुरुष शंकरदेव का काव्य-साहित्य: स्वरूप और विशेषताएँ
10.5 'मन मेरि राम चरणहि लागु' मूलपाठ और शब्दार्थ
10.6 'मन मेरि राम चरणहि लागु' सारांश
10.7 सारांश
10.8 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
10.9 अधिक जानने के लिए पढ़ें
10.10 अभ्यास प्रश्न

10.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

- शंकरदेव और भारतीय भक्ति आंदोलन में उनके स्थान को जान पाएंगे।
- शंकरदेव के 'एकशरण नाम धर्म' के सिद्धांतों को समझ पाएंगे।
- इस बरगीत के माध्यम से विद्यार्थियों को सांसारिक मोह-माया और वैराग्य के महत्व को समझाना।
- इस बरगीत के माध्यम से मानवीय नश्वरता को समझ पाएंगे।
- 'मन मेरि राम चरणहि लागु' मूलपाठ और शब्दार्थ के बारे में जानेंगे।

10.2 प्रस्तावना

भारतीय भक्ति साहित्य के स्वर्णिम इतिहास में शंकरदेव का एक विशेष स्थान है। उन्होंने असमिया जनमानस को न केवल आध्यात्मिक चेतना से जोड़ा बल्कि साहित्य, कला और समाज सुधार के माध्यम से एक सांस्कृतिक क्रांति का सुत्रपात किया। 15 वीं-16 वीं शताब्दी के नव-वैष्णव आंदोलन के माध्यम से उन्होंने असम के समाज को 'एकशरण-नाम-धर्म' के सूत्र में पिरोकर एक नई पहचान दी। जब संपूर्ण भारत भक्ति आंदोलन की लहर से घिरा हुआ था तब शंकरदेव ने अपने धर्म के सिद्धांतों को जनमानस तक पहुंचाने के लिए संगीत को माध्यम बनाया। 'मन मेरि राम चरणहि लागु' बरगीत उनका पहला बरगीत है जो उन्होंने बदरिकाश्रम की यात्रा के दौरान रचा था। शंकरदेव के साथ-साथ उनके शिष्य माधवदेव ने भी बरगीतों की रचना की। शंकरदेव और माधवदेव के बरगीतों को विद्वानों द्वारा कई श्रेणियों में विभक्त किया गया हैं। जैसे- लीला, विरह, बिरक्ति, परमार्थ, चोर और चातुरी। 'लीला' विषयक बरगीतों में श्री कृष्ण से लीलाओं का चित्रण किया गया है। 'विरह' और 'बिरक्ति' के अंतर्गत कृष्ण के मथुरा चले जाने के बाद ब्रज वासियों की स्थिति विशेषकर गोपियों की स्थिति का वर्णन मिलता है। जैसे-'रे सोइ गोपाल पियारु

मेरी प्राण आधारु।
मधुपूरी रहे दहे जीऊ हामारु।।'

अर्थात- यहाँ श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने के बाद गोपियों की विरह स्थितियों का मार्मिक चित्रण किया गया है। श्रीकृष्णह गोपियों के अत्यंत प्रिय है लेकिन अब वह मथुरा में वास कर रहे है। अब उनके दूर चले जाने

के इस विरह में गोपियों का हृदय जल रहा है।

उसी प्रकार उनकी अन्य बरगीतों के जरिए यह समझाया गया है कि भौतिक सुख का कोई मूल्य नहीं है, अंत में हमें ईश्वर के शरण में ही जाना है। इसलिए भगवान की प्राप्ति ही असल सफलता है और ईश्वर की भक्ति ही इसका एकमात्र उपाय है।

जैसे- 'पावे परि हरि करहूँ कातरि
प्राण राखबि मोरे।
विषय विषधर विषे जरजर
जीवन नारहे थोरे।।

अर्थात- हे ईश्वर मैं आपके चरणों में गिरकर विनम्रतापूर्वक प्रार्थना कर रहा हूँ कि आप मेरे प्राणों की रक्षा करें। इस संसार के विषय-वसनाऐं विषधर साँप के समान है जिसके विष से मेरा जीवन अशांत है। अब इस जीवन का कोई भरोसा नहीं रह गया, इसमें स्थिरता नहीं रह गई है। 'चोर-चातुरी' के अंतर्गत श्रीकृष्ण के वाल्यकाल के क्रीड़ाओं का वर्णन है। बचपन में ग्वाल के घर से दुध-दही चुराने के साथ-साथ अन्य घटनाओं का भी सुंदर चित्रण मिलता है।

प्रस्तुत इकाई में संकलित बरगीत 'मन मेरि राम चरणहि लागु' शंकरदेव की दार्शनिक चिंतन का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस बरगीत में मानव जीवन की नश्वरता, समय की गतिशीलता और संसार की क्षणभंगुरता को चित्रित किया है। इस बरगीत के माध्यम से शंकरदेव ने समय (काल) को एक निगलने वाले साँप (अजगर) के रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने मनुष्य को मोह के निद्रा से जागने के लिए अहवान किया है। प्रस्तुत बरगीत से हम यह समझ सकते है कि भौतिक उपलब्धियाँ अस्थायी है, इसलिए केवल ईश्वर की नाम स्मरण ही मोक्ष प्राप्ति का एकमात्र मार्ग है। यह इकाई केवल इस बरगीत का विश्लेषण नहीं करती बल्कि विद्यार्थिओं को चिंतन के लिए प्रेरित करती है। 'मन मेरि राम चरणहि लागु' बरगीत से हम यही सिखते है कि भौतिक सुख के बीच आध्यात्मिक शांति और ईश्वर के प्रति समर्पण ही जीवन का अंतिम लक्ष होना आवश्यक है।

10.3 महापुरुष शंकरदेव के काव्य में सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण

असम के महान संत-कवि महापुरुष शंकरदेव तथा उनके परम शिष्य माधवदेव द्वारा रचित समस्त काव्य-साहित्य को सामूहिक रूप से शांकरी काव्य कहा जाता है। गुरु-शिष्य के इस अद्वितीय संबंध के कारण दोनों की धार्मिक और दार्शनिक दृष्टि में स्वाभाविक समानता दिखाई देती है। शंकरदेव के अत्यंत प्रिय शिष्य होने के कारण माधवदेव उनके विचारों और दर्शन से गहराई से प्रभावित हुए। दोनों भक्त कवियों ने अपने साहित्य के माध्यम से 'एकशरणीया धर्म' के सिद्धांत को स्पष्ट और सुदृढ़ रूप में स्थापित किया। उनकी रचनाओं में केवल धार्मिक भावना ही नहीं, बल्कि सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोण भी प्रमुख रूप से व्यक्त हुआ है। इसलिए उनके साहित्य का अध्ययन करते समय उनके सामाजिक-सांस्कृतिक विचारों पर भी संक्षेप में विचार करना आवश्यक हो जाता है।

एकशरण का प्रवर्तन

वैष्णव धर्म के महान प्रवर्तक शंकरदेव से पहली बार मिलने पर माधवदेव उस समय शाक्त मत के अनुयायी थे। उन्होंने अपने मत की श्रेष्ठता सिद्ध करने के उद्देश्य से शंकरदेव के साथ लंबा तर्क-वितर्क किया। घंटों तक चले इस वाद-विवाद के अंत में शंकरदेव ने श्रीमद्भागवत से एक प्रसिद्ध श्लोक उद्धृत करके उन्हें 'एकशरण' का महत्व समझाया-यथा तरोमूलनोचनेन तृपयन्ति तत्सकन्धभुजोपशाखाः।

प्राणोपहाराध्या यथेन्द्रियाना तथैव सर्वार्हनमच्युतेज्या।। (भा. 04/31/14)

अर्थात जिस प्रकार वृक्ष की जड़ में जल देने से उसका तना, शाखाएँ और उपशाखाएँ सभी पुष्ट हो जाती हैं

और जैसे भोजन से प्राण तृप्त होने पर सभी इन्द्रियाँ सशक्त हो जाती हैं उसी प्रकार भगवान की आराधना ही सभी देवताओं की पूजा के समान है। इस श्लोक में 'एकशरण' की भावना स्पष्ट रूप से प्रतिपादित होती है। इसी तर्क से प्रभावित होकर शाक्त मत के अनुयायी माधवदेव वैष्णव मार्ग के साधक बन गए। आगे चलकर 'एकशरण' का सिद्धांत ही शांकरी दर्शन का मूल आधार बन गया।

एकशरण का अर्थ

'एकशरण' का आशय यह है कि संसार रूपी दुर्गम सागर से पार होने के लिए केवल अद्वैत ब्रह्म श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण की जाए। शंकरदेव ने इस विचार को अपने शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया-

'एके कृष्ण देव करियोक सेव
धरियो ताहान नाम।
कृष्ण दास हुआ प्रसाद मुंजिया
हस्ते करा तान काम।।'

अर्थात कृष्ण ही एकमात्र देव हैं इसलिए उनकी सेवा करनी चाहिए, उनका नाम जपना चाहिए और स्वयं को उनका दास मानकर उन्हीं के कार्यों में लग जाना चाहिए। यही भावना माधवदेव की रचनाओं में भी मिलती है—

'ईश्वर कृष्ण से निष्ठ परम आराध्य देव
मोर तान नामे निज गति।'

अर्थात भगवान कृष्ण ही मेरे परम आराध्य देव हैं और उनके नाम में ही मेरी मुक्ति निहित है।

शंकरदेव द्वारा स्थापित 'एकशरण' की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि इसमें बहुदेववाद की अपेक्षा एक ही परम देव की उपासना पर बल दिया गया है। इस विचार ने समाज में धार्मिक एकता और सामूहिक चेतना को मजबूत बनाने में विशेष योगदान दिया।

धार्मिक बाह्याडम्बर का विरोध

समाज में समता और एकता बनाए रखने के लिए बाहरी आडम्बरों को छोड़कर सरल और सहज धार्मिक मार्ग को अपनाना आवश्यक था। उस समय समाज धार्मिक शोषण और कठिन कर्मकांडों के कारण जर्जर हो चुका था। धर्म के नाम पर कठोर तप, व्रत और अनुष्ठानों के कारण सामान्य जन भ्रमित हो जाते थे। इसी कारण शंकरदेव ने अपने शांकरी साहित्य में तप, जप, योग, तीर्थ-यात्रा, व्रत, ज्ञान और वैराग्य जैसे कठिन साधनों की अपेक्षा केवल भक्ति को ही प्रमुख साधन बताया। उन्होंने तीर्थ-व्रत, तप-जप और योग की निरर्थकता का उल्लेख करते हुए कहा-तीरिथ बरत तप जप भाग योग सुगुति।

मंत्र परम धरम करम करत नाहि मुकुति।। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि भगवान की भक्ति के लिए किसी विशेष जाति या विद्वत्ता की आवश्यकता नहीं होती-

'न लागे देव द्विज ऋषि हुइये।
न लागै समस्त शास्त्र जानिये।।
मिध्मते मरै आन कर्म करि।

होवन्त भकत्तिते तुष्ट हरि।। अर्थात केवल भक्ति से ही भगवान प्रसन्न होते हैं। यही भावना माधवदेव के काव्य में भी व्यक्त होती है-

'धन्य धन्य कलिकाल, धन्य नरतनु भाल
धन्य धन्य भारत बरिये।
तप जप यज्ञ तेजि, तीमहार चरणे भन्ति।

तुवा नाम धुषियों हरिणे।।'

इस प्रकार धर्म के नाम पर होने वाले बाहरी आडम्बरों को छोड़ने का संदेश वास्तव में धार्मिक शोषण से बचाने की चेतावनी भी था। उस समय समाज में यह धारणा बन चुकी थी कि धन से धर्म प्राप्त किया जा सकता है। शंकरदेव ने इस भ्रम को दूर करते हुए कहा-

'यदि बोला धन हन्ते धर्म उपजय।
रोहि धन हन्ते रचर्ग सुखक यावय।।
शुनियाँ स्वर्गत आछे यत सत सुख।

समस्ते विनाशी सदा पाये मात्र दुख।। अर्थात- धन से धर्म या स्वर्ग की प्राप्ति संभव नहीं है, क्योंकि सांसारिक सुख अंततः नाशवान हैं।

नैतिक मूल्यों का महत्व

समाज का स्वस्थ स्वरूप व्यक्ति और परिवार के नैतिक जीवन पर निर्भर करता है। शांकरी काव्य में सामाजिक नियमों से अधिक मानवीय मूल्यों को महत्व दिया गया है। दया, करुणा, परोपकार, क्षमा और अहिंसा जैसे गुणों को अत्यंत आवश्यक बताया गया है। शंकरदेव ने प्राणी-मात्र की सेवा को महान पुण्य माना-

'जगतर पुष्य माने जाना निष्ठ करि।
प्राणी उपकार अल्पको नुहि सरि।।'

उन्होंने वृक्ष का उदाहरण देकर बताया कि वह अपने प्रत्येक अंग से दूसरों का ही कल्याण करता है। इसी प्रकार मनुष्य को भी दूसरों के हित में कार्य करना चाहिए। नैतिक जीवन के लिए सत्य और अहिंसा को भी अनिवार्य माना गया-

'सत्य नाहि नाहि आन धर्म जाना सत्य बिना।
अहिंसा नकरे प्राणीक हिंसा नाहि एको स्पृहा।' साथ ही काम, क्रोध और अहंकार जैसे दोषों को त्यागने की शिक्षा दी-

'एरिबे सदाय काम क्रोध अहंकार।
लेबेस एड़ाइबे हात दुर्जन मायार।। माधवदेव ने भी लोभ, मोह, क्रोध आदि को मनुष्य का शत्रु बताते हुए कहा—

'लोम-मोह-काम-क्रोध-मद-मान इन सब वैरीर संगे।
आपोन इच्छाय पाप आचरिया बेड़ाइलो मनर रंगे।।' उन्होंने यह भी चेतावनी दी कि पराई स्त्री या पराए धन के प्रति लोभ रखने से मनुष्य कृष्ण-सेवा से वंचित रह जाता है-

'पर तिरी, पर चनर आशाय सदाय आकुल मैलों।
तुमि नहाधन तोमाक नालेवि जनम विफल कैलों।।' शांकरी काव्य में नैतिक जीवन के लिए संयम और मर्यादा का मार्ग निर्धारित किया गया है।

सामाजिक समता की स्थापना

शंकरदेव और माधवदेव ने जाति-भेद का विरोध करते हुए कहा कि सच्चा भक्त किसी भी जाति का हो सकता है। माधवदेव के अनुसार-

'जाति कुलाचार चर्म ज्ञाने कृष्ण देवतार
नुहि अनुग्रहर कारण।
किंतु भक्तिभावे अति भजोक अर्जात जाति
ताते से संतुष्ट नारायण।।' शंकरदेव का कथन है

''नबाधै भक्ति जाति अनजाति।'' अर्थात- भक्ति किसी जाति या वर्ग से बंधी नहीं है। सभी मनुष्य उसी परमात्मा की संतान हैं इसलिए उनमें ऊँच-नीच का भेद नहीं होना चाहिए। उनकी मान्यता थी-

'समस्ते जगते हरि आरू सकले प्राणीक देखिबेक आत्मसम।' अर्थात समस्त संसार में भगवान का ही निवास है और प्रत्येक प्राणी को अपने समान समझना चाहिए। इस विचार को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने कहा

'कुकुर श्रृगाल धर्म आत्मा राम।

जानिया सबाकी परि करिबा प्रणाम।।' जब तक सभी जीवों के प्रति प्रेमभाव उत्पन्न न हो जाए, तब तक इस भावना का अभ्यास करते रहना चाहिए।

अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. 'मन मेरि राम चरणहि लागु' बरगीत के रचयिता कौन हैं और यह कब रचा गया था?

प्रश्न 2. नव-वैष्णव आंदोलन के माध्यम से शंकरदेव ने असम समाज को किस सिद्धांत में संगठित किया?

प्रश्न 3. शंकरदेव और माधवदेव के बरगीतों को विद्वानों ने किन-किन श्रेणियों में विभाजित किया है?

प्रश्न 4. 'एकशरण' का अर्थ क्या है?

प्रश्न 5. शंकरदेव ने सामाजिक समता के विषय में क्या विचार व्यक्त किए हैं?

सत्र-संस्कृति और लोक-संस्कार

वैष्णव धर्म के प्रचार के लिए शंकरदेव और माधवदेव जहाँ-जहाँ गए, वहाँ उन्होंने 'सत्र' की स्थापना की। सत्र वस्तुत: वैष्णव धार्मिक केंद्र होते हैं जहाँ भगवद-कीर्तन और सामूहिक भक्ति का आयोजन होता है। इन्हें 'कीर्तनघर' या 'नामघर' भी कहा जाता है। यह स्थान समाज के सभी वर्गों के लिए समान रूप से खुला होता है। यहाँ जाति-पांति और ऊँच-नीच का भेद स्वत: समाप्त हो जाता है। सभी लोग एक साथ बैठकर प्रसाद ग्रहण करते हैं, जिससे पारस्परिक प्रेम और सद्भाव बढ़ता है। सत्रों में विभिन्न धार्मिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों का भी आयोजन किया जाता है। पर्व-त्यौहारों को उत्साह के साथ मनाया जाता है। ऐसे अवसरों पर नाट्य-प्रदर्शन, कीर्तन, बरगीत गायन और सत्रीय नृत्य जैसे सांस्कृतिक कार्यक्रम भी होते हैं। इससे लोक-रुचि का विकास होता है और समाज में सांस्कृतिक चेतना जागृत होती है। आज भी सत्र-संस्कृति असम के जन-जीवन का अभिन्न अंग बन चुकी है। यही कारण है कि जहाँ कहीं कुछ असमिया परिवार बसते हैं, वहाँ शीघ्र ही एक कीर्तनघर की स्थापना हो जाती है, जो सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का केंद्र बन जाता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि महापुरुष शंकरदेव और उनके प्रमुख शिष्य माधवदेव द्वारा रचित शांकरी काव्य केवल धार्मिक भावना का ही प्रतीक नहीं है, बल्कि उसमें गहन सामाजिक, नैतिक और सांस्कृतिक चेतना भी निहित है। इस काव्यधारा का मूल आधार 'एकशरण' का सिद्धांत है, जिसमें भगवान कृष्ण की एकनिष्ठ भक्ति को ही मोक्ष का सरल और श्रेष्ठ मार्ग बताया गया है। इसके माध्यम से बहुदेववाद, जटिल कर्मकांड तथा धार्मिक आडम्बरों का खंडन किया गया और सामान्य जन के लिए सहज तथा सरल भक्ति मार्ग को स्वीकार करने का संदेश दिया गया।

शांकरी काव्य में मानवीय मूल्यों— जैसे दया, करुणा, परोपकार, सत्य, अहिंसा और संयम—को अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। इन गुणों के माध्यम से समाज में नैतिकता और मानवीय संवेदना को सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया गया। साथ ही जाति-पांति, ऊँच-नीच और सामाजिक भेदभाव का विरोध करते हुए समानता और समभाव की भावना को प्रतिष्ठित किया गया। भक्ति के क्षेत्र में सभी मनुष्यों को समान अधिकार प्रदान करना इस काव्यधारा की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। इसके अतिरिक्त सत्र-संस्कृति के माध्यम से धार्मिक उपासना के साथ-साथ सामाजिक एकता और सांस्कृतिक विकास को भी प्रोत्साहन मिला। कीर्तन, नाटक, बरगीत तथा

सत्रीय नृत्य जैसी कलाओं के माध्यम से लोक-रुचि का परिष्कार हुआ और समाज में पारस्परिक प्रेम तथा सद्भाव की भावना मजबूत हुई। शांकरी काव्य केवल भक्ति साहित्य की एक धारा नहीं, बल्कि सामाजिक समरसता, नैतिक जीवन और सांस्कृतिक जागरण का भी सशक्त माध्यम है, जिसने असम के जनजीवन को गहराई से प्रभावित किया और आज भी उसकी परंपरा समाज में जीवंत रूप से विद्यमान है।

10.4 महापुरुष शंकरदेव का काव्य-साहित्य: स्वरूप और विशेषताएँ

असम के महान संत, समाज-सुधारक और कवि महापुरुष शंकरदेव ने असमिया साहित्य को अत्यंत समृद्ध और व्यापक रूप प्रदान किया। उनके काव्य-साहित्य में मुख्यत: गीतात्मक रचनाएँ, स्वतंत्र काव्य-ग्रंथ तथा धार्मिक ग्रंथों के काव्यानुवाद प्राप्त होते हैं। इन रचनाओं में भक्ति-भावना, आध्यात्मिक चिंतन और समाजोपयोगी संदेश का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। शंकरदेव ने अपने साहित्य के माध्यम से वैष्णव भक्ति के सिद्धांतों को सरल और प्रभावशाली रूप में जन-सामान्य तक पहुँचाया। उनके काव्य-साहित्य की प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है-

(क) बरगीत

चरित-ग्रंथों में उल्लेख मिलता है कि शंकरदेव ने लगभग बाहर-कोटि अर्थात लगभग 240 बरगीतों की रचना की थी। दुर्भाग्यवश इन गीतों का अधिकांश भाग सुरक्षित नहीं रह सका। कहा जाता है कि 'कमला' नामक एक भक्त-गायक इन गीतों की पांडुलिपि को याद करने के उद्देश्य से अपने घर ले गया था। चैत महीने में उसके घर में आग लग जाने के कारण अन्य वस्तुओं के साथ बरगीतों की वह पोथी भी जलकर नष्ट हो गई। परिणामस्वरूप केवल चौबीस बरगीत ही सुरक्षित रह पाए, जो भक्तों के कंठों में जीवित थे।

यह भी उल्लेख मिलता है कि शंकरदेव ने अपना पहला बरगीत ''मन मेरि राम चरणेहि लागू'' अपने प्रथम तीर्थ-यात्रा के दौरान बदरिकाश्रम में रचा था। यह अनुमान करना असंगत नहीं होगा कि तत्कालीन प्रसिद्ध कवि विद्यापति की पदावली का प्रभाव बरगीतों की रचना पर पड़ा होगा। बरगीत मूलत: रागबद्ध भक्ति-गीत हैं और सत्र परंपरा में इनका विशेष महत्व है। इन्हें अत्यंत प्रतिष्ठित भक्ति-गीत के रूप में स्वीकार किया गया है। इनकी भाषा ब्रजबुलि या ब्रजावली कही जाती है।

बरगीतों के विषयों में मुख्यत: श्रीकृष्ण के रूप और सौंदर्य का वर्णन, उनकी विभिन्न लीलाएँ, संसार की अनित्यता, भक्ति का महत्व, आध्यात्मिक साधना, श्रीकृष्ण के वियोग में यशोदा और गोपियों की विरह-व्यथा तथा राम-भक्ति जैसे प्रसंग मिलते हैं। इन गीतों में कवि के अंतर्मन की भावनाओं का अत्यंत मार्मिक चित्रण हुआ है, जहाँ संगीत और अध्यात्म का अद्भुत संगम दिखाई देता है। भाव, भाषा, शैली तथा भक्ति की उदात्त अभिव्यक्ति के कारण बरगीत शंकरदेव की अत्यंत महत्वपूर्ण रचनाएँ मानी जाती हैं। उल्लेखनीय है कि उनके अंकिया नाटकों में भी पर्याप्त मात्रा में रागबद्ध गीतों का प्रयोग हुआ है।

(ख) भटिमा

'भटिमा' का अर्थ स्तुति या प्रशंसा-गीत होता है। संभवत: यह शब्द प्राचीन चारण कवियों द्वारा गाए जाने वाले स्तुतिपरक गीतों से संबंधित है। शंकरदेव की रचनाओं में तीन प्रकार की भटिमाएँ मिलती हैं-नाट-भटिमा, देव-भटिमा और राज-भटिमा। नाट-भटिमा उनके अंकिया नाटकों में प्रयुक्त होती है। देव-भटिमाओं में भगवान कृष्ण के चरित्र का संक्षिप्त वर्णन मिलता है, जबकि राज-भटिमाओं में कोच नरेश नरनारायण की प्रशंसा की गई है।

(ग) हरिश्चन्द्र उपाख्यान

'हरिश्चन्द्र उपाख्यान' को शंकरदेव की प्रारंभिक रचना माना जाता है। इसमें मार्कण्डेय पुराण में वर्णित राजा हरिश्चन्द्र की कथा को आधार बनाकर भगवान विष्णु की महिमा का प्रतिपादन किया गया है। लगभग 618 छंदों

में रचित इस काव्य में वैष्णव भक्ति की महत्ता को प्रमुख रूप से व्यक्त किया गया है। कथा के अंत में हरिश्चन्द्र के स्वर्गारोहण के बाद वशिष्ठ और विश्वामित्र के मध्य द्वंद्व-युद्ध की कल्पना कवि की मौलिक रचना है जिसने इस काव्य को अधिक रोचक और प्रभावशाली बना दिया है।

(घ) रुक्मिणी-हरण

यह काव्य मुख्यत: हरिवंश पुराण से प्रेरित है और इसके साथ कुछ प्रसंग श्रीमद्भागवत से भी जोड़े गए हैं। काव्य के आरंभ में कवि ने लिखा है-

'एके हरिवंश कथा अमृत साक्षात।
दुयों कथा पदबन्धे करो मिसलाई।
चेन मधुमिश्र दुग्ध स्वाद आति पाय।।'

इस काव्य में कुंडिलाधिपति भीष्मक की सुंदरी पुत्री रुक्मिणी के स्वयंवर का आयोजन, श्रीकृष्ण तक उनका संदेश पहुँचाना तथा श्रीकृष्ण द्वारा शिशुपाल, जरासंध और रुक्म को पराजित कर रुक्मिणी का हरण करने की कथा का अत्यंत आकर्षक वर्णन मिलता है। लगभग 796 छंदों में रचित इस काव्य में शशीप्रभा, सुमालिनी और वेदनिधि जैसे पात्र कवि की मौलिक कल्पना हैं। असम के प्राकृतिक सौंदर्य और स्थानीय परिवेश का चित्रण इसकी एक विशेष विशेषता है। इसमें श्रृंगार और वीर रस के साथ-साथ हास्य, रौद्र और भयानक रस के भी उदाहरण मिलते हैं।

(ङ) भक्ति-प्रदीप

यह काव्य गरुड़ पुराण के आधार पर रचा गया है। इसमें कृष्ण और अर्जुन के संवाद के माध्यम से भक्ति के विभिन्न सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है। लगभग 308 छंदों वाले इस काव्य में एकशरण धर्म, भागवत धर्म, परमब्रह्म का स्वरूप, भक्त के लक्षण, कर्मकांड का निषेध, श्रवण-भक्ति, स्मरण-भक्ति, कीर्तन तथा नाम-महिमा जैसे विषयों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

(च) कीर्तन-घोषा

'कीर्तन-घोषा' शंकरदेव की काव्य प्रतिभा का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह वैष्णव धर्म का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता है। असम के वैष्णव समाज में इसका सम्मान उसी प्रकार है जैसा उत्तर भारत में रामचरित मानस का है। इस काव्य में कुल 2264 छंद हैं और यह 189 कीर्तनों के 29 खंडों में विभाजित है। इसे संकीर्तन के उद्देश्य से रचा गया था। अधिकांश प्रसंग श्रीमद्भागवत से लिए गए हैं और उनमें श्रीकृष्ण की लीलाओं तथा वैष्णव भक्ति के महत्व को दर्शाया गया है। इसकी मुख्य विशेषता इसकी गेयता है।

(छ) गुणमाला

'गुणमाला' अपेक्षाकृत छोटी किंतु अत्यंत महत्वपूर्ण रचना है, जिसमें कुल 377 द्विपदियाँ हैं। यह व्यक्तिगत साधना और चिंतन के लिए अत्यंत उपयोगी काव्य है। एक प्रसिद्ध कथा के अनुसार कोचराज नरनारायण ने सभा में चुनौती दी कि कोई व्यक्ति हाथी को मारकर पिटारी में भरकर ला सकता है या नहीं। तब शंकरदेव ने एक ही रात में 'गुणमाला' की रचना करके उसे एक छोटी पिटारी में रखकर राजा को भेंट किया। इस अद्भुत काव्य को देखकर राजा अत्यंत प्रसन्न हुए और कवि की प्रतिभा की सराहना की। यह काव्य छह खंडों में विभाजित है। प्रथम खंड में नारायण तथा दशावतार का वर्णन है, जबकि दूसरे से छठे खंड तक श्रीमद्भागवत के दशम और एकादश स्कंध का सार प्रस्तुत किया गया है। इसमें एकशरण धर्म, भक्ति तथा नाम-महिमा के महत्व पर विशेष प्रकाश डाला गया है।

काव्यानुवाद

शंकरदेव ने श्रीमद्भागवत के अनेक स्कंधों-प्रथम, द्वितीय, तृतीय, षष्ठ, अष्टम, दशम, एकादश और

द्वादश—का काव्यात्मक अनुवाद प्रस्तुत किया। इनमें दशम स्कंध का विशेष महत्व है। इसमें विषय-विविधता, काव्य-सौंदर्य, वर्णन की स्वाभाविकता और गहन भक्ति-भाव का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। अन्य स्कंधों के अनुवादों में भी कवि ने अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। अनुवाद करते समय उन्होंने तत्कालीन धार्मिक जीवन की विसंगतियों को ध्यान में रखते हुए वैष्णव भक्ति का महत्व स्पष्ट किया है। समाज के विभिन्न वर्गों और समुदायों का उल्लेख भी मिलता है, जैसे-

'किरात कछारि खाचि गारो मिरि
धपन कंक गोवाल।
असम मलूक धुबा जे तुरूक
कुवाच म्लेच्छ चंडाल।।'

भागवत की कथाओं के आधार पर उन्होंने कई प्रसंगों को स्वतंत्र रूप में प्रस्तुत किया, जैसे अजामिल उपाख्यान, अमृत मंथन, बलिछलन, कुरुक्षेत्र तथा निमि-नवसिद्ध संवाद। इसी प्रकार 'रामायण' का उत्तरकांड भी उन्होंने अपनी व्यक्तिगत रुचि के अनुसार स्वतंत्र रूप में प्रस्तुत किया। शंकरदेव के काव्यानुवाद की प्रमुख विशेषता यह है कि उन्होंने जटिल और दार्शनिक विचारों को सरल भाषा में व्यक्त किया। अनेक स्थानों पर असमिया समाज की परंपराओं और जीवन-शैली का समावेश भी दिखाई देता है। भाषा के स्तर पर उन्होंने संस्कृत शब्दों की अपेक्षा असमिया और ब्रजबुलि शब्दों का प्रयोग किया तथा स्थानीय मुहावरों का भी सुंदर उपयोग किया। शंकरदेव का काव्य-साहित्य भक्ति, काव्य-सौंदर्य और सामाजिक चेतना का अद्भुत संगम प्रस्तुत करता है और असमिया साहित्य में एक महत्वपूर्ण और स्थायी स्थान रखता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि महापुरुष शंकरदेव का काव्य-साहित्य असमिया साहित्य और वैष्णव भक्ति परंपरा की अमूल्य धरोहर है। उनके काव्य में भक्ति, आध्यात्मिक चिंतन, सामाजिक चेतना और कलात्मक अभिव्यक्ति का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। उन्होंने अपने गीतों, मौलिक काव्यों तथा काव्यानुवादों के माध्यम से वैष्णव धर्म के सिद्धांतों को अत्यंत सरल, मार्मिक और प्रभावशाली रूप में जनसामान्य तक पहुँचाया। शंकरदेव के बरगीत, भटिमा, हरिश्चन्द्र उपाख्यान, रुक्मिणी-हरण, भक्ति-प्रदीप, कीर्तन-घोषा तथा गुणमाला जैसी रचनाएँ उनकी काव्य-प्रतिभा और धार्मिक दृष्टि का सशक्त प्रमाण हैं। इन कृतियों में श्रीकृष्ण-भक्ति, एकशरण धर्म, नाम-स्मरण तथा नैतिक जीवन के आदर्शों का प्रतिपादन किया गया है। साथ ही उनके काव्यानुवादों ने श्रीमद्भागवत जैसे महान ग्रंथों की शिक्षाओं को लोकभाषा में प्रस्तुत कर भक्ति को जनसामान्य के लिए सहज और सुलभ बनाया।

शंकरदेव का काव्य-साहित्य केवल धार्मिक भावना की अभिव्यक्ति नहीं है बल्कि वह समाज में नैतिकता, समरसता और सांस्कृतिक जागरण का भी सशक्त माध्यम है। उनकी रचनाएँ आज भी असम की सांस्कृतिक परंपरा, साहित्यिक धरोहर और भक्ति-साधना की प्रेरणा के रूप में अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती हैं।

5 महत्वपूर्ण बिंदु

बरगीत विभिन्न राग और तालों में बंधे हुए हैं। प्राचीन काल से ही असम में रागों का प्रयोग होता आ रहा है। किंवदंती है कि 'लेहिर तिरीये पंचराग बुजे' अर्थात 'लेहि के स्त्री पंचराग जानती है'। 'लेहि' बरपेटा एक छोटा सा अंचल है और कहा जाता है कि वहाँ के स्त्रियाँ भी पंचराग का ज्ञान रखती है। इसका यह अर्थ निकलता है कि असम के आम लोगों में भी राग प्रचलित था। शंकरदेव और माधवदेव के बरगीतों में विभिन्न रागों का प्रयोग हुआ हैं। शंकरदेव के बरगीतों में प्रयुक्त राग इस प्रकार के हैं- कल्याण, गौरी, बसंत, तूर बसंत, धनश्री, केदार, मल्लार, सुहाई, भूपाली आदि। उसी प्रकार माधवदेव द्वारा प्रयुक्त रागों का नाम इस प्रकार के हैं- श्याम, गौरी, भाटियाली, धनश्री, वसंत, आशोवारी, केदार, बेलोवार, कानाड़ा,

मल्लार, सिंधुरा, सुहाई आदि। बरगीतों में तालों की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। रागों के तरह बरगीत विभिन्न तालों के साथ गाए जाते है। जैसे- परिताल, एकताल, रुपक, रचक, धरमजोति, सरुविषम, खरमान आदि।

10.5 'मन मेरि राम चरणहि लागु' मूलपाठ और शब्दार्थ

राग- धनश्री

ध्रुः मन मेरि राम चरणहि लागु।
तइ देखना अन्तक आगु॥

पदः

मन आयु क्षणे क्षणे टूटे।
देखु प्राण कोन दिने छूटे॥

मन काल अजगरे गिले।
जान तिलेके मरण मिले॥
मन निश्यय पतन काया।
तइ राम भज तेजि माया॥
रे मन इसब विषय धान्धा।
केने देखि नेदेखस आन्धा॥
मन सुखे पार कैछे निन्द।
तइ चेतिया चिन्त गोविन्द॥
मन जानिया शंकरे कहे।
देखा राम बिने गति नहे॥

शब्दार्थः

अन्तकः मृत्यु, आयुः जीवनकाल, टूटेः घट रहा है, छूटेः छूट जाना, अजगरेः साँप (अजगर), तिलेकेः क्षण भर, कायाः शरीर, तेजिः त्याग कर, मायाः सांसारिक मोह, विशयः सांसारिक सुख, धान्धाः उलझन, केनेः क्यों, चेतियाः सचेत होकर

10.6 'मन मेरि राम चरणहि लागु' सारांश

'मन मेरि राम चरणहि लागु।
तइ देखना अन्तक आगु।'

व्याख्या- शंकरदेव यहाँ अपने मन को सम्बोधित करते हुए कहते है कि हे मेरे मन भगवान के चरणों में जाओ अर्थात उनकी भक्ति में लीन हो जाओ। तु देख कि तेरे सन्मुख मृत्यु खड़ी है और इस समय राम सिवा कोई दूसरा उपाय नहीं। इसलिए समय रहते ईश्वर के शरण में जाओ।

मन आयु क्षणे क्षणे टूटे।
देखु प्राण कोन दिने छूटे॥

व्याख्या- हे मेरे मन, हर क्षण आयु कम होती जा रही है। कब यह प्राण शरीर त्याग दे कोई भरोसा नहीं। अर्थात- हर दिन बीतने के साथ हम मृत्यु के पास आगे बढ़ रहे है इसलिए जितना भी समय हम इस संसार में है उसे भगवान का नाम लेते व्यतीत करे।

मन काल अजगरे गिले।

जान तिलेके मरण मिले॥

व्याख्या- हे मेरे मन, समय एक विशाल अजगर की भाँति हमें निगल रहा है। तू यह जान ले कि किसी भी क्षण मृत्यु आ सकती है।

मन निश्यय पतन काया।
तइ राम भज तेजि माया॥

व्याख्या- यहाँ शंकरदेव कह रहे है कि यह शरीर निश्चित रूप से नष्ट होने वाला है। अर्थात निश्चित रूप से हमें एक दिन ये संसार छोड़ कर जाना है। इसलिए जितना समय हम यहाँ है झूठी माया-मोह त्याग कर केवल राम का भजन करना उचित है।

'रे मन इसब विषय धान्धा।
केने देखि नेदेखस आन्धा।'

व्याख्या- हे मन यह सांसारिक सुख, भोग-विलास केवल मात्र उलझन है। सत्य सामने होते हुए भी तू उसे देख नहीं पा रहा। अर्थात हम सबकुछ जानकर भी इस संसार के मोह में उलझते रहते है।

मन सुखे पार कैछे निन्द।
तइ चेतिया चिन्त गोविन्द॥

व्याख्या- हे मन तू कैसे सुख की नींद में खोया हुआ है? अब समय आ गया है। तू जाग जा और गोविन्द का चिन्तन कर।

'मन जानिया शंकरे कहे।
देखा राम बिने गति नहे।'

व्याख्या- अंत में शंकरदेव कहते है कि मैं सबकुछ जान कर कह रहा हूँ। भगवान राम के बिना और कोई सहारा नहीं। राम के बिना इस संसार सागर को पार करने का कोई दूसरा उपाय नहीं है।

10.7 सारांश

'मन मेरि राम चरणहि लागु' इकाई में महापुरुष शंकरदेव के काव्य, उनकी भक्ति भावना तथा उनके सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण का परिचय प्रस्तुत किया गया है। इस इकाई के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि शंकरदेव केवल एक महान संत और कवि ही नहीं थे, बल्कि समाज सुधारक भी थे। उन्होंने अपने काव्य और धार्मिक विचारों के माध्यम से असम के समाज में भक्ति, नैतिकता और समानता की भावना का प्रसार किया। उनके साहित्य में मानवता, सरलता, सदाचार और ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण की भावना प्रमुख रूप से दिखाई देती है।

महापुरुष शंकरदेव के काव्य-साहित्य के स्वरूप और विशेषताओं पर विचार करते हुए यह बताया गया है कि उनका काव्य सरल, सरस और जनसामान्य की भाषा में रचित है। उनके गीत, भजन और काव्य में भक्ति-भाव, आध्यात्मिक चेतना तथा नैतिक शिक्षाएँ समाहित हैं। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से समाज को आडंबरों और कर्मकांडों से दूर रहकर सच्ची भक्ति का मार्ग अपनाने की प्रेरणा दी।

'मन मेरि राम चरणहि लागु' मूलपाठ में भक्त की उस गहन भावना को व्यक्त किया गया है जिसमें वह अपने मन को भगवान राम के चरणों में अर्पित करना चाहता है। इस पाठ में प्रयुक्त शब्दों और भावों के माध्यम से भक्ति की सरल और गहन अभिव्यक्ति दिखाई देती है, जिसे समझने के लिए शब्दार्थ भी प्रस्तुत किए गए हैं। इस इकाई में 'मन मेरि राम चरणहि लागु' के भावार्थ और सार के माध्यम से शंकरदेव की भक्ति भावना, उनके काव्य की विशेषताएँ तथा उनके सामाजिक-सांस्कृतिक योगदान को स्पष्ट किया गया है। यह पाठ भक्ति साहित्य

की महत्ता को समझाने के साथ-साथ आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों की ओर भी संकेत करता है।

K 10.8 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर: 'मन मेरि राम चरणहि लागु' बरगीत के रचयिता महापुरुष शंकरदेव हैं। यह उनका पहला बरगीत माना जाता है, जिसे उन्होंने बदरिकाश्रम की यात्रा के दौरान रचा था।

प्रश्न 2 का उत्तर: शंकरदेव ने नव-वैष्णव आंदोलन के माध्यम से असम के समाज को एकशरण-नाम-धर्म के सिद्धांत में संगठित किया, जिसमें केवल एक परम देव की शरण ग्रहण करने और उनके नाम-स्मरण पर बल दिया गया है।

प्रश्न 3 का उत्तर: विद्वानों ने बरगीतों को मुख्यत: लीला, विरह, बिरक्ति, परमार्थ, चोर और चातुरी आदि श्रेणियों में विभाजित किया है।

प्रश्न 4 का उत्तर: एकशरण' का अर्थ है संसार रूपी दुर्गम सागर से पार होने के लिए केवल भगवान श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण करना और उनके नाम का स्मरण करते हुए भक्ति करना।

प्रश्न 5 का उत्तर: शंकरदेव ने जाति-भेद का विरोध करते हुए कहा कि भक्ति किसी जाति या वर्ग से बंधी नहीं है। उनके अनुसार सभी मनुष्य समान हैं और प्रत्येक प्राणी में भगवान का ही निवास है, इसलिए सभी के साथ समान व्यवहार करना चाहिए।

5 10.9 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- नेउग, महेश्वर (1987). श्रीश्री शंकरदेव. गुवाहाटी: चंद्र प्रकाशन।
- चौधरी, भूपेन्द्र राय (2002). श्रीमंत शंकरदेव व्यक्तित्व और कृतित्व, गुवाहाटी।
- बरा, शिवनाथ (2008). श्रीमंत शंकरदेव कृति आरू कृतित्व, गुवाहाटी।
- चौधरी, रामानंद (1956). श्रीश्री शंकरी धर्म और भक्तिसार, गुवाहाटी: ज्योति प्रकाशन।
- महंत, बापचंद (2008). बरगीत, गुवाहाटी: स्टूडेंट्स स्टोर।
- शैकिया, नुरुल इस्लाम (2013). महान असमिया व्यक्ति चिरिज, गुवाहाटी।
- शर्मा, सत्येन्द्रनाथ (1991). असमिया साहित्यर समीक्षात्मक इतिवृत्त, गुवाहाटी।
- दास, स्वप्नाली (2025) इलाराम दास जीवन और कृति, शब्द भारती प्रकाशन।
- दस, श्री रामप्रसाद: महापुरुष श्रीश्री शंकरदेव- श्रीश्री माधवदेव, गुवाहाटी।
- हजारिका, प्रदीप, बरा, इंदिरा शैकिया: महापुरुष शंकरदेव-माधवदेवर अंकिया नाट आरू झुमुरा।

M 10.10 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. नव-वैष्णव आंदोलन के माध्यम से असम के समाज में किस प्रकार की सांस्कृतिक चेतना का विकास हुआ?
2. बरगीतों की भाषा को क्या कहा जाता है और इसकी विशेषता क्या है?
3. शांकरी काव्य में नैतिक मूल्यों का क्या महत्व बताया गया है?
4. सत्र या कीर्तनघर का असमिया समाज में क्या महत्व है?
5. 'मन मेरि राम चरणहि लागु' बरगीत में मानव जीवन की नश्वरता को किस प्रकार व्यक्त किया गया

है?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. महापुरुष शंकरदेव के काव्य में सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. महापुरुष शंकरदेव के काव्य-साहित्य के स्वरूप और प्रमुख विशेषताओं का विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिए।
3. शांकरी काव्य में नैतिक मूल्यों तथा सामाजिक समता की स्थापना किस प्रकार की गई है? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
4. 'मन मेरि राम चरणहि लागु' बरगीत के मूल भावों और दार्शनिक संदेश की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
5. असमिया समाज के सांस्कृतिक विकास में सत्र-संस्कृति और बरगीतों की भूमिका का विस्तार से वर्णन कीजिए।

****

इकाई-11 रघुनाथ चौधरी की कविता (कविता, शब्दार्थ, सारांश)

इकाई की रूपरेखा

11.1 उद्देश्य
11.2 प्रस्तावना
11.3 कवि का परिचय
    11.3.1 कविताओं का परिचय और विशेषता
11.4 भिक्षा
    11.4.1 कविता का मूलभाव
11.5 कविता की सामान्य आलोचना
11.6 प्रगति विवरण
11.7 अधिक जानने के लिए पढ़े
11.8 अभ्यास प्रश्न

11.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

- रघुनाथ चौधारी के बारे में जानकारी प्राप्त करना।
- 'विहगी कवि' के रूप में ख्यात रघुनाथ चौधारी के विषय में जानकारी प्राप्त होगा।
- असमिया साहित्य में रघुनाथ चौधारी के स्थान के बारे में जानना।
- रघुनाथ चौधारी के कविताओं में निहित विशेषताओं से परिचय प्राप्त होगा।
- कवि का जीवन दर्शन, आदर्श के बारे में जानकारी प्राप्त होगा।
- रघुनाथ चौधारी के कविताओं में निहित भाव के बारे जानना।
- 'भिक्षा' कविता का मूलभाव तथा कवि के व्यक्तिगत जीवन की चिंताधारा के विषय में ज्ञान प्राप्त होगा।

11.2 प्रस्तावना

असमिया कवियों में अन्यतम प्रमुख कवि है रघुनाथ चौधरी। रघुनाथ चौधरी ने अपने कविताओं के माध्यम से असम की संस्कृति-सभ्यता, प्रकृति का बड़ा ही मनोरम रूप अभिव्यक्त किया है। असम के प्राकृतिक सौंदर्यता का अनुभव करते हुए आर्य भाषाओं के भीतर प्रथम रामायण का अनुवाद करने वाले माधव कंदली के बाद प्रकृति के कवि रघुनाथ चौधरी का नाम लिया जा सकता है। रघुनाथ चौधरी की कविताओं में विशेष रूप से फूल और पक्षी के प्रति उनके आकर्षण देखने को मिलता है। उनके द्वारा लिखित प्रसिद्ध कविता 'केतेकी', 'मरमर पखी', 'गोवाहे एवार मोर प्रिय बिहंगिनी', 'दहिकतरा' आदि में बिहंग या पक्षी की दृष्टि से पृथ्वी की सौंदर्यता का वर्णन कवि ने किया है। बिहंग या पक्षी के साथ उनकी आत्मीयता के कारण ही असमिया साहित्य में रघुनाथ चौधरी को 'बिहगी कवि' कहा जाता है। इस इकाई के अंतर्गत कविता 'भिक्षा' के माध्यम से कवि ने पक्षी और पकृति के विपरीत जीवन दर्शन, व्यक्तिगत चिंता धारा को सुंदर ढंग से व्यक्त किया है।

11.3 कवि का परिचय

असमिया काव्य जगत का एक उल्लेखनीय नाम है रघुनाथ चौधरी। उनका जन्म असम के नलबाड़ी जिले

के मुकालमुवा के नजदीक लाउपारा नामक ग्राम में सन् 1878 को हुआ था। वे भोलानाथ चौधरी और दयालता चौधरी की तृतीय तथा कनिष्ठ संतान है। बचपन में ही घर के आंगन में गिरने के कारण उन्होंने अपने दोनों पेर गवा दिए और इस दुर्घटना के कारण आजीवन उन्हें दिवांग्य के रूप में कष्ट सहना पड़ा। चार साल की उम्र में उन्होंने अपनी माँ, बहन और बड़े भाइ को खो दिया। कुछ दिनों बाद सन् 1899 में पितृ को भी खोकर वे एकदम अकेले हो गए। उनका व्यक्तिगत जीवन बड़ा ही कष्टमय होने के कारण उन्हें कम उम्र में ही पढ़ाई छोड़नी पड़ी। पिता की मृत्यु के बाद उन्होंने गुवाहाटी के उजान बजार में स्थित एक बालिका प्राथमिक विद्यालय से अपने कर्म जीवन की शुरूवात की। सन् 1903 में वे गुवाहाटी के रोमान केथलिक मिचनारी बालिका विद्यालय के प्रधान शिक्षक बने।

महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन में भाग लेने के कारण सन् 1921 में उन्हें चौदह महीने के लिए जेल में भी रहना पड़ा। सन् 1936 में असम साहित्य सभा के तेजपुर में होनेवाले अधिवेशन के सभापति पद को सुशोभित किया। सन् 1948 में विश्व शांति परिषद के असम शाखा के सभापति, सन् 1952 में सर्वभारतीय शांति परिषद के कोलकाता में होनेवाले अधिवेशन के कृष्टि शाखा के सभापति रहे। सन् 1867 के 18 नवम्बर में उनका देहांत हुआ।

रघुनाथ चौधारी रोमानी कवि थे। रोमानी कविता में पकृति को अधिक गुरुत्व दिया जाता है। पकृति के फल-फूल, पैड़-पोधा, जीव, चिरियां आदि को महत्व रख कर कविता रचना किया जाता है। व्यक्तिगत जीवन, आवेग-अनुथूति आदि को प्रकृति के जरिए प्रकाशित किया जाता हैं। रघुनाथ चौधारी के समय का अन्य रोमानी कवि के बारे में कहे तो चंद्रकुमार आगरवाला, लक्ष्मीनाथ बेजबरुव, हेमचंद्र गोस्वामी आदि के नाम कह सकते हैं। रोमानी काव्यधारा के भावयुक्त कवि रघुनाथ चौधारीने 'सादरि' (1910), 'केतेकी' (1918), 'कारबाला' (1923), 'दहिकतरा' (1931), 'नवमल्लिका' (1958) आदि काव्य संग्रहों की रचना की है। उन्होंने 'जोनाकी', 'बाँही', 'जयंती', 'सुरभि' आदि पत्रिकाओं के सम्पादन करने के साथ-साथ पत्रकार का भी काम किया है। 'पचतीया' नाम से गद्य संग्रह और 'मनाइ बरागी' नाम से काव्य संग्रह उनके मृत्यु के बाद प्रकाशित हुआ।

5 महत्वपूर्ण बिंदु

घुनाथ चौधरी 'जोनाकी युग' के उन प्रमुख कवियों में से एक हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से असमिया रोमांटिक साहित्य को समृद्ध किया। विश्व साहित्य की ओर देखने पर यह स्पष्ट होता है कि कवि और साहित्यकारों को उनकी रचनाओं की विशेषताओं के आधार पर विशेष उपाधियों से विभूषित किया जाता है। जैसे कालिदास प्रेम और सौंदर्य के कवि माने जाते हैं, विलियम वर्ड्सवर्थ प्रकृति के कवि, और सैम्युअल टेलर कोलरिज अलौकिकता के कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं; उसी प्रकार असमिया साहित्य में रघुनाथ चौधरी को 'बिहगी कवि' के रूप में जाना जाता है।

11.3.1 रघुनाथ चौधारी की कविताओं की विशेषताएँ

रघुनाथ चौधरी की कविताओं में रोमानी कविताओं की सभी विशेषताएँ देखने को मिलती है। रोमानी कविताओं में प्रकृति, व्यक्तिगत आशा-आकांक्षा को विशेष स्थान दिया जाता है। रघुनाथ चौधरी ने भी अपने व्यक्तिगत जीवन से जुड़ी बातों का उल्लेख कविताओं के जरिए किया है। रघुनाथ चौधरी प्रकृति के पुजारी थे। उन्होंने प्रकृति प्रेम, विशेष रूप से फूल और पक्षी को लेकर अनेक कविताओं की रचना की है। उनके कविता संग्रहों का नामकरण भी फूल और पक्षी संबंधी है। जैसे- गिलिमल्लिका, दहिकतरा, नवमल्लिका, केतेकी आदि। पक्षी, फूल, प्रकृति के माध्यम से उनकी व्यक्तिगत आवेग-अनुभूति बहुत ही सुंदर ढंग से अभिव्यक्त हुई है। उन्होंने कविताओं के जरिए इंद्रियता और इंद्रिय विमुखता दोनों रूपों का सजीव चित्रण किया है। पक्षी और फूल के माध्यम से धरती को नये रूप में देखने का प्रयत्न किया है। माया युक्त धरती से उन्हें ज्यादातर दुख ही मिला लेकिन फिर भी दुख में ही सुख का संधान करते हुए आशावादी बनकर सुख की प्राप्ति की है। कुछ

कविताओं में इंद्रिय विमुखता को ग्रहण करते हुए, संसार से मिलने वाले दुख-वेदनाओं को व्यक्त करते हुए सांसारिक लालसा के प्रति वैराग्य को अभिव्यक्त किया है। फिर भी उनके ऐसे कविताओं के अंत में निराशा के मध्य आशा का संचार देखा जाता है। ऐसे कविताओं में भिक्षा, विषाद, वैराग्यर कथा आदि कविताओं का नाम लिया जा सकता है।

इसलिए कहा जा सकता है कि रघुनाथ चौधरी की कविताओं ने रोमानी कविताओं के अन्यतम लक्षण प्रकृति प्रेम, आशावाद, सौन्दर्यता बोध आदि के माध्यम से असमिया कविता को एक नई दिशा प्रदान की है। भारतीय दर्शन के अंतर्गत चिंता दर्शन, वैराग्य चिंताधारा को प्रकृति प्रेम के साथ जोड़ते हुए कवि ने व्यक्तिगत जीवन के अनेक पहलूओं का सार्थक चित्रण किया है। उनकी कविताओं की अन्यतम विशेषता है भाषा की सरलता।

w अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1: रघुनाथ चौधरी को असमिया साहित्य में किस विशेष उपाधि से जाना जाता है?

प्रश्न 2: रघुनाथ चौधरी की कविताओं में किस तत्व का विशेष रूप से चित्रण मिलता है?

प्रश्न 3: रघुनाथ चौधरी के जीवन में आई किसी एक प्रमुख कठिनाई का उल्लेख कीजिए।

प्रश्न 4: रघुनाथ चौधरी ने किन-किन साहित्यिक विधाओं में कार्य किया?

प्रश्न 5: रघुनाथ चौधरी की कविताओं की भाषा की क्या विशेषता है?

11.4 भिक्षा (कविता)

नालागे तोमार प्रभु ऐश्वर्य-विभूति
राजपद, सम्मन, गौरव,
दारिद्रयर लाओलोटा भिक्षार सँजुलि
सेये मोर अतुल वैभव।

नलओं डिडित आँरि सम्भ्रमर माला
भावों ताक अति हेय बुलि,
अपमान, अपयश, लांछना शिरत
सलम प्रभु आग्रहेरे तुलि।

उच्चाकांक्षा नाइ प्रभु, क्षुद्र हर्दयत
करा मोक सकलोरे सरु;
माज पथारत जेने थाके अकलइ
पत्र-पुष्प-फलहीन तरु।

नालागे तोमारप्रभु पार्थिव सम्पद
दुदिनीया सुखर बाहानि,
अकलशरीया करि माज वाटतेइ
एरि थइ जाय बा काहानि!

नालागे सुंदर देह कांति कमनीय
धुन-पेंच, आनंद-बिलास;
रुपर छ्लना मात्र मोहर बिकार
सिबोरत नाइ अभिलाप।

पिशाचिनी कामनाक दिछों आँतराइ
ताइ मोक दिछे बहु दुख,
शरीर शिँयरि उठे परिले मनत
राक्षसीर कदाकार मुख।

समुखत धनर जि आछे अंधकूप
तत जेन निपिछले भरि;
चिरदिन चिरदुखी हम लागे प्रभु
अभवर यंत्रणात परि।

यदिओ भ्रमत परि पिओं हलाहल
हियाखनि परि जाय कला;
निरले सहिम प्रभु तोमार काषत
आनंदत थाकिम मगन।

मुखर हाँहिटि यदि सिओ मार जाय
छिन्न हय आशा–लताजुपि,
सान्त्वना दिओंता मोर आछे लगरीया
बिषादर चकुलो एटुपि।

आशा–सुख, शांति–प्रेम, बासना–तृपिति
सकलो जे मरीचिका भ्रम;
बहुरुपी हइ मोक भुवा दि माथोन
ओपजाय चिंतन बिभ्रम।

सिकारणे सुख बांछा नकरों, नालागे
निबिचारों पोहरर फाल;
दलियाइ दिलों जय बस्तु मरमर
मोर पक्षे आंधारेइ भाल।

जय दिया दुख दैन्य कांधत चपाइ
नानो एको बेजार मनत,
तोमारे बिभूति जानि सकलो सहिम
जतदिन थाकों संसारत।

सुख–दुख, हाँहि–अश्रु, हर्ष ब बिषाद
तोमातेइ उद्भव बिलय;
अनुकूल, प्रतिकूल तुमिये जीवर
सकलोते देखों तुमिमय।

दयामय! मागों एटि चरण्त भिक्षा
दिया मोक प्राणत आश्वास;
शिलर रेखार दरे तोमाते सदाय
थाके जेन अटल विश्बास।

11.4.1 कविता का मूलभाव

रघुनाथ चौधरी ने अपनी कविता भिक्षा के माध्यम से जीवन के दर्शन का एक गहन अनुभव प्रकाशित किया है। पंद्रह पदों से युक्त इंद्रिय विमुख भाव प्रकाशित एक सार्थक कविता है भिक्षा। उनकी कविताओं में पक्षी और प्रकृति को स्थान मिला है, फिर भी कामविहीन प्रेम, सांसारिक भोग- लालसा के प्रति उदासीनता और संसार सिक्त जीवन के प्रति कामना इस कविता में व्यक्त हुई है। इस कविता में कवि ने सुख-दुख, हँसी-क्रंदन, अच्छा-बूरा आदि जीवन विरोधी तत्वों के बीच जीने की प्रेरणा का उल्लेख किया है। कवि के मन में प्रकाशित गभीर वेदना ने सभी लोगों को चिंतित किया है।

इस कविता में कवि ने जीवन के सुख-दुख के बीच एक गहन सम्पर्क स्थापित किया है। कवि के शब्दों में-

सुख-दुख, हाँहि-अश्रु, हर्ष-विषाद
तोमातेइ उद्भव बिलय

मानवीय अभिज्ञता, जीवन की वेदना, वेदना से उद्भव होनेवाली चिंताशीलता और दुख-कष्ट को सहते हुए भी शांतिपूर्वक जीवन जीने की शक्ति का उल्लेख कवि ने इस कविता के माध्यम से बड़ी ही सुंदर ढ़ंग से व्यक्त किया है। पृथ्वी के सभी विरोधी सत्ताओं को एकत्रित रूप में दिखाते हुए कवि ने दुख में भी सुख की खोज की है। कवि को अपने व्यक्तिगत जीवन में मिलने वाली अभिज्ञता, ह्रदय की वेदना, दुख-कष्ट को एक चिंताशील स्तर तक ले जाकर वेदना के बीच भी शांति का अनुभव किया है। कविता में भले ही कवि की वेदना अभिव्यक्त हुई है, फिर भी वेदना के माध्यम से कवि ने आशावाद का संचार किया है। कवि के अनुसार लोग जीवन के सभी कठिन परिस्थितिओं में भी सुखी रह सकते हैं। दुख-वेदना के मध्य ईश्वर का स्मरण और चरण भिक्षा के द्वारा आशा और सुख का अनुभव किया जा सकता है। ईश्वर की चरण भिक्षा और चरणों का स्मरण करने से ही कवि को परम शांति और सुख की प्राप्ति हुई है। इसी तरह कवि ने दुख-वेदना के जरिए व्यक्तिगत जीवन की उपलब्धि, दुख-वेदना के मध्य भगवान का स्मरण करते हुए सुख की प्राप्ति की है और कवि ने ईश्वर के प्रति भक्ति तथा चरणों भिक्षा मांगी है।

11.5 'भिक्षा' कविता की सामान्य आलोचना

रघुनाथ चौधुरी की कविताओं में प्रकृति प्रीति की बहुत ही मनोरम झाँकी देखने को मिलती है। विशेष रूप से प्रकृति के उपादान फूल और पक्षी को लेकर उन्होंने बहुत सी कविताओं की रचना की है। फूल और पक्षी के जरिए धरती को नए रूप से सजाकर उन्होंने वेदना के बीच भी आशा को संचारित किया है। उनके द्वारा लिखित कुछ कविता इंद्रिय सजग है और कुछ इंद्रिय विमुख है। इंद्रिय विमुख कविताओं में भिक्षा कविता भी अन्यतम है। संसार से बहुत दुख मिलने पर भी संसार और जीवन उन्हें पसंद है। उन्होंने इस संसार से धन-सम्पदा, सम्मान, गौरव की चाह नहीं की है। अगर संसार और समाज से उन्हें अपमान, अपयश, लाज मिले तो वे उसे स्वीकार करेंगे। अर्थात् सभी चिजों के प्रति उनके मन में वैराग्य की भाव है। उनके अनुसार अकेलेपन का जीवन ही श्रेष्ठ है-

नालागे सुंदर देह क्रांति कमनीय
धुन-पेंच, आनंद-विलास
रूपर छलना मात्र मोहर विकार
सेइबोरत नाइ अभिलाष

कवि के अनुसार संसार की माया-मोह, पिशाच रूपी लोभ-कामना का कभी अंत नहीं होता। कविता के जरिए कवि का वैरग्य जीवन भी प्रकाशित होते देखा जाता हैं-

पिशाचिनी कामनाक दिछों आँतराइ
ताइ मोक दिछे बहु दुख
शरीर शियँरी उठे परिले मनत
राक्षसीर कदाकार मुख।

संसार की कोई भी दुख कवि को दुखी नहीं कर सकती, कवि का मन दुख झेलते - झेलते बहुत कठोर हो गया है। सभी प्रकार के दुख-यातनाओं को सहन करने के लिए कवि प्रस्तुत है। इसलिए वे दुख-यातनाओं के बीच भी आनंद में रहते हैं।

भूगिछों, भूगिम आरू दग्ध ह्रदयत
शत शत वृश्चिक दंशन
नकराँ बेजार प्रभु तोमार काषत
आनंदत थाकिम मगन।

कवि के अनुसार सुख, आशा, शांति-आनंद, प्रेम, तृप्ति, वासना सब मन का भ्रम है, कोई भी स्थायी नहीं है। यह सब कवि के मन में भ्रम उत्पन्न करते हैं। इसलिए कवि कभी भी सुख, आनंद आदि की आशा नहीं करते, बल्कि उनके अनुसार दुख ही अच्छा है। सुख हो या दुख सब की उद्भव ईश्वर द्वारा ही होता है, इसलिए अंत में कवि ने ईश्वर की चरणों की भिक्षा माँगी है। ईश्वर की चरणों की कृपा मिलने पर वे संसार के सभी दुखों से मुक्त हो जाऐंगे।

दयामय! माँगो एटि चरणत भिक्षा
दिया मोक प्राणत आश्वास;
शिलर रेखार दरे तोमाते सदाय
थाके येन अटल विश्वास।

भारतीय दर्शन के वैराग्य भाव के जरिए अंत में आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर होकर प्रवल आशा के साथ जीने की सुंदर प्रेरणा भिक्षा कविता में व्यक्त हुआ है।

K 11.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर: उन्हें 'बिहगी कवि' के नाम से जाना जाता है।

प्रश्न 2 का उत्तर: उनकी कविताओं में प्रकृति, विशेषकर फूल और पक्षियों का सुंदर चित्रण मिलता है।

प्रश्न 3 का उत्तर: बचपन में दुर्घटना के कारण उन्होंने अपने दोनों पैर खो दिए और जीवनभर दिव्यांगता का कष्ट सहा।

प्रश्न 4 का उत्तर: उन्होंने काव्य-रचना के साथ-साथ पत्रिका संपादन और पत्रकारिता के क्षेत्र में भी कार्य किया।

प्रश्न 5 का उत्तर: उनकी कविताओं की भाषा सरल, सरस और सहज रूप से समझ में आने वाली है।

5 11.7 अधिक जानने के लिए पढें

असमिया ग्रंथ:

1. अतुल चंन्द्र बरुवा (सम्पा.) : रघुनाथ चौधारी रचनावली, ज़ोरहाट: असम सहित्य सभा, 1980
2. करवी डेका हाजारिका: असमिया कबि आरु कबिता, बनलता: डिब्रुगड़, 2008
3. करवी डेका हाजारिका: असमिया कबिता, बनलता: गुवाहाटी, 1998

4. महेश्वर नेउग: असमिया साहित्यर रूपरेखा: चंद्र्प्रकाश: गुवाहाटी, 2000
5. सतेंद्रनाथ शर्मा: असमिया साहित्यर समीक्षात्मक इतिबृत्त: सोमार प्रकाश: गुवाहाटी, 2006

M11.8 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. रोमानी कविता के दो वैशिष्ट लिखिए।
2. दो रोमानी कवि के नाम लिखिए।
3. 'विहगी' शब्द का अर्थ क्या है?
4. रघुनाथ चौधारी के कवितायों का विषयवस्तु क्या है?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. रघुनाथर चौधारी के कवि प्रतिभा के बारे में आलोचना कीजिए।
2. रघुनाथर चौधारी कविताओं के बैशिष्ट के बारे में लिखिए।
3. असमिया साहित्य में 'बिहगी कवि'कौन है? क्यों ''बिहगी कवि'' कहते है?
4. ''भिक्षा'' कविता का मुलभाव लिखिए।
5. 'भिक्षा' कविता में कवि बैराग्य भाव किस प्रकार कविता के जरिए प्रकशित हुआ है, बिस्तार से समझाइए।
6. सप्रसंग व्याख्या कीजिए?

(क) नलओं डिडित आँरि सम्भ्रमर माला
भावों ताक अति हेय बुलि,
अपमान, अपयश, लांछना शिरत
लम प्रभु आग्रहेरे तुलि।

(ख) पिशाचिनी कामनाक दिछों आँतराइ
ताइ मोक दिछे बहु दुख,
शरीर शिँयरि उठे परिले मनत
राक्षसीर कदाकार मुख।

(ग) सुख-दुख, हाँहि-अश्रु, हर्ष ब बिषाद
तोमातेइ उद्भव बिलय;
अनुकूल, प्रतिकूल तुमिये जीवर
सकलोते देखों तुमिमय।

****

इकाई-12 जनमभूमि (नलिनीवाला देवी)

इकाई की रूपरेखा

12.1 उद्देश्य
12.2 प्रस्तावना
12.3 कवि परिचय
12.4 मूलपाठ
12.5 भावार्थ
12.6 सारांश
12.7 प्रगति विवरण (केवल रुपरेखा)
12.8 अधिक जानने के लिए पढ़ें
12.9 अभ्यास प्रश्न

12.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

- आधुनिक असमिया काव्योतिहास के बारें में जान सकेंगे।
- असमिया साहित्यिकों के बारें में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- कवि नलिनीवाला देवी के बारें में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- असमिया देशप्रेम कविता का एक आभास मिलेगा।
- असमिया आधुनिक युग के कुछ विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करेंगे।

12.2 प्रस्तावना

हम सभी को पता हैं कि असमिया साहित्य का शुरुआत महापुरुष शंकरदेव के समय से ही शुरू हो गयी थी। सन 1900 तक आते आते असमिया काव्य जगत में काफी विद्वानों का आगमन हुआ और उनकी साहित्यिक देन ने असमिया साहित्य का सफर और भी मधुर बनाया था। आधुनिक काल का आरंभ जोनाकी पत्रिका से हुआ और इसलिए इस युग को जोनाकी युग के नाम से भी जाना जाता है।

12.3 कवि परिचय

असम के महिला कवयत्रियों में अन्यतम कवयत्री है नलिनीवाला देवी। उनका जन्म हुआ था सन 1818 में बरपेटा शहर (उस समय के कामरूप जिला के अंतर्गत) में हुआ था। उनके पिता का नाम कर्मवीर नवीनचंद्र बरदलै था। नवीनचंद्र बरदलै सिर्फ असम राज्य के ही नहीं, भारतवर्ष के धुरंधर राजनीतिज्ञों में से थे। स्वाधीनता आन्दोलन को असम में असम में व्यापक बनाने का श्रेय कर्मवीर बरदलै को ही है।

नलिनीवाला देवी ने अपने बचपन से ही कविता लिखना प्रारम्भ किया था। काव्य शिक्षा से उन्हें इस क्षेत्र में प्रोत्साहन मिला। काव्य शिक्षा से उन्हें इस क्षेत्र में प्रोत्साहन मिला। उनकी प्रारम्भिक कविताएं 'पिता', 'संध्या' आदि उस समय की पत्रिकाओं में प्रकाशीथुई और उसी समय से शिशु कवि के रूप में अपनी प्रतिष्ठा बढ़ने लगी थी। पिता नवीनचंद्र बरदलै एक अच्छे संगीतज्ञ थे और उनसे उन्होंने बचपन में ही संगीत की शिक्षा प्राप्त की थी।

उस समय में असमिया समाज में घरेलू जीवन में अनुशासन का पक्का प्रबंध था। शिक्षा दीक्षा के अतिरिक्त कपड़ा बुनना, गृहस्थी चलाना आदि काम सभी लड़कियों को सिखाया जाता था। नलिनीवाला देवी ने

भी अपनी नानी से करघा चलाना और दूसरे घरेलू कामों की जानकारी हासिल की थी। चित्रकला में भी नलिनीवाला पटु थी।

नलिनीवाला के समय में बाल विवाह का प्रचालन था और नियमानुसार शिवसागर जिले के प्रख्यात कृष्णप्राण चांकाकति के पुत्र जीवेश्वर चांकाकति के साथीश्फ़र् बारह वर्ष की उम्र में सन 1909 में नलिनीवाला देवी का विवाह हुआ था। विवाह के एक वर्ष के बाद वह अपने ससुराल में चली गई थी। पाँच संतानों के माँ बनने के बाद उनके पति का देहांत हो गया और इस आकस्मिक दुर्घटना के बाद उनके पिता नवीनचंद्र बरदलै ने अपनी बेटी को उनके बच्चों के साथ अपने घर ले आए थे।

पति के मृत्यु के बाद नलिनीवाला अंदर से टूट गई थी। विधवा वेश में देखकर उनकी नानी चिल्ला उठी और बोली 'बिटियाँ, तुम इस तरह का सफ़ेद कपड़ा पहनकर मेरे सामने मत आना। तुम रेशम मेखला पहनना'। लेकिन उनके पिता दु:ख को पी चुके थे। वह धीरज देते हुए नलिनीवाला से कहते है कि क्यों नहीं पहनेगी ? आज तक आपनी बेटी को चुने हुए अलंकारों से मैंने सजाया था। आज से नलिनी को 'महाश्वेता' के रूप में ही देखुंगा। मेरी बेटी सदा श्वेत परिधान में तपस्विनी महाश्वेता का रूप प्रपट करेगी- मेरा जीवन धन्य हो जाएगा'। यह कहकर उनके पिता ने नलिनी के हाथों में एक श्री मद्भागवद गीता की एक प्रतिलिपि दी और कहा- 'लो बेटी, यह मद्भागवद गीता ही जीवन साथी बनकर, तुम्हें मार्गदर्शन करती रहेगी'। अपने पिता की इस महत वाणी ने नलिनी के जीवन में नई रोधनी प्रदान की। दु:ख पूर्ण संसार पाठ में प्राकृत ज्योति का संधान मिला। पिता के घर में, आदर्श पिता के शांतिमय आशारी में कवयित्री रहने लगी- महाश्वेता वेश में गंभीर ध्यानरता- तपश्विनी भागवत चिंता में लीन।

विधवा होने के बाद उनके दो बेटों की अकाल मृत्यु भी हो चुकी थी। उन दुखों की मार से कवयित्री का अंतर रो उठा और काव्य के द्वारा वह शोक बह निकाला।

12.3.1 काव्य जीवन

हिंदी की प्रख्यात कवयित्री महादेवी वर्मा की तरह इनकी भी कविताएं रहस्यवादी हैं, एवं उनकी कृति में व्यंजनापूर्ण, मनोरम उच्च दर्शन झाँकता है। 'संधियार सुर' (1928) और 'सपोनर सुर' (1943) आदि कविता संग्रह भारतीय अध्यात्मवाद की बुनियाद पर ही रचित हैं। मनोरम शब्दशयन, सुगठित छ्ंद और गंभीर प्रतीति के साथ अंकित की गई अतींद्रियवादी भावधारा के इन दोनों काव्यों ने असमिया साहित्य जगत में आलोड़न जगाया और अभूतपूर्ण प्रशंसा प्राप्त की थी।

सन 1943 ई. में असम सरकार में नलिनीवाला देवी को साहित्यिक पेंशन मंजूर कर उनके प्रति अपना सम्मान प्रदर्शित किया। उस समय से ही कवयित्री के साहित्यिक जीवन को सहीं प्रतिष्ठा मिली और प्रकृत रूप से साहित्य जीवन का प्रारम्भ हुआ।

w अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1: नलिनीवाला देवी का जन्म कहाँ और कब हुआ था ?

प्रश्न 2: नलिनीवाला देवी के पिता कौन थे और उनका क्या योगदान था ?

प्रश्न 3: नलिनीवाला देवी को काव्य-लेखन की प्रेरणा कैसे मिली ?

प्रश्न 4: नलिनीवाला देवी के जीवन में कौन-सी प्रमुख दुखद घटनाएँ हुई ?

प्रश्न 5: नलिनीवाला देवी की कविताओं की प्रमुख विशेषता क्या है ?

12.3.2 कर्मक्षेत्र

सन 1921 के भारत के मुक्ति आंदोलन में सहयोगिता देकर कवयित्री के पिता कर्मवीर नवीनचंद्र बरदलै ने असम राज्य में असहयोग आंदोलन को प्रतिष्ठित किया था। अपने पिता की सहयोगिनी रहकर इस आंदोलन को आगे बढ़ाने में नलिनी ने काफी मदद की थी। सन 1936 में इनके पिताजी का देहांत हुआ और इसी साल नलिनी ने अपने तृतीय पुत्र को भी खो दिया था।

अपने पिता के मृत्यु के बाद नलिनीवाला को सामाजिक जीवन की तरफ से निमटरन आया। सन 1947 में दिल्ली में अनुष्ठित अखिल भारतीय लेखक सम्मेयन के लिए आपको निमंत्रण मिला। इस अवसर पर आपकी 'संधियार सुर' का अंग्रेजी अनुवाद भेजा गया था। उस समय से ही नलिनीवाला देवी को अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त हुई।

नलिनीवाला देवी की बड़े पुत्र का कार्यक्षेत्र कलकत्ता होने के कारण वह कलकत्ता में रहने लगी थी। उस समय नलिनीवाला 'केबिनेट मिशन' के विरोध में स्थापित 'असम संघ की' उप सभानेत्री चुनी गई थी। उन्होंने अपने प्रभावशाली कवित्वमय भाषण से समष्ठि गठन का विरोध किया। तभी से असम की असंख्य सभा-समितियों में उनको सभा का नेतृत्व करना पड़ा था।

सन 1946 में नलिनीवाला देवी बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से संबंधित हुई। एक सुवक्ता के रूप में उनको वहाँ सम्मान मिला। सन 1947 में असम प्रादेशिक महिला समिति नगाँव अधिवेशन की सभानेत्री निर्वाचित हुई। इसी साल अनुष्ठित गोलाघाट छात्र सम्मेलन की संस्कृति सभा की भी सभानेत्री बनी थी। सन 1949 में महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव की स्वर्ण जयंती के उपलक्ष में अनुष्ठित जोरहाट अधिवेशन में वह सभनेत्री चुनी गई। नलिनीवाला देवी इस पद पर सर्वप्रथम एक मात्र महिला थी। साहित्य सभा की तरफ से दल के प्रमुख बन कर राज्य पुनर्गठन आयोग में नलिनीवाला ने अपने कर्तव्य निभाया और वह स्मरणीय है।

नलिनीवाला देवी सन 1954 में अंतराष्ट्रीय शिशु अनुष्ठान (Children of State Council) की असम शाखा के सभानेत्री बनी थी। आकाशवाणी, गौहाटी और गौहाटी नगरपालिका की भी वह सदस्य रह चुकी थी।

सन 1952 में कवयित्री नलिनीवाला देवी ने असम में 'मईना पारिजात' नामक एक शिशु संस्था की स्थापना की और इसकी सभानेत्री बनी। असम साहित्य सभा के कवि सम्मेलन में (1960) के नलिनीवाला सभानेत्री बनी थी।

उपाधियाँ:

सन 1956 में संस्कृत संजीवनी सभा की ओर से उन्हें 'काव्यभारती' की उपाधि दी गई। सन 1957 में दिल्ली में तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्रप्रसाद ने नलिनीवाला को 'पद्मश्री' उपाधि से सम्मानित किया था। यह सम्मान प्राप्त करनेवाली असम की वह दूसरी महिला थी।

असम की कला संस्कृति, राजनीति, सामाजिक जीवन और शिक्षा आदि के क्षेत्र में सदा ही सम्मिलित हो कर कवयित्री नलिनीवाला ने नि:स्वार्थ भाव से असम तथा भारत की सेवा करती आई हैं। असम के राज्यभाषा आंदोलन में राज्यभाषा परिषद की सदस्य के रूप में अपने सक्रिय भाग लिया था।

12.3.3 कृतित्व:

नलिनीवाला देवी के प्रकाशित ग्रंथ कुछ इस प्रकार हैं-

कविता: संधियार सुर (1928), सपोनर सुर (1943), परशमणि (1954), युगदेवता (1957)।

गद्य: स्मृतितीर्थ (जीवनी 1948), विश्वदीपा (नारी जीवनी 1962)।

बाल उपयोगी नाटक: शेष पूजा, पारिजात, अभिषेक, प्रह्लाद (1958)।
इनके अलावा उनकी और भी अप्रकाशित कई पुस्तकें है।

12.3.4 भाषा-शैली:

नलिनीवाला देवी की भाषा अनुपम अनुभूति पर आश्रित है। इन्होंने संस्कृत और बंगला साहित्य का अच्छा अध्ययन किया है। इसलिए इनकी रचनाओं में संस्कृत शब्दों का समावेश अधिक है। इसके उपरांत भी इनकी शैली को क्लिष्ट नहीं कहा जा सकता। इनकी भाषा अत्यंत परिष्कृत, मधुर और कोमल है; क्योंकि इन्होंने अपनी काव्य भाषा को हृदय की वेदना से स्पंदित किया है। साथ साथ ओजगुण की मात्र भी इनकी कविताओं में अधिक है। इनकी भाषा के संबंध में श्री हेम बरुवा का कथा है कि 'The language she employs is for the most part simple, free of power of suggestion and in the process of it she spiritualists her hunger, melting is hardened crust.'

छंद के बारें में कवि नलिनीवाला कहते है कि

'भावना और छंद के क्षेत्र में कवि गुरु रवीन्द्रनाथ के भावों और छंदों ने मेरे मन को विशेष रूप से प्रभावित किया है। साधारण छंदों से ही मैंने कविता रचना आरंभ की थी। मैंने किसी को गुरु मानकर उन्हीं के आदर्श को ग्रहण करने की चेष्टा नहीं की। लेकिन धीरे धीरे मेरी कविताएं मुक्त सीएचएचएनडी में आत्मप्रकाश करने लगीं। यह मुक्त छ्ंद रवीद्र ठाकुर के मुक्त छंद की तरह है या नहीं- मैं नहीं कर सकती। लेकिन रवीन्द्र नाथ ठाकुर के मुक्त छंद ने मुझे बहुत ही आकर्षित किया है। इसलिए गुरु अगर किसी को कहना हो, तो उन्हें ही कहना होगा। छंद मुक्त हिने पर भी एक समंजस्यपूर्ण मेल में ही मुझे अधिक तृप्ति मिलती है।'

इससे स्पष्ट है कि नलिनीवाला देवी ने रवीन्द्रनाथ ठाकुर के मुक्त छ्ंद खासकर 'बलाका' कि छंद शैली को ही अपनाया है। टूक मिलने का प्रयत्न भी उन्होंने कहीं कहीं किया है।

अनुप्रास पर नलिनीवाला देवी का अत्याधिक मोह दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन अनायास ही उनकी कविताएं अनुप्रासयुक्त हैं। लाक्षणिकता और चित्रमयता उनकी कविताओं के प्रधान गुण हैं।

अंत में हम कह सकते है कि नलिनीवाला देवी कि कविता वेदना के करूण स्वर से ओत प्रोत है और उसमें पाषाण को द्रवीभूत कर देने की अपरिमेय शक्ति अंतर्निहित है। इसीलिए इन्हें असम की मीराबाई भी कहा जाता हैं। इनकी कविताओं में शांत और करुण रस का सुंदर सामंजस्य मिलता है। भावपक्ष और कलापक्ष का भी सुंदर सामंजस्य है। शैली और छंद परयोग की दृष्टि से भी नलिनीवाला का स्थान असमिया भाषा में अन्यतम ठहरता है। वस्तुत: नलिनीवाला देवी अपनी अतींद्रियवादी कविताओं के लिए ही असमिया काव्य गगन में चमकती रहेगी।

12.4 मूलपाठ:

जनमभूमि

मेलिलो प्रथम चकु
तोमार कोलाते आइ
जनमर आदिम पुवात,
मुदिम आकौ चकु
तोमार कोलाते शूइ
जीवनर शेष संधियात। ॥ 1॥

मरार पिचतो येन
पाओहि आकौ ठाइ
चेनेहर शीतली कोलात,
भागरुवा आतमाइ
शेषर जिरणि लै
जिराबहि तोमार छायात। ॥ 2 ॥

पखी हय आकाशर
बुकूट फुरिम उरि
बाँह लम उख बिरिखत
पुवतिर लगे लगे
जोगम तोमाक निते
बनरिया सुवदी गीतत। ॥ 3 ॥

आकाशर तरा हय
र लागि चाइ रम
सेउजीया शुवनी जेउति,
जोनाकत मिल हय
बिमान पथत रय
उरे राति करिम आरति। ॥ 4 ॥

हिमालय पर्वतर
शुकुला टिंगत गय
फुलि रम मानसी विलत,
मलायार चोवरत
पारिजात रेणु सानि
बुलाम तोमार चरणत। ॥ 5 ॥

नदी हय पखालिम
दुखनि चरण निते
माटि हय मिलीं बुकुत,
सोणोवालि मेघ हय
रंगा हाहि बिरिंगाम
सेता परा दुखनि ओठट।॥ 6 ॥

टोमार एइ धुलि बालि
टोमार आकाश बायु
आइ मोर स्वरगर बास,
तुमि मोर मरतर
पुण्य मुकुतिर भूमि
तुमि मिर तीर्थर प्रभास। ॥ 7 ॥

ओ मोर चेनेही देश
तोमार दुखिया पजा

रचा तात शांतिर स्वरग
कत पाम एने प्रीति
सरल प्राणर भाषा
सेवार महिमामय त्याग।॥ 8॥
दुखियार भंगा पजा
एकोखनि तीर्थ तात
एकोखनि पुण्यर आश्रम,
मरिले पुणर आहि
दुखीया देशते मोर
लओं येन पुनर जनम। ॥ 9॥

5 महत्वपूर्ण बिंदु

नलिनीवाला देवी असमिया साहित्य की एक प्रमुख और प्रभावशाली कवयित्री थीं, जिनका काव्य रहस्यवाद, आध्यात्मिकता और देशभक्ति की भावनाओं से परिपूर्ण है। उनका जन्म 1898 में हुआ और उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से गहरी मानवीय संवेदनाओं को व्यक्त किया। उनके काव्य में व्यक्तिगत जीवन की पीड़ा, विरह और करुणा का मार्मिक चित्रण मिलता है।

उन्हें असमिया साहित्य की 'रहस्यवादी कवयित्री' के रूप में विशेष पहचान प्राप्त है। उनकी रचनाओं में ईश्वर की खोज, प्रकृति के माध्यम से आध्यात्मिक अनुभव और पुनर्जन्म संबंधी भारतीय दार्शनिक विचारों की झलक मिलती है। उनके जीवन के दुखद अनुभवों ने उनकी कविताओं को और अधिक संवेदनशील और भावपूर्ण बनाया।

नलिनीवाला देवी के काव्य में भक्ति और राष्ट्रप्रेम दोनों का समन्वय दिखाई देता है, जिसका प्रभाव उनके पिता नवीनचंद्र बरदोलोई के आदर्शों से स्पष्ट होता है। प्रकृति भी उनके काव्य का एक महत्वपूर्ण तत्व रही है।

उनकी प्रमुख कृतियों में 'संध्यार सुर', 'सपोनर सुर', 'स्मृति तीर्थ', 'परशमणि', 'युगदेवता' और 'अलकानंदा' उल्लेखनीय हैं। 'अलकानंदा' के लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ। वे पद्मश्री सम्मान पाने वाली पहली असमिया महिला और असम साहित्य सभा की पहली महिला अध्यक्ष भी थीं।

12.5 भावार्थ:

ज़िंदगी के पहली सुबह में मैंने अपनी पहली आंखे तुम्हारे गोदी में खोला है और अंतिम समय में आपकी ही गोद में आँखें बंद करूंगी। आशा करती हूँ मृत्यु के बाद भी तुम्हारे शीतल गोदी में ही मुझे जगह मिले, थकी हुई मेरी आत्मा को तुम्हारी छांव में ही आश्रय मिले। चिड़िया बनके आकाश में उड़ती फिरूंगी और उच्छे पेड़ में अपने आश्रय बनाउंगी और अपनी सुरीली गीतों से सुबह के साथ मैं तुम्हें हमेशा जगाउंगी। आकाश तारा बनके पृथ्वी की हरी भरी रोशनी को ताकती रहूँगी और पूरी रात चंदिनी में घुल कर विमान के रास्ते में रहकर आरती करती रहूँगी। हिमालय पर्वत की सफ़ेद छोटी पर चड़कर मानसरोवर में खिली रहूँगी। मलया के शिहरण में पारिजात के कणों को भिगोकर तुम्हारे चरणों को धुलवाउंगी। नदी बनकर मैं हमेशा तुम्हारे दोनों चरण धूलवाउंगी और मिट्टी बनकर तुम्हारे सिने में समा जाऊँगी। स्वर्णिम बादल बनकर तुम्हारे दोनों मैले होठों में रंगीन मुस्कान भर दूँगी। तुम्हारे ये धूल मिट्टी तुम्हारे आकाश, हवा मेरे लिए स्वर्ग से भी बढ़कर है। तुम मेरे लिए मर्त्य की, पुण्य के मुक्ति तथा तिरथा स्वरूप हो। ओ मेरे स्नेह भरी देश! तुम्हारी इस कुटिया में मुझे स्वर्ग की शांति मिलती है। एसी प्रीति, सहज

प्राण स्पर्शी भाषा और सेवा का महिमामय त्याग, मुझे कहाँ मिलेगा ? गरीबों की टूटे कुटीर ही हमारे लिए एक तीर्थ है, एक पुण्य तीर्थ है। मृत्यु के बाद फिर से मुझे इसी दरिद्र देश जन्म लेना है।

12.6 सारांश

कवि नलिनीवाला देवी अपने जन्मभूमि को अत्यंत प्रेम करती थी। जन्मभूमि को अपनी माँ के समान मानती थी। वह कविता में कहती है कि जन्म के बाद वह अपनी जन्मभूमि के गोदी में ही आंखे खोलना चाहती है और मृत्यु के बाद भी उनके गोदी में आंखे बंद करना चाहती है। कवि कविता में कहना चाहती है कि मृत्यु के बाद भी हमारी आत्मा आराम करने के लिए अपने जनमभूमि में ही आता है। कवि मृत्यु के बाद चिड़िया के रूप में आकर उच्छे पेड़ में रहना चाहती है, आकाश में तारा के रूप में रहना चाहती है। मृत्यु के बाद हियामलय में पारिजात फूल बनकर खिलना चाहती है। नदी के रूप में वह अपनी दोनों पेड़ों को धुलाउंगी और मिट्टी के जैसे प्रकृति के साथ मिल जाऊँगी। अंत में कवि कहते है ओ कि वह स्वर्णिम बादल बनकर मायूस चेहरे पर एक मुस्कान लाएगी। अंत में हम कह सकते है कि नलिनीवाला देवी की कविता वेदना के करूँ स्वर से ओतप्रोत है और उसमें पाषाण को द्रवीभूत कए देने की अपरिमेय शक्ति अंतर्निहित है। इसलिए इन्हें असम की 'महादेवी' भी कह सकते हैं। इनकी कविताओं में शांत और करूँ रस का सुंदर सामंजस्य मिलता है। भावपक्ष और कलापक्ष का सुंदर सामंजस्य है। शैली और छंद प्रयोग की दृष्टि से भी नलिनीवाला देवी का स्थान असमिया भाषा में अन्यतम ठहरता है। वस्तुत: नलिनीवाला देवी अपनी अतींद्रियवादी कविताओं के लिए ही असमिया काव्य गगन में चमकती रहेगी।

K 12.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर: उनका जन्म सन् 1818 में बरपेटा (तत्कालीन कामरूप जिला) में हुआ था।

प्रश्न 2 का उत्तर: उनके पिता कर्मवीर नवीनचंद्र बरदलै थे, जो असम और भारत के एक प्रमुख राजनीतिज्ञ थे तथा असम में स्वाधीनता आंदोलन के प्रसार में उनका महत्वपूर्ण योगदान था।

प्रश्न 3 का उत्तर: उन्हें बचपन से ही काव्य शिक्षा और पारिवारिक वातावरण से प्रेरणा मिली, जिससे उन्होंने प्रारंभ से ही कविता लिखना शुरू किया।

प्रश्न 4 का उत्तर: उनके पति का निधन हो गया तथा बाद में उनके दो पुत्रों की भी अकाल मृत्यु हो गई, जिससे उनका जीवन अत्यंत दु:खमय रहा।

प्रश्न 5 का उत्तर: उनकी कविताएँ रहस्यवादी, आध्यात्मिक विचारों से युक्त तथा गहन भावनात्मक अभिव्यक्ति से संपन्न हैं।

5 12.8 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- शर्मा, सत्येन्द्रनाथ. असमिया साहित्यर समीक्षात्मक इतिबृत्त, दशम, गुवाहाटी, सौमार प्रकाश, 2014
- नेउग, डॉक्टर महेश्वर, असमिया साहित्यर रूपरेखा, चंद्र प्रकाश, गुवाहाटी, 1987
- तिवारी, डॉ. धर्मदेव तिवारी, प्रादेशिक असमिया साहित्य, असम हिन्दी प्रकाशन.
- महंत, श्री चित्र, असमिया साहित्य का इतिहास, असम हिंदी प्रकाशन
- शर्मा, परेशचन्द्र, भारली लोकनाथ, कवि श्री माला असमिया, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा, 2014

M12.7 अभ्यास प्रश्न

क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए

1. जनमभूमि कविता का प्रकाशन काल क्या है?
2. प्रस्तुत कविता में कवि ने साहित्य का किस रस का व्यवहार किया है?
3. कवि मृत्यु के बाद भी कहा जन्म लेना चाहती है?
4. जनमभूमि शब्द से आप क्या समझते हैं?

ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए

1. जनमभूमि कविता का मूलभाव को स्पष्ट कीजिए?
2. प्रस्तुत कविता के माध्यम से कवि देशप्रेम को किस तरह से दर्शाया है? स्पष्ट कीजिए।
3. प्रस्तुत कविता में कवि ने प्रकृति चित्रण किस तरह से किया है, चर्चा कीजिए?
4. प्रस्तुत कविता की भाषा शैली के बारें में चर्चा कीजिए।
5. प्रस्तुत कविता से पाठक को क्या सीख मिलती है?

****

इकाई-13 वीण बरागी (चंन्द्रकुमार अगरवाला)

इकाई की रूपरेखा

13.1 उद्देश्य
13.2 प्रस्तावना
13.3 कवि परिचय
13.4 मूलपाठ
13.5 भावार्थ
13.6 सारांश
13.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
13.8 अधिक जानने के लिए पढ़ें
13.9 अभ्यास प्रश्न

13.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

- आधुनिक असमिया काव्योतिहास के बारें में जान सकेंगे।
- असमिया साहित्यिकों के बारें में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- रोमांटिक कवि चंद्रकुमार अगरवाला के बारें में परिचय प्राप्त करेंगे।
- वीण बरागी कविता के माध्यम से सामाजिक परिस्थिति के बारें में जा पाएंगे।
- असमिया साहित्य में चंद्रकुमार अगरवाला के असमिया साहित्य के देन के बारें जान पाएंगे।

13.2 प्रस्तावना

हम सभी को पता हैं कि असमिया साहित्य का शुरुआत महापुरुष शंकरदेव के समय से ही शुरू हो गयी थी। सन 1900 तक आते आते असमिया काव्य जगत में काफी विद्वानों का आगमन हुआ और उनकी साहित्यिक देन ने असमिया साहित्य का सफर और भी मधुर बनाया था। आधुनिक काल का आरंभ जोनाकी पत्रिका से हुआ और इसलिए इस युग को जोनाकी युग के नाम से भी जाना जाता है।

13.3 कवि परिचय

25 अगस्त 1888 असमिया साहित्य के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखने योग्य है, क्योंकि इस दिन अ. भा. उ. सा का जन्म हुआ और इसी वर्ष 'जोनाकी' पत्रिका प्रकाशन हुआ। कलकत्ता में पढ़नेवाले असमिया छात्रों ने असमिया भाषा की उन्नति के लिए प्रतिज्ञाबद्ध होकर 'असमिया भाषार उन्नति साधिनी' नामक सभा गठित की, जिसका उद्देश्य था असमिया भाषा की उन्नति करना, उसके गौरव को प्रतिष्ठित करना, उसको सरल, स्वस्थ, शक्ति प्रदान करना। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए असमिया भाषा को परिष्कृत कर, असम में सभी विद्यार्थियों को असमिया माध्यम से शिक्षा देने के लिए आंदोलन कर, वैष्णव साहित्य की टीका-टिप्पणी द्वारा प्रचार-प्रसारकर, समस्त असम मां असमिया लिखने पर ज़ोर देकर असमिया भाषा का प्रचालन करना आदि कार्य समाविष्ट था।

उस समय चंद्रकुमार अगरवाला ने 'जोनाकी' पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया। इस पत्रिका का मूल उद्देश्य था-असमिया का हर दृष्टि से विकास करना तथा उसे अभिव्यक्ति के लिए प्रभावशाली बनाना। प्रथम

संख्या से बेजबरुवा ने इसमें शयोग करना आरंभ किया। चंद्रकुमार अगरवाला ने आधुनिक असमिया साहित्य की प्रतिष्ठा स्थापित करनेवालों में अन्यतम हैं। इनका जन्म 1867 में हुआ था और उनकी मृत्यु 1938 में।

जोनाकी युग से आधुनिक असमिया का प्रादुर्भाव तो हुआ ही, साथ ही रोमांटिक युग का भी प्रारम्भ हुआ। पराधीनता की ग्लानि ने अंतरजगत को विषादपूर्ण बना दिया, जिसके कारण नये कवियों ने स्वाधीनता का जायगान करना आरंभ किया। प्रकृति के अनुराग, सौन्दर्य बोध, वैयक्तिक प्रेम प्रणय और मानव प्रेम कविता की वस्तु होने लगी। नवीन कविता का स्रोत बना प्राकृतिक सौन्दर्य। उस समय कवि प्रकृति के साथ अपना संबंध स्थापित करने में दक्ष थे। वर्ड्सवर्थ और पंत की तरह इन लोगों ने प्रकृति के प्रति अनुराग वर्णित किया। कविता में वैयक्तिकता आयी। गीति काव्य की उद्भावन हुआ। काव्य में अनुभूति प्रवणता तथा संवेदनशीलता का समावेश हुआ। भारतीय चेतना पूरी तरह से प्रतिफलित हुई। रघुनाथ चौधारी जैसे कवि की रचना में प्रकृति दर्शन प्राप्त होता है। इस प्रकार असमिया रोमांटिक कविता में आत्मविस्तार की प्रबलधारा प्रवाहित हो रही थी। चंद्रकुमार अगरवाला के काव्य में ये विशेषताएँ प्राप्त होती हैं।

चंद्रकुमार अगरवाला असमिया साहित्य के प्रथम प्रकाशन हरिविलास अगरवाला के द्वितीय पुत्र हैं। कलकत्ता में बी. ए पढ़ने के बाद ये प्रेस द्वारा असमिया साहित्य की सेवा करने में लग गए। जोनाकी पत्रिका के ये प्रथम संपादक थे। सन 1918 में असमिया की सादिनीया असमिया, तिनिदिनीय असमिया आदि पत्रिकाओं की प्रतिष्ठा तथा उसकी व्यवस्था भी चंद्रकुमार अगरवाला के द्वारा होती थी। लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा ने 'बाही' पत्रिका का प्रकाशन किया, उसमें भी अगरवाला का सम्पूर्ण योगदान था। 'जोनाकी' और 'बाही' में 1918 में 1923 में क्रमश: प्रतिमा और बीण बरागी नामक काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ था।

जोनाकी पत्रिका के प्रथम अंक में प्रकाशित चंद्रकुमार आगरवाला द्वारा रचित बनकुवरी नामक गीत से असमिया रोमांटिक युग का शुरुवात माना जाता है। अगरवाला की कविता में कौतूहल, जिज्ञासा है, जिसके द्वारा यथार्थवादी संसार के समक्ष सौन्दर्य प्रियता को उपष्ठित किया गया है। उनका कथन है-

'सौन्दर्यय आराधना जीवनर खेल।'

अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1: 'जोनाकी' युग का नाम किस पत्रिका के आधार पर पड़ा?

प्रश्न 2: 'असमिया भाषार उन्नति साधिनी सभा' का मुख्य उद्देश्य क्या था?

प्रश्न 3: चंद्रकुमार अगरवाला का असमिया साहित्य में क्या योगदान रहा?

प्रश्न 4: जोनाकी युग की कविताओं की प्रमुख विषयवस्तु क्या थी?

प्रश्न 5: असमिया रोमांटिक काव्यधारा की एक प्रमुख विशेषता क्या थी?

13.4 मूलपाठ:

॥ 1 ॥

शुनिबा प्राणर बीणखनि मोर,
आहिछों भागरे-दुखे
बेजारर कथा कैउ अंत नाई,
मातउ नुफूटे मुखे।
दुख भागरर अंतत तोमातेइ
संताप आतराइ निया-
तोमते आश्रय, तोमते निर्भय

तोमाते निचुक हिया।
लक्ष हृदयर लक्ष दुखकणा
बांधिछा एकोटि सुरे,
तोमार प्राणेरे महाप्रयाणत
दुखो सुख होई परे।
सुखर दुखर मिलनर रेख
मार ग'ल कोन पिने?
दुखर लगते सुख धरा परे,
सुख दुख कोने चिने
बायुरे सैते जी खेल तोमार
परशे हृदय तलि,
चैध्य भूबनर मिलनर ढौ
बायूरे फुरिसे खेलि।
उठि हृदयत लीन हय क्षणे
दरिद्रर मनोरथ,
उधाय कल्पना, असीम जगत
धारिसे आकाशी पथ।
बिचारिछे प्राणे जि धन-संपद
उतला जिहर लागि,
एये सेइ जार आशाते हृदय
आछे निशि दिन जागि।
मुकलि मनर मानवी मूर्ति
अकलंक मधुरिमा,
दिव्य दृष्टि एये सचेत सपोन,
-नाइ सपोनरो सीमा॥
किनोनो कै जाम, किनोनो शुनिबा,
दुखरे उपरि दुख।
कुकुरे कामोरे, छवाले दलियाय,
कतो निमिले सुख,
दुखियार कथा कोनेनो शुनिब?
शुनिओ नुशुने केवें,
पदुलिरे परा खेदि पठियाय,
बलिया बुलिहे हाहे।
काकेइ बा कम, कोने पतियाब?
शुनिबा प्राणर बीण?
तोमाते आश्रय मागीछो हे देवि,
बरागी दुखीया दीन।
मने मने कम मनर कथाति,
मनर टलित गँथा,

तोमार हियालै बबहे निजरि
संतापी हियार कथा।
प्राणर प्राणत दुखीर दुर्दशा
बाजिछे आपोन रावे,
जगत जुरिब, तोमार हियात
परि प्रतिध्वनि भावे।
दुगुन शुवला दुगुन सुंदर
फूटिब मुखर मात,
दुगुन साहेरे दुगुन शकति
पामहे दुर्बली गात॥
नुशूना लोकेओ शुनि रै जाब,
शुनिब दुखर कथा,
एखंतेक रब, शुनि पमि जाब,
बुजिब बेजार व्यथा।
शूना तेंते शूना, शूना देवि शूना,
कै लघु हक हिया,
नोवारो बब बेजारर भार,
दिया पातलाई दिया।
गोतेई संसार दुकहर बोजातो
नहय जे एलपेचा,
सेये प्रति क्षण खुंदियाय मोक
बुकूत गधुर हेचा।
तोमार बीननि शुनि थर हय
पशु पक्षी गछ लता
लुइत उजाय, जोन तधा लागे,
मानुहर किबा कथा?
हुमुनियाराशि मरम पराशि
तोमारो बिदारे हिया,
सरगर बीण लवनुत अधिक
कोमलरो कुमालिया।
मानुहर प्राणर एश सूँति आनि
बोवा एकोटि धार,
गोवा देवि गोवा प्राणर कथाति
शुनक जगते गोवा।
तोमार सुरते प्राण लीन गै
उठक सकलो व्यापि,
प्राणे प्राणे मिलि हियार कथाटि
तोमते दिलो ये सपि॥

॥ 2 ॥

सुख सुख बुलि फुरिलो बिचारि
सुखर देखादेखि नाइ,
पाइ पखिलाति सुधिलो एदिन
सुख केनेकुवा भाइ?
थापते सिलाई निलेहि उराइ
सुख कोने केने कय?
कोवा वीण कोवा सुख केनेकुवा,
कतो समिधान नाइ।
सुख बोले हेनो संसारर सार
उलालो जोलोडा लै,
संसारखनर दुवारे दुवारे
घूरी खेदा खालो गै।
हे प्राणर बीण! जि देखिलो आरु
कबलै लागिछे बेया,
दुखीयार दुख दुर्बलीर शास्ति
देखि फाति जाय हिया।
देखिलो केनेनो नर- समाजत
विषम जंजाल हाय!
मानुहे मानुहे परतकै पर,
एफेरि मरमो नाइ।
निछला दुखिया देखिले घिणाय,
दाडरर दाडर भेम,
बलीर भयत कोचमोच खाय
नि: किनर परम यम
घरे घरे चोंवा मिला प्रीति नाइ,
खोलाकटितेहे प्राण,
धन- सोण साचि धन धन करि
एरिले धरम ज्ञान।
कोढ़ाल-कंदल हाइ-उरुमिरे
पर मानुहर घर,
कणाकड़ि एटालैके लागे द्वंद,
नेजाने आपोन-पर।
सोवाद नजना मातोटि मुखर,
बेजार दिबहे पारे,
जीवनक करि तितारेइ पूर
आपद चपाइ मारे।
कुटुमेइ रांधे, कुरुमेइ बाढ़े
कुटुमे कुटुमक खाय,

कुतुमर तेजेरे बंति जलालो
-मजिया भकेभकाय।
मानुहर तेज शुहि शुहि खाय
मानुह राक्षसे चोवा-
चोका चोका माते बिंधे प्राणलैके
नुबुजे आनर हिया,
एबिध चोवाचो मुखर सोवादे
जिनिले जगतखन,
हलाहल बाकि पिछेहे शुहिब
लोकर प्राणर धन।
फुलनिर फूल लखिमी जियरी
दलिछे भरिरे हाय
सरगी बस्तुर कि जानिब मोल?
-पृथिवी पापर ठाइ।
धर्मर नामत अधर्मर बेहा
देखिले विराग हय,
धनर लोभत पाप सत्र पाति
कपटी गुरुर जय।
भाटौर दरे आउराइ शास्त्र
फुरे गियानी बोलाइ,
एजन ये आछे सकलोरे साक्षी
अलपो नकरे भय।
हे प्राण वीण! कि शुनिबा आरु
दुखरो उपरे दुख,
दुखरे पोहार-संसार मेला,
नाइ नाइ नाइ सुख।
निः किनलै किय दुखते दर्दशा?
-निर्दय विधान इटो,
दुर्वलीर गति जियन्ते मरण?
किय नखण्डिब सिटो?
नेलागे कुटिल संसारर पथ
नेलागे चापर उख,
आलेखर लेख नेलागे संपद
नेलागे विषय सुख।
नेलागे समाज, नेलागे संभ्रम,
नेलागे मानीर मान,
कृपाओ नेलागे, भिक्षाओ नेलागे
नेलागे पापीर दान।
प्रलयर दिन घोर भयंकर

आहक पापीर दान।
प्रलयर दिन घोर भयंकर
आहक पापीर त्रास,
जल, थल सम, नाइ तल बाम,
सुख-दुख हा- हुताश।
आडुलि बुलाब जना ह'ले आजि
पेलालोहेतेन टानि,
हिमालय चूड़ा बुरालोहेतेन
उछालि कलिया पानी।
आकाशर तरा नामालोहेतेन
थपियाय लाखे लाखे,
जोन बेलि गृह पेलालोहेतेन
दलियाय जाके जाके।
पापर मजिया नियालोहेतेन
आठाइ सागरर तल,
ब्रह्मांडर चिनथाकिलहेतेन
माथो समुद्रर जल।
मान अपमान ढौवाइ याओक
पृथिवीर परा गुचि
नतुन सृष्टिर अरुण किरणे
करोक सकलो शुचि।
दुख लाज भय नाथाकिब आरु
-नतुन जगत सिटो,
हेरोवा वीणर आनंदर सुर
बाजिब दिनरे दिनतो।
दुख दूर करि जगत उद्धार
करोहे जगतस्वामी!
नीच हृदय नीच अंकार
हओक अधोगामी।

॥ 3 ॥

आगते संधिया, दिघलीया राति,
बाटर परा नाइ उर,
विश्राम बिचारि गछर तलत
बहिल बरागी मोर।
दिनर पिछ्त संधिया आहिछे
खंडिछे भागर दुख
परिछे पाछत, आछेओ आगत
युगर उपरि युग।
बाटर आगत बाट बाढ़ी याय,

खंतेक जिरणि आहे,
खंतेकते मोर अंतर सुखर
सोणाली सफ़ों हाहे।
सुलकिछे लाहे संसार बांध
मुकलिछे मन मोर,
मुकलि आकाश, मुकलि मुकलि
प्रकृति आइर मूर।
दिया ? हे मुकलि करि मोर प्राण,
दिया ? देवी दिया ? दिया ?,
दिया ? दिव्य चकु, विमल जेउति,
देखि उधावोक हिया,
सुखर संगीत गोवा ?, देवि गो ? वा
जगत निचुक होक,
दुख दंड शोक पाहरि कोढ़ाल,
शांतिरे बुरोक लोक।
देखिछो ? पृथिवी स्वर्गतो अधिक,
मानुहर निजापी घर,
मानुहेइ देव इहजगतर
मानुहेइ परातपर।
मानुहर प्रीति साधिबलै चोवा ?
विश्व जगत कल्पना,
आल धरिबलै सहस्र प्रदीप
आरतिर धूप-धुना।
फल फुल जल चन्दन भूषण,
मलयार शीतली बा,
मनुह संतोष हक बुलि चोवा ?
आछे यत लागे यिबा।
हा ? हिछे मानुहे, कादिछे मानुहे,
पातिछे मानुहे प्रेम,
धुलिते उदय, धुलिते विलय,
धूलिओ स्वर्गीय हेम।

॥ 4 ॥

मोरेइ जगतखन मोकेइ मातिछे,
गृहस्थलै आलहीर आसन पातिछे।
मोरेइ वचन हरि मोके आदरिछे ,
चिरचिनाकिरे नकै चिनाकि पातिछे।
मोरेइ बातरि आनि मोकेइ शुनाय,
मोर बेहानिरे देखो मोकेइ फुसुलाय।
मोर दापोनते मोर मुख देखुवाय,

मोर मुखाकेइ पिंधि सुंदर बोलाय।
मोरेइ सेंदुर, तेल मोर मूरत घ ? हे,
मोर परा धारे निया रुपेइ मोक मोहे।
मोते शिकि देखुवाय मोके मोर भाव,
मोरेइ बा ? हीटि काढ़ि बजाओ बजाओ।
मइ अ ? रा चंद्रताप मोरेइ मूरत थय,
जोन बेलि तरा माथो हीरा मुक्तामय।
मोक एरि जगते नौ किबा कथा कय,
अनादि पुराण मोर आजिलैके रय।
अनादि पुराण मोर आजिलैके रय।
मये पता राज्यखन भाङि आकौ मये,
डाडर राज्यर सृष्टि पातो नतुनकैये।
मये दुष्ट दमि संत साधु हओ ?
मये दुष्टर उद्धंडालि घूरि पाति थओ ?।
मोर दावरते मइ रहण बाकि दिओ ?,
मये बताहजाटि है उरुवाइ निओ ?,
पखिला मयेइ हओ ?, फेचु है खेदो ?,
मोर धेमालिर अंत मये ह'ब निदो ?।
मोर हियाखनि मइ मोकेइ बिलाओ,
प्रेम बेहानिरे भरि नाओ बाइ याओ।
मोरेइ प्रतिमाटीक कन्या बुलि मातो,
मये मोत बिया सोमाइ मये घर पातो।
मये पुत्ररूपी ल'रा मरमते मरो ?,
बिचारि संपद आनि, अलंकार आरो ?।
प्रेमर बातरि कै घरे घरे फूरो ?,
मनत कथाटि राखि कपटता करो ?।
घरते कंदल लगाइ कत टोप याचो ?,
बीजर पतान मइ नारद है बाछो।
जगतरे मोरे देखो संबंध अटूट,
चकु मुदिएई माथो अंध अद्भुत॥
दिव्य दृष्टिरे चोवाहे जगतखन
प्रहेलिका गुचि एये जीवन रंजन॥

॥ 5 ॥

एइ संसारत मइ
कतनो बिनालो,
दुवारे दुवारे घूरि
कत खेड़ा खालो ?।
कबके नोवारों मइ
कि बिचारिछिलो,

अबाबते अकलइ
कतनो कांदिलो।
छा? रे सैते लरा दरे
धेमालि करिलो,
छा? के बिचारि गै
कत ठग खालो?!
सपोनेरे दिने-राति
उमलि फुरिलो?,
सपोनो सचेत बुलि
मोहते परिलो?।
स्वार्थ अहंकारे बाह
बांधिले संसार,
र-लगा पलु येने
खोलाटि मुगार।
निजते निजेइ मइ
भाविलो सुंदर
सुखर भ? राल किनो
ठेक अंधकार!
सुखते मधुर आरु
मोहर क? राल,
सूखते मधुर आरु
मोहर कराल,
विधिर कृपात पुनु
हॅलोहे उद्धार।
कि सुंदर मुक्त वायु,
नालिम आकाश-
कि सुखर जोन बेलि
जेउति प्रकाश!
असीम सागर मोर
नावेरेइ भरा,
महासदागर मइ
अतीजरे परा।
अनंत भराल मोर
शस्य साचि थओ,
असीम सागर मोर
नावेरेइ भरा,
महासदागर मइ
अतीजरे परा।
अनंत भराल मोर

शस्य साचि थओ,
असीमर पथारत
बीज सिचि दिओ।
कण- गेला बीजेरेइ
नित्य बीज पोहो,
बीजर बेपारी मइ
बीजकेहे बेहो।

॥ 6 ॥

एदिन पुवाते उरुलि मंगल
शूनिलो यात्रीर रोल,
शुनो कि नुशुनो बूजो कि नुबुजों
महाप्रयाणर बोल।
जनमरे परा शुनि आहिछिलो
सरगी सुखर कथा,
दुखित तापित मानुहे एदिन
पाहरिब दुखबेठा।
सेइ दिनलैके महाआयोजन
चिरजीवनर बह
सेइ दिनलैके जीवन उछर्गा
सेवार उपरि सेवा।
सेइ दिनलैके आछे बाट चाइ
अधीर पराणे मोर,
सेइ दिन आजि प्राणर प्राणत
उशाहे उशाहे पूर।
गणिता नेचाओ भणिता नेचाओ
तालै समय नाइ,
सोनकालेइ बोले शुभक्षण
यात्री आगबाढ़ि याय।
एके उशाहते लग ललो आहि
चिंतार परिल उर,
वीणखनि मात्र लगर लगरी
जीवन संबल मोर।
दिन बाढ़े यात्री येतेकते बाढ़े
तेतेकते कलरव,
शूना हाटरुवा बाटरुवा लोक
प्रयाणर यात्रीसव!
हियार माजेदि अनंत सुखर
परि आछे राजबाट,

मनर बेहानि किनि-बिकि नइ
फुरिम संसार हाट।
सकलोके कओ सुखर बातरि
याके पाउ हाटे-बाटे,
कोन याबि हेर आह भाइहत
बीण-बरागीये माते।
महाप्रयाणर यात्री सबओटि
आमार किहर चिंता?
महान प्राणर अधिकारी आमि
मुखत आनंद गीता।

॥ 7 ॥

सुख सुख बुलि जगत बलिया
हेराल परम सुख,
स्वार्थर कंदले जगत जुरिले
दुख ये थाकि ग'ल दुख।
प्रभूर काषलै निनिये यि सूखे
हियार यातना माथो,
हरण-भगन मात्र लाभ तार
सि दुख सि आपदर हेतु।
खोवा-कमोराकै मरिछे मानुह
पृथिवी ये छारखार,
पशुतो अधम स्वार्थत अंधला
दानवरो सातचार।
राइजक गरकि बोलाय गराकी
सृष्टि राडली करि,
अतीजर बली रजा महारजा
ग'ल कोन बाट धरि?
राइजर तेजेरे तियाइ धरणी
बोवाय राडली सोत,
मानुहर दुख दुर्दशारे बांधे
निराश कलीया कोठ।
प्राणते आछे प्राणर संबल
दुरत बिचारि फुरों,
भ्रांति मोहजाल आटरोवा प्रभु
मोह-अंतकारी गुरु!
सुखश्रीप्रयासी, प्रभु प्राणमिछों
दिया मति अंतर्मुखी,
हियार आनंद हियाते पाबलै
करा निष्कलंक सुखी।

श्रेयर गराकी प्रभूर सेवक
प्रयाणर यात्री आमि,
नि:किनर धन जगतरंजन
प्रणामो जगतस्वामी।
अनंत सुखर मंत्र मोह हरा
हृदयत जपो माथो,
सबाओरो हित अराधोहो नित
प्रेमर थापना पातो।
श्रेयसी सत्रर सात्रीया सबाओ
विश्वबासी नरगण,
मानवी जनम उछर्गि सबेओ
भजो मानवी चरण।

॥ 8 ॥

प्राणर प्रतिष्ठा जीवंत साधना
देहात कराहे थिय,
चुके-काणे यत जड़ देवमूर्ति
निश्वासते पाब जीव।
सुषुप्त आत्मार सूक्ष्म शकति
जगाइ माथोन तोला,
आत्मार बलेरे बलियान हइ
बिजुली संचारे दोला।
जड़ जगतर चेतन नियंता
रथर सारथि तुमि,
तोमारे आदेश अपेक्षात आछे
शिरेरे नमिहे भूमि।
अन्याय असत्य पाशव बलेरे
नित्य संग्राम-चारी,
दैवी संपदर आश्वास-निर्भीक
विजय गांडीवधारी।
विश्वर बीणत झंकार उठिछे
मिलोवा तारेइ सुर,
आकाशर लक्ष ग्रह समन्विते
उंकार ध्वनिरे पूर।
ध्रुवलोकर सत्यक आजोरा
अरुंधतीर प्रेम,
सूर्यर रश्मिर ज्वलंत महिमा,
पृथिवीर-तलर हेम।
पृथिवीक तोला स्वर्गर खापलै
स्वर्गक नमाइ आना,

सरग नहय दूर-दुरनिर
बहिररो नोहे जानो।
अंतरर चकु मेला मोर बंधु
दिव्य दृष्टिरे फुरा,
शुध दापोणत शुध प्रतिबिंब
बाहिर भितर जोरा।

॥ 9 ॥

दिव्य दृष्टिरे फुरा मोर बंधु
अनंत दपोण मेला-
दिगंत प्रसारि आकाशी नेत्रेरे
चोवाचों सृष्टिर खेला।
नीलिम पुण्यर प्रभाइ जिनिछे
श्यामल पृथिवीखन,
महाजलाशय सागरे गर्जिछे
उत्ताल निमगन।
सरगी वायुर रिबरिबनित
पुनर ठमकि रय,
हृदि सिंधु बारि फुटंत हाहिरे
शतधा बागरि बय।
सोणाली मेघर प्रतिबिंब ताते
स्वर्गीय विचित्र लीला,
महान आत्मार आदर्शेरे लेखा
फुलाम चानेकीखिला।
विचित्र मेघर भावेरे रंजित
मानवी आत्मार खेल,
महामहत्व अभिलाषी नर
विश्वर प्राणेरे मेल।
लोकालोक सउ मुखरित ह'ल
उदिल पुजार बेलि,
जुरिले हेडुलि धूप-धुनारेइ
नीलिमारे खेलिमेलि,
कतना कालर मानव संतति
आराधिछे बियाकुल
विश्वर प्रेमत बिभोर मगन
उछर्गि भकति फूल,
मोरेइ मुखेदि मानव प्राणर
फुटक आकुल मात,
मोर चिंतातेइ गूढ़ रहस्यर
सत्य हक प्रतिभात।

बीण बरागी समाप्त

5 महत्वपूर्ण बिंदु

चन्द्रकुमार अग्रवाला आधुनिक असमिया साहित्य के रोमांटिक दौर, जिसे 'जोनाकी युग' के नाम से जाना जाता है, के प्रमुख प्रवर्तक थे। वे एक प्रतिभाशाली कवि, सजग पत्रकार और 'जोनाकी' पत्रिका के संस्थापक संपादक भी थे। उन्हें ''प्रतिमाओं के शिल्पकार'' के रूप में भी जाना जाता है, जो उनकी सृजनात्मक क्षमता को दर्शाता है। 1889 में 'जोनाकी' पत्रिका के प्रथम संपादक के रूप में उन्होंने असमिया भाषा और साहित्य में एक नई साहित्यिक चेतना का संचार किया। लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ और हेमचन्द्र गोस्वामी के साथ मिलकर वे असमिया साहित्य की प्रसिद्ध 'त्रिमूर्ति' के एक महत्वपूर्ण सदस्य थे। 'वनकुँवरी': 1889 में 'जोनाकी' पत्रिका के पहले अंक में प्रकाशित यह कविता असमिया साहित्य की आरंभिक रोमांटिक रचनाओं में प्रमुख स्थान रखती है और इसे उस धारा की पहली महत्वपूर्ण कृति माना जाता है।

13.5 भावार्थ:

चन्द्रकुमार अगरवाला आसामिया साहित्य के रोमांटिक धारा के प्रथम कवि थे। इसी रोमांटिक धारा के उत्साह में उस समय के कई सारे कवि प्रभावित हुए थे, उनमें से चंद्रकुमार अगरवाला अन्यतम थे। 19 वीं सदी के प्रारम्भ में अंग्रेजी रोमांटिक युग के कविताओं से ही इस युग के कवि प्रभावित रहें।

असमिया रोमांटिक युग के प्रथम पत्रिका 'जोनाकी' में पहली कविता के रूप में चंद्रकुमार अगरवाला द्वारा लिखित 'बनकुवरी' नामक कविता प्रकाशित हुआ था। असमिया रोमांटिक कविता के रूप में चंद्रकुमार आगरवाला ने असमिया काव्य जगत में पहला कदम रखा था। अंग्रेजी साहित्यकार वर्ड्सवर्थ के तरह चंद्रकुमार अगरवाला के कविता में भी विश्व प्रकृति के प्रेममय रूप एवं निर्मम गति को उपलब्धि किया था। प्रकृति के प्रेम में वह सिमट कर न रहकर वह आत्मा के खोज में विलीन हो गए थे। मनुष्य को वह विश्व के केंद्र के रूप में देखते थे और इस कंक्रीट के दुनिया को मनुष्य के लिए उपलब्ध करना चाहते थे। उन्होंने अपनी कौतूहली मन से समाज से आह्वान किया कि सौन्दर्य का आराधना करना मनुष्य जीवन का एक खेल है। असमिया समाज का जीवन प्राण का प्रतीक लोक कथा तेजीमला कहानी की दर्द को उन्होंने अपनी कविता में स्थान दिया था।

'वीण बरागी' चंद्रकुमार अगरवाला की एक महत्वपूर्ण कविता है। जिसका लंबाई सताइस पन्नों का है। यह कविता चंदकुमार अगरवाला के काव्यिक जीवन का एक चरम प्रकाश है। 'वीण बरागी' कविता में रोमांटिक साम्यवाद का एक काव्यिक उल्लेख मिलता है। इस कविता का पहला पाँच भाग 'बा? ही' (फाल्गुन 1838-आषाढ़ 1835) नामक पत्रिका के चौथे वर्ष के अंक में प्रकाशित हुई थी और बाकी का अंश दशवें वर्ष की आठवें अंक से प्रकाशित होने लगती है। इसीलिए उनके बाकी के अंशों में स्वतंत्रता आंदोलन का प्रभाव देखा जा सकता है। अगरवाला एक जातिप्रेमी तथा देशप्रेमी कवि थे।

'वीण-बरागी' कविता में कवि ने खुद ही वीण बरागी का भूमिका निभाया है। 'वीण बरागी' अर्थात समाज से वैराग्य लेनेवाला इंसान। वह अपनी वीण के साथ लोगों के घर घर जा कर अपनी कथा सुनाता है। उनका वीण ही उनके लिए प्राण है। उनके सुर में दुख छिपा रहता है, जो दुख प्रत्येक समाज का है। जहां भी ढूंढने लेकिन सुख किसी को नहीं मिलता है। जीवन के दुख दर्द पीड़ा के बाद वीण बरागी यह बात जान चुके थे कि उनके वीण में ही लाखों हृदयों की दुख् दर्द का सुर बजता है और यहीं बजना भी पड़ेगा। जिस तरह से रत्नाकर का दुख बाल्मीकि के श्लोक में बदल गया था और वह दुख आनंद में बदल चुका था। वीण के ढूंद में वीण बरागी कल्पना सागर में डूब जाता है। उनकी कल्पना वास्तव की आकाश पर उड़ना चाहता है। इस ब्रह्मांड का सभी सौन्दर्यताओं के बीच से मनुष्य का निर्मल सुंदरता को देखकर वीण बरागी के इच्छा का अंत नहीं होता है।

वीण बरागी जैसे समझ चुका है कि इस संसार में उनका दुख सुख के बारें जानने का मन किसी के पास

नहीं है। उनके दुख के बारें में बोलने से भी हर कोई पागल कहते है। इसीलिए उनके एकमात्र सारथी है। उस बीणा के सुर से उनके हृदय के हाहाकार शांत हो उठता है। वीणा के मधुर स्वर लोगों के हृदय को भी छु जाता है। इसी उम्मीद में बीण बरागी सोचते है कि वह लोगों के बोझ को कम करके सुख को सबकी हृदय में फैला देंगे।

एकदिन कृष्ण के बसुरी के सुर में यमुना बड़ी ज़ोर से बह रही थी, कवि कहते है कि बीण बरागी के वीणा के सुर में हमारी ब्रह्मपुत्र भी तीव्र गति से बहने लगते है, यह सेख आकाश का चंद्र भी थम जाता है, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे भी रुक जाती है। पुराने भक्त जब डंबरू बजाते थे, तब उस डंबरू को कैलाश से लाया गया बताते है। ठीक वैसे ही बीण बरागी कि वीणा भी सीधा स्वर्ग से लाया गया है। यह वीणा लोगों की दुखों को अपने अंदर लेकर सुखों के अमृत लोगों पर चिरकते है।

बीण बरागी सुख खोज खोजकर थक चुके थे, लेकिन सुख का पता किसी ने भी उनको नहीं दिया। उनको पता था कि सुख ही संसार का सार है। इसी को खोजते हुए वह फिर से भिखारी कि तरह झोला लेते हुए इस संसार की दरवाजों पर घूमने लगे, लेकिन सभी का एक ही समिधान है, वह है प्रत्याख्यान।

इस संसार में घूम कर उन्होंने देखा कि सभी मर्मांतिक दुख से भरे हुए है, दुर्वलों का सजा, अमीरों का अभिमान और बलबानों का अत्याचार सभी लोगों के अंदर भरे हुए है। उनके हृदय अंग्रेजी साहित्यकार वर्ड्सवर्थ की तरह मचल उठते है –Have I not reason to lament,What man has made of man ? लोगों के बीच मेल मिलाव कम उसके उपरांत सिर्फ झगरा, बोलियों में कड़वापन ही है। लोग एक दूसरे को मारते है, एक दूसरे खून सूस रहे है। मनुष्य सिर्फ शोषण का यंत्र बन गया है। कोइ लोग मुसकुराते चेहरे के पीछे से लोगों को शोषण करते है। चल कपटी धर्म गुरु भी धर्म के नाम में लोगों का शोषण करते है। लेकिन उनको यह पता नहीं कि सर्वमान भगवान को कोइ नहीं ठग सकता, यह सब देखकर बरागी के मन में एक नई उम्मीद जग उठते है।

यह सब देखकर बरागी प्रलय को आह्वान करते है। इस प्रलय के आगमन से उच्छ-नीच, पहाड़-सपात, स्थल-जल, संपद-विपद, सुख-दुख, मान-अपमान, दान-भिक्षा सब कुछ समान हो जाएगा। समस्त पापी इस प्रलय में डूब जाएंगे। इस भयंकर परिस्थिति के बारें में सोचकर उनका मन उतावला हो चुका है। उन्होंने यह कल्पना किया है कि इस समस्त प्रलय के बाद यह जगत नई फुल की तरह खिल उठेंगे। जिस जगत में दुख, भय, लज्जा, अपमान नहीं रहेगा, जहां रहेगा सिर्फ सूरज की नई किरण, मधुर आनंद के सुर।

इस प्रलय स्वप्न के बाद बीण बरागी थक कर एक बड़े पेड़ के नीचे विश्राम लेने के लिया आश्रय लेते है। उनके हृदय में सुख, शांति के स्वप्न जाग्रत हो रहा है। उनको लगता है कि संसार का द्वंद कोलाहल को उनका वीणा के सुर से ही ठीक कर देगा। उनका मानना था कि इस संसार का दूसरों कि सेवा और प्यार के लिए ही निर्माण हुआ है। मनुष्य रूपी देवता को पूजने के लिए ही सूरज, चाँद और तारों का समावेश हुआ है।

यह जगत मानवात्मा का ही प्रतिविम्ब है। इस आत्मा को छोढ़कर इस जागा का कुछ मूल्य भी नहीं है। बीण बरागी यह समझ चुका है कि सुख के खोज में हाहाकार करना अर्थहीन है। यह समस्त जीवन मायाजाल है, जीवात्मा के अनंत प्रयास है परमात्मा से मिलने का।

यह सब देखकर कवि एक महा प्रयाणका नया अभियान शुरू हुआ। इस यात्रा का प्रधान रास्ता है लोगो का हृदय। इस बार लोगों का संसारी सुखों को त्याग कर एक नई रास्ता को अपनाया है। वह रास्ता है परम सुख का, जिस सुख से हम प्रभु के पास जा सकते है। वह समझ चुके है कि जो वह बाहर खोज रहे है, वह उनके अंदर ही है। पहले जो मोह उनके अंदर था वह अब बिखर चुका है।

बीण बरागी सबको आह्वान करते है कि मनुष्य के अंदर छुपे हुये सूक्ष्म आत्मशक्ति को जगाकर अर्जुन की तरह गाँडीव लेकर समाज के लिए खड़े हो। अन्याय, असत्य को पीछे करके प्रेम और सत्या का प्रचार करें। जिसे स्वर्ग और नरक दोनों एक ही जगह बने जिससे सब एकत्रित हो सके।

ऐसे कार्य के लिए चाहिए दिव्यदृष्टि। उस दृष्टि से देखने सब महा आनंदित महिमामाय ही दिखेंगे। आकाश,

बादल, चंद्र, सूरज, पृथ्वी, सागर, फुल, पौधे यह सब सिर्फ प्रेम वार्ता ही प्रचार करते है। इसी से मानवता का जयगान होता है।

13.6 सारांश

अंत में हम कह सकते है कि बीण बरागी कविता एक सामाजिक कविता है। समाज के सुख दुख को कवि ने प्राधान्य दिया है। कवि ने मानव वंदना करके विश्व रूप का दर्शन करवाया है। बीण बरागी कविता एक भाववादी, आशावादी कविता है। कविता के जरिए कवि ने विश्व का एक नई रूप की उम्मीद की है। नई समाज का आदर्श इस कविता में जरिए कवि ने वर्णना किया है।

K 13.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर: 'जोनाकी' युग का नाम 'जोनाकी' पत्रिका के आधार पर पड़ा, जिसके माध्यम से आधुनिक असमिया साहित्य का आरंभ हुआ।

प्रश्न 2 का उत्तर: इस सभा का मुख्य उद्देश्य असमिया भाषा का विकास, उसे परिष्कृत करना तथा उसकी प्रतिष्ठा स्थापित करना था।

प्रश्न 3 का उत्तर: चंद्रकुमार अगरवाला ने 'जोनाकी' पत्रिका का संपादन किया और आधुनिक असमिया साहित्य तथा रोमांटिक काव्यधारा को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

प्रश्न 4 का उत्तर: इस युग की कविताओं में प्रकृति प्रेम, सौंदर्य बोध, वैयक्तिक भावनाएँ, प्रेम और मानवता प्रमुख विषय थे।

प्रश्न 5 का उत्तर: असमिया रोमांटिक काव्यधारा की प्रमुख विशेषता प्रकृति के प्रति गहरा अनुराग और व्यक्तिगत अनुभूति की अभिव्यक्ति थी।

5 13.8 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- अगरवाला, चंद्रकुमार, बीण बरागी, वाणी मंदिर
- नाथ, धुर्वज्योति, चंद्रकुमारर कवितार विचार- विश्लेषण, बनलता, गुवाहाटी
- शर्मा, अध्यापक शशी, चंद्रकुमार आगरवालार प्रतिभा, प्रथम, असम साहित्य सभा, जोरहाट
- शर्मा, सत्येन्द्रनाथ. असमिया साहित्यर समीक्षात्मक इतिबृत्त, दशम, गुवाहाटी, सौमार प्रकाश, 2014
- नेउग, डॉक्टर महेश्वर, असमिया साहित्यर रूपरेखा, चंद्र प्रकाश, गुवाहाटी, 1987
- तिवारी, डॉ. धर्मदेव तिवारी, प्रादेशिक असमिया साहित्य, असम हिन्दी प्रकाशन.
- महंत, श्री चित्र, असमिया साहित्य का इतिहास, असम हिंदी प्रकाशन
- शर्मा, परेशचन्द्र, भारली लोकनाथ, कवि श्री माला असमिया, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा, 2014

M 13.9 अभ्यास प्रश्न

क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए

1. बीण बरागी कविता का प्रकाशन काल क्या है?
2. प्रस्तुत कविता में कवि कोनसी भाव का व्यवहार किया है?
3. बीण बरागी समाज में क्या खोज रहे है?

4. बीण बरागी शब्द का क्या अर्थ हैं?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. बीण बरागी कविता का मूलभाव को स्पष्ट कीजिए?
2. प्रस्तुत कविता के माध्यम से कवि सुख को किस तरह से देखा है? स्पष्ट कीजिए।
3. प्रस्तुत कविता में कवि किसे क्या कहना चाहते, चर्चा कीजिए?
4. प्रस्तुत कविता की भाषा शैली के बारें में चर्चा कीजिए।
5. प्रस्तुत कविता से पाठक को क्या सीख मिलती है?

****

इकाई-14 कन आरू मन (कन और मन)

इकाई की रूपरेखा

14.1 उद्देश्य
14.2 प्रस्तावना
14.3 लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा जी का संक्षिप्त परिचय
14.4 कन आरू मन (कन और मन) मूल पाठ
14.5 'कन और मन' के चरित्र विश्लेषण एवं भाषा और शैली
14.6 'कन और मन' में निहितार्थ शिक्षा
14.7 सारांश
14.8 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
14.9 अधिक जानने के लिए पढ़ें
14.10 अभ्यास प्रश्न

14.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

- लक्ष्मीनाथ बेजबरूआ जी के जीवन और साहित्यिक योगदान से परिचित हो पाएंगे।
- कन और मन साधुकथा के मूल पाठ को समझेंगे।
- साधूकथा के प्रमुख पात्रों कन, मन और बूढ़ी दादी के चरित्र को समझ सकेंगे।
- साधूकथा की भाषा और शैली की विशेषताओं को समझेंगे।
- साधूकथा में निहित नैतिक और सामाजिक शिक्षाओं की पहचान होगी।
- साहित्य से जीवन-मूल्य ग्रहण करने की क्षमता विकसित होगा।

14.2 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में हम असमिया साहित्य के महान साहित्यकार लक्ष्मीनाथ बेजबरूआ और उनकी प्रसिद्ध साधुकथा 'कन आरू मन' (कन और मन) का अध्ययन करेंगे। लक्ष्मीनाथ बेजबरूआ (1864-1938) असमिया साहित्य में नवजागरण और लोकसाहित्य के प्रवर्तक माने जाते हैं। उन्हें असमिया हास्य, कविता, नाटक और गीतों के क्षेत्र में विशेष योगदान के लिए 'रसराज' और 'साहित्य सम्राट' की उपाधि दी गई। बेजबरूआ जी ने न केवल साहित्यिक कृतियाँ रचीं, बल्कि असमिया लोकजीवन, संस्कृति और भाषा को संरक्षित और समृद्ध करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके लेखन में हास्य, नैतिक शिक्षा और लोककथाओं का सुंदर मिश्रण देखने को मिलता है। इसी क्रम में इस इकाई का मुख्य पाठ 'कन आरू मन' है, जो एक साधुकथा के रूप में बच्चों और सामान्य पाठकों के लिए अत्यंत रोचक और शिक्षाप्रद है। इस कथा के माध्यम से हमें जीवन के मूल्य जैसेन्याय, सत्यनिष्ठा, धैर्य, विवेक और सहयोग सीखने को मिलते हैं। कथा की भाषा सरल, सहज और संवादप्रधान है, जिससे यह पढ़ने में रोचक और समझने में आसान बनती है। इसके साथ ही कथा में घटनाओं का क्रम स्पष्ट और सुसंगठित है, जो पाठक को कहानी की दिशा और पात्रों के स्वभाव को समझने में मदद करता है। इस इकाई में हम कथा के प्रमुख पात्रकन और मनका चरित्र विश्लेषण करेंगे, उनके स्वभाव, निर्णय और व्यवहार को समझेंगे। साथ ही, भाषा और शैली के विशेषताओं का अध्ययन करके यह समझने का प्रयास करेंगे कि कैसे लेखक ने साधारण लोकजीवन और हास्यपूर्ण घटनाओं के माध्यम से नैतिक और सामाजिक शिक्षा प्रदान की है।

अंततः, इस इकाई का उद्देश्य विद्यार्थियों को न केवल असमिया साहित्य और लोककथा के प्रति रुचि और समझ विकसित करना है, बल्कि उन्हें जीवन-मूल्यों और नैतिक शिक्षाका अनुभव कराना भी है। इस प्रकार, 'कन आरू मन' की साधुकथा साहित्य, शिक्षा और संस्कृति के समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है।

5 महत्वपूर्ण बिंदु

- लक्ष्मीनाथ बेजबरूआ का जन्म सन् 14 आक्टोबर 1864 में शिवसागर के प्रतिष्ठित परिवार में हुआ। उनके पिता दीननाथ बेजबरूआ अंग्रेज़ी शासन के समयमुनसिफ़ (न्यायिक पद) पर कार्यरत थे।
- 1888 में कोलकाता में शिक्षित असमीया युवाओं का एक समूह इकट्ठा होकर 'असमीया भाषा उन्नति साधिनी सभा' नामक संस्था की स्थापना करता है।
- 26 मार्च 1938, डिब्रूगड़ में उनका निधन हुआ, लेकिन उनका साहित्य आज भी असमीया संस्कृति और साहित्य में प्रेरणास्त्रोत बना हुआ है।

14.3 लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा जी का संक्षिप्त परिचय

लक्ष्मीनाथ बेजबरूआ का जन्म सन् 14 आक्टोबर 1864 में शिवसागर के प्रतिष्ठित परिवार में हुआ। उनके पिता दीननाथ बेजबरूआ अंग्रेज़ी शासन के समयमुनसिफ़ (न्यायिक पद) पर कार्यरत थे। उस दौर में यातायात की सुविधा बहुत कम थी और नाव ही यात्रा का मुख्य साधन माना जाता था। परिवार के साथ नाव से यात्रा करते समय, नगांव जिले के आहटगुड़ी गाँव में लक्ष्मी पूर्णिमा के दिन उनकी माता ठानेश्वरी देवी ने लक्ष्मीनाथ को जन्म दिया। पिता की नौकरी के कारण लक्ष्मीनाथ को असम के अलग-अलग स्थानों पर पढ़ाई करने का अवसर मिला। आगे चलकर सन् 1886 में उन्होंने शिवसागर सेएंट्रेंस परीक्षा पास की और कोलकाता के रिपन कॉलेज में दाखिला लिया। कोलकाता में पढ़ाई के दौरान ही, सन् 1891 में उनका विवाह बंगाल के प्रसिद्ध ठाकुर परिवार की प्रज्ञासुंदरी देवी से हुआ। बाद में उन्होंने असम के नामी व्यापारी भोलनाथ बरूआ के साथ व्यवसाय की शुरुआत की। कोलकाता में अध्ययन के दौरान लक्ष्मीनाथ बेजबरूआ की मुलाक़ात चंद्रकुमार अग्रवाला, हेमचंद्र गोस्वामी, रत्नकांत बरकाकती जैसे कई असमिया छात्र मित्रों से हुई। इन्हीं के प्रयास से 1888 में कोलकाता में शिक्षित असमिया युवाओं का एक समूह इकट्ठा होकर 'असमिया भाषा उन्नति साधिनी सभा' नामक संस्था की स्थापना करता है।

सभा के उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए 1889 में इसने 'जोनाकी' नामक पत्रिका प्रकाशित करना शुरू किया। यह पत्रिका शीघ्र ही शिक्षित समाज के साहित्यिक प्रयासों का केंद्र बन गई। इसी 'जोनाकी' में बेजबरूआ ने अपना पहला हास्य-नाटक 'लितिकाई' प्रकाशित किया और इसके बाद वे लगातार साहित्य साधना में प्रवृत्त हो गए। 'जोनाकी' के माध्यम से बेजबरूआ ने असमिया साहित्य में अग्रणी भूमिका निभाई और साहित्य की हर विधा में उन्होंने समृद्धि प्रदान की। इसी कारण बहुत से विद्वान उस दौर को 'बेजबरूआ का युग' भी कहते हैं। लक्ष्मीनाथ बेजबरूआ को बचपन से ही साहित्य में गहरी रुचि थी। कोलकाता में अध्ययन के दौरान, जब वे अपने साथी छात्रों और राष्ट्रीय चेतना से प्रेरित युवाओं से मिले, तो उनके साहित्यिक प्रतिभा का विकास और भी तेजी से हुआ। इस परिणामस्वरूप बेजबरूआ ने असमिया साहित्य को कई रूपों में समृद्ध किया- कहानी, उपन्यास, प्रबंध, हास्य रचना, आलोचनात्मक लेख, जीवनी, आत्मकथा, नाटक, प्रहसन, बाल साहित्य, इतिहास अध्ययन और कविता आदि में योगदान देकर उन्होंने भाषा को उज्जवल बनाया। बेजबरुआ के हास्यपूर्ण लेखन को लोगों ने बहुत सराहा, इसलिए उन्हें 'रसराज' की उपाधि दी गई। 26 मार्च 1938, डिब्रूगड़ में उनका निधन हुआ, लेकिन उनका साहित्य आज भी असमिया संस्कृति और साहित्य में प्रेरणास्त्रोत बना हुआ है।

आत्म-जीवनी तथा जीवनी- मोर जीवन सोँवरण, डाडरीया दीननाथ बेजबरुवार संक्षिप्त जीवन चरित,

श्रीश्री शंकरदेव,श्रीश्री शंकरदेव आरु श्रीश्री माधवदेव।

चिन्ताशील रचना– तत्त्बकथा, श्रीकृष्णकथा और भगवत् कथा।

उपन्यास– पदुमकुँवरी

गल्प पुथि– सुरभि, साधुकथार कुँकि, जोनबिरि, केहोँकलि।

साधुकथा एवं शिशु साहित्य

- बुढ़ी आइर साधु
- ककादेउता आरु नातिलरा ('कन आरू मन' साधूकथा इस साहित्य के अंतर्गत है)
- जुनुका

बैषयिक गद्य– बाखर, कामत कृतित्ब लभिबर संकेत।

नाटक

धेमेलीया नाटक (प्रहसन)– लितिकाइ, नोमल, पाचनि, चिकरपति निकरपति।

नाटर कुकि– गदाधर रजा, बारेमतरा, ह–य–ब–र–ल, हेमलेत, मडला।

बुरंजीमूलक नाटक– चक्रध्बज सिंह, जयमती कुँवरी, बेलिमार।

रस रचना या हास्यरसात्मक रचना– कृपाबर बरुवार काकतर टोपोला, कृपाबर बरुवार ओभतनि, बरबरुवार बुलनि, बरबरुवार भावर बुरबुरणि (प्रथम खण्ड), बरबरुवार भावर बुरबुरणि (द्वितीय खण्ड), बरबरुवार चिन्तार शिलगुटि, बरबरुवार साहित्यिक रहस्य, कृपाबर बरुवार सामरणि।

अनुवाद– भारतबर्षर बुरंजी।

अन्यान्य– असमिया भाषा आरु साहित्य, पत्रलेखा, काँहुदी आरु खारलि, सम्पादकर च'रा।

बेजबरूआ जी ने केवल साहित्यिक कृतियाँ ही नहीं दीं, बल्कि असमिया जातीय चेतना को स्वर भी प्रदान किया। उन्होंने ''ओ मोर आपुनार देख'' नामक गीत की रचना की, जिसे असम का प्रथम जातीय संगीत माना जाता है। इस गीत में उन्होंने मातृभूमि के प्रति गहरा प्रेम, गर्व और समर्पण व्यक्त किया। साथ ही, बेजबरूआ जी ने असमिया साहित्य में बच्चों और सामान्य पाठकों के लिए ''साधू कथा'' की रचना की। साधू कथाएँ शिक्षाप्रद और मनोरंजक लघुकथाएँ हैं जिनमें लोककथा की परंपरा के साथ–साथ नया रूप और हास्य तत्व जोड़ा गया है। इन कथाओं के माध्यम से उन्होंने न्याय, सत्यनिष्ठा, विवेक और धैर्य जैसी नैतिक मूल्यों को रोचक ढंग से प्रस्तुत किया। उनकी प्रसिद्ध साधू कथाओं में ''कन और मन'' हम इस इकाई में पढ़ेंगे।

5 महत्वपूर्ण बिंदु

- बेजबरुवा की साधुकथाएँ साहित्य में नवजागरण की पहचान हैं।
- हास्य, लोकजीवन और नैतिक शिक्षा का सुंदर संगम।
- ''कन आरू मन'' को लोकजीवन और बच्चों के मनोविज्ञान को समझाने वाला उत्कृष्ट उदाहरण माना जाता है।
- भाषा: सरल, सहज और संवादप्रधान।
- शैली: हास्य और शिक्षा का मिश्रण, लोककथा परंपरा से प्रेरित।
- लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा जी असमीया साहित्य के खजाने में साधुकथा की रचना के लिए प्रसिद्ध हैं। प्रारंभ में उन्होंने कोलकाता में अध्ययन करते समय कहानी साहित्य अर्थात् गद्य के समान छोटी–छोटी

कथाएँ लिखीं। इन्हीं लघु गद्य कथाओं के कारण उन्हें लघुकथा का जनक भी माना जाता है।

- 1889 में 'जोनाकी' नामक पत्रिका प्रकाशित हुई। यह पत्रिका शीघ्र ही शिक्षित समाज के साहित्यिक प्रयासों का केंद्र बन गई। इसी 'जोनाकी' में बेजबरूआ ने अपना पहला हास्य-नाटक 'लितिकाई' प्रकाशित किया।

14.4 कन आरू मन (कन और मन) मूल पाठ

किसी देश में कन और मन नामक दो भाई रहते थे। कन उम्र में बड़ा और तेज-तर्रार था, जबकि मन उम्र में छोटा और बहुत ही भोला-भाला था। एक दिन कन ने मन से कहा - ''भाई, हमारे जो पैतृक सामान हैं, उन्हें हम दोनों आपस में बाँटकर प्रयोग करें।'' तब मन ने धीरे से उत्तर दिया- ''ककाई (भैया), तुम्हारी बात सच है। हमारे सामान घर में बंद पड़े रहने से क्या फायदा? चलो बाँट लेते हैं।'' कन बोला- ''हमारे पास जो फटी हुई चादर है, उसे रात में मैं लूँगा और दिन में तुम ले लेना।'' मन ने कहा - ''ठीक है।'' उस दिन से चादर रात में कन के पास रहती और दिन में मन के पास। लेकिन दिन के समय धूप की तपन के कारण मन चादर ओढ़कर सो नहीं पाता और उसे उतारकर रख देता। धीरे-धीरे मन को चादर से ऊब लगने लगी। वह दिन में उसे धूप में सुखाकर, झाड़-पोंछकर टांग देता और रात में कन आराम से उसी चादर में सोता। मन बेचारा रातभर बिना चादर के बैठा रहता। कुछ दिनों बाद, एक दिन कन ने मन से कहा- ''भाई, हमारे आँगन में जितने भी पेड़-पौधे हैं, उनकी जड़ का काम तुम संभालो और ऊपर का काम मैं देखूँगा।'' मन ने कहा- ''ठीक है।'' उस दिन से मन पेड़ों की जड़ को पानी देना, खाद डालना आदि करता। जल्दी ही पेड़ों पर फल लग गए। लेकिन सारे फल कन तोड़कर बड़े आनंद से खा जाता। फिर कुछ दिनों बाद कन ने मन से कहा- ''भाई, हमारी जो गाय है, उसका अगला हिस्सा तुम संभालो और पिछला हिस्सा मैं लूँगा।'' मन ने भोलेपन से कहा- ''ककई, मैं तुम्हारी बात कभी टालता नहीं। तुम्हारी इच्छा जो हो, वही करो।'' उस दिन से मन गाय को खिलाना, पानी पिलाना और बाँधना आदि करता। लेकिन दूध दुहकर कन ही पी जाता। कुछ समय बाद, एक बूढ़ी औरत ने मन की दुख भरी हालत देखी और उससे पूछा- ''बेटा, तुम इतना दुख क्यों सह रहे हो?'' मन ने उत्तर दिया- ''बूढ़ी अम्मा, मेरा भाई जो कुछ करने को कहता है, मुझे वही करना पड़ता है, क्योंकि वह मुझसे बड़ा है। इसलिए उसकी कही बात मैं मानता हूँ।'' तब बूढ़ी ने कहा- ''बेटा, तुम ऐसा करो - वह फटी हुई चादर दिन में भिगोकर रख दो। तब वह रात को गीली चादर नहीं ले पाएगा और मजबूर होकर खुद भी कष्ट झेलेगा। अगर वह पूछे कि क्यों भिगोया, तो कह देना - 'दिन में यह मेरे पास थी, तो मैंने जैसा चाहा वैसा किया, इसमें तुम्हारा क्या नुकसान?' और जब वह फल तोड़ने पेड़ पर चढ़े, तब तुम कुल्हाड़ी लेकर जड़ पर वार करने का नाटक करना और कहना- 'जड़ का हिस्सा मेरा है, मैं जैसा चाहूँगा वैसा करूँगा।' तब वह डरकर तुम्हें रोक लेगा। और जब वह पूछेगा क्यों किया, तो कह देना- 'जड़ मुझे मिली है, तो मैं जैसे चाहूँ वैसा करूँ।' इसी तरह जब वह गाय का दूध दुहने लगे, तब तुम कोई डंडी लेकर उसके कान और मुँह के पास ठोक दो। वह दूध दुहने में परेशान हो जाएगा और तुम्हें रोक लेगा। अगर वह पूछे, तो कह देना- 'गाय का अगला हिस्सा मेरा है, इसलिए मैं जैसा चाहूँ कर सकता हूँ।' ऐसा करोगे तो वह समझ जाएगा और तुम्हारे साथ बराबरी से बंटवारा करने लगेगा।'' बूढ़ी की सलाह मानकर मन ने वैसा ही करना शुरू कर दिया। तब से कन को भी समझ आ गया और उसने न्यायपूर्वक सामान और काम बाँटना शुरू किया। इसके बाद दोनों भाई आपस में मिलजुल कर प्रेम से रहने लगे।

अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. 'कन और मन' में पाठकों को कौन-सी नैतिक शिक्षा मिलती है?

प्रश्न 2. 'कन और मन' में फटी चादर का क्या महत्व है?

प्रश्न 3. कथा में घटनाओं के क्रम और कथानक की स्पष्टता का मूल्यांकन कीजिए।

प्रश्न 4. 'कन और मन' से आप कौन-सी जीवन-मूल्य शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं?

प्रश्न 5. जोनाकी' पत्रिका कब प्रकाशित हुआ था?

14.5 'कन और मन' के चरित्र विश्लेषण एवं भाषा और शैली

चरित्र विश्लेषण

कन- कन उम्र में बड़ा और तेज-तर्रार है। उसका स्वभाव थोड़ा स्वार्थी और चालाक है। वह अपने आराम और लाभ को प्राथमिकता देता है। कथा में देखा जा सकता है कि वह अपनी सुविधा के अनुसार दिन और रात में फटी चादर का उपयोग करता है और पेड़ के फलों और गाय के दूध में भी अधिक हिस्सा लेने की कोशिश करता है। कन का चरित्र पाठकों को सावधानी और सोच-समझकर कार्य करनेका संदेश देता है, क्योंकि प्रारंभ में उसका व्यवहार अन्यायपूर्ण है।

मन- मन कन की तुलना में छोटा और भोला है। वह सहनशील, आज्ञाकारी और विनम्र है। प्रारंभ में वह अपने भाई की बातों का पालन करता है, भले ही उसे कठिनाई का सामना करना पड़े। कहानी में मन का चरित्रधैर्य, सहनशीलता और विवेक का प्रतीक है। बूढ़ी की सलाह के बाद मन न्याय और समझदारी से अपने अधिकार और कर्तव्य का विभाजन करता है। यह दिखाता है कि सत्यनिष्ठा और समझदारी के साथ जीवन में निर्णय लेना महत्वपूर्ण है।

बूढ़ी- बूढ़ी पात्र कथा मे मार्गदर्शक और बुद्धिमान के रूप में आती है। वह मन को सही सलाह देती है और अन्यायपूर्ण परिस्थिति में उचित समाधान सुझाती है। उसकी उपस्थिति कथा में न्याय और विवेक की सीख प्रदान करती है।

भाषा और शैली

''कन और मन'' कथा की भाषा अत्यंतसरल, सहज और स्पष्ट है। लेखक ने इसे इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि यह न केवल बच्चों के लिए समझने योग्य है, बल्कि सामान्य पाठकों के लिए भी पढ़ने में सहज है। शब्दों का चयन और वाक्यों की संरचना सरल होने के कारण पाठक बिना किसी कठिनाई के कथा में प्रस्तुत घटनाओं और पात्रों की मानसिकता को समझ सकते हैं। कथा में संवादों का उपयोग विशेष रूप से प्रभावशाली है। संवादों के माध्यम से पात्रों के स्वभाव, भावनाएँ और उनकी सोच पाठक के सामने स्पष्ट हो जाती है। उदाहरण के लिए, कन और मन के बीच फटी चादर और अन्य वस्तुओं के प्रयोग को लेकर हुए बातचीत से उनके स्वभाव और संबंधों का सहज चित्र पाठक के मन में बन जाता है। कथा में घटनाओं का क्रम सुसंगठित और तार्किक है। लेखक ने कहानी की घटनाओं को इस तरह क्रमबद्ध किया है कि प्रत्येक घटना पूर्ववर्ती घटना से जुड़ी हुई प्रतीत होती है। इससे पाठक कहानी की दिशा और घटनाओं के कारण-परिणाम को आसानी से समझ पाते हैं। इस कथा में लेखक नेहास्य और शिक्षा का सुंदर मिश्रण प्रस्तुत किया है। फटी चादर, पेड़ के फल और गाय के दूध के प्रसंगों में हास्यपूर्ण स्थिति दिखाई देती है, जिससे पाठक मनोरंजन का आनंद भी लेते हैं। इसके साथ ही कथा के माध्यम सेन्याय, धैर्य, सहनशीलता और विवेक जैसी नैतिक शिक्षाएँ भी दी गई हैं। यह संतुलन कथा को न केवल मनोरंजक बनाता है, बल्कि शिक्षाप्रद भी बनाता है। कथा की शैली में लोककथाओं का प्रभावस्पष्ट रूप से दिखाई देता है। लेखक ने पात्रों और घटनाओं को इस तरह प्रस्तुत किया है कि वे सीधे लोकजीवन और ग्रामीण अनुभवों से जुड़े प्रतीत होते हैं। भाषा, संवाद और घटनाओं का स्वरूप पाठकों को असमिया लोककथाओं की पारंपरिक शैली की याद दिलाता है और कहानी को अधिक प्रभावशाली बनाता है। इस प्रकार, ''कन और मन'' कथा की भाषा और शैली पाठकों को न केवल सहजता और मनोरंजन प्रदान करती है, बल्कि उसमें शिक्षाप्रद और नैतिक तत्वोंका भी पूर्ण समावेश है। यही कारण है कि यह कथा साहित्यिक दृष्टि से अत्यंत मूल्यवान मानी जाती है।

14.6 'कन और मन' में निहितार्थ शिक्षा

लक्ष्मीनाथ बेजबरूआ की साधुकथाएँ असमिया साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। इन कथाओं में हास्य और रोचकता के साथ-साथ गहरे नैतिक मूल्य भी निहित हैं। बेजबरूआ ने इन कथाओं को बच्चों तथा सामान्य पाठकों की रुचि को ध्यान में रखकर सरल और सहज शैली में लिखा है। साधुकथाओं के पात्र और घटनाएँ लोकजीवन से जुड़ी हुई प्रतीत होती हैं, इसलिए पाठक तुरंत उनसे आत्मीयता स्थापित कर लेते हैं। इन कहानियों का मूल उद्देश्य केवल मनोरंजन कराना नहीं, बल्कि जीवन के लिए आवश्यक शिक्षा देना है। इन कथाओं से पाठकों को कई महत्त्वपूर्ण संदेश मिलते हैं। सबसे पहले, यह कथाएँ हमें सत्य और न्याय का महत्व समझाती हैं। छल और अन्याय कुछ समय तक सफल हो सकते हैं, पर अंत में न्याय की ही विजय होती है। जैसे ''कन और मन'' की कथा में चालाक और स्वार्थी कन बार-बार छोटे भाई मन का शोषण करता है, लेकिन बुद्धिमानी और परिस्थितियों के कारण अंततः मन के साथ न्याय होता है। इसी से यह शिक्षा मिलती है कि जीवन में धैर्य और सहनशीलता का मार्ग ही सही परिणाम तक पहुँचाता है। इसके अलावा, साधुकथाएँ यह भी दर्शाती हैं कि कठिन परिस्थितियों में बुद्धिमत्ता और विवेक सबसे बड़ी शक्ति होती है। पात्र अपने छोटे-छोटे निर्णयों से साबित करते हैं कि मानसिक शक्ति शारीरिक बल से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। इन कहानियों से ईमानदारी, भाईचारा और सहयोग की भी सीख मिलती है। परिवार और समाज तभी सुखी और समृद्ध हो सकता है जब उसमें आपसी सहयोग और विश्वास हो। इस प्रकार बेजबरूआ की साधुकथाएँ केवल बच्चों की कहानियाँ नहीं हैं, बल्कि वे जीवन का मार्गदर्शन करने वाली शिक्षाप्रद कथाएँ हैं। इनमें छिपा निहितार्थ यही है कि मनुष्य को सदैवसत्य, न्याय, विवेक, धैर्य और नैतिकता का पालन करना चाहिए। यही गुण उसे सच्चे अर्थों में श्रेष्ठ और सफल बनाते हैं।

14.7 सारांश

'कन आरू मन' लक्ष्मीनाथ बेजबरूआ की एक प्रसिद्ध साधुकथा है, जो बच्चों और सामान्य पाठकों दोनों के लिए मनोरंजक और शिक्षाप्रद है। कथा में दो भाई, कन और मन, मुख्य पात्र हैं। कन उम्र में बड़ा, तेज-तर्रार और थोड़ा स्वार्थी है, जबकि मन छोटा, भोला, विनम्र और आज्ञाकारी है। दोनों भाई मिलकर अपने दैनिक कार्यों और पारिवारिक जिम्मेदारियों का वितरण करते हैं, परंतु कन अक्सर अपनी सुविधा और लाभ के लिए मन को परेशान करता है। कथा की शुरुआत इस प्रकार होती है कि कन और मन अपने घर के फटी चादर (फटा-कँथा) को दिन और रात में उपयोग करने की व्यवस्था करते हैं। दिन में मन इसे उपयोग करता है, परंतु रात में कन इसे लेकर सो जाता है। इसी तरह, फल और गायकर्म का भी वितरण होता है, जिसमें कन स्वयं अधिक लाभ उठाता है और मन को कठिनाई सहनी पड़ती है। इस दौरान मन हमेशा भाई की आज्ञा का पालन करता है और धैर्यपूर्वक कार्य करता है। कथानक में एकबूढ़ी महिला का प्रवेश होता है, जो मन की परेशानियों को देखकर उसे उचित मार्गदर्शन देती है। बूढ़ी उसकी सहायता से कन और मन के बीच वस्तुओं और कार्यों का न्यायपूर्ण वितरण सुनिश्चित करती है। इस सलाह के बाद मन अपने अधिकारों और कर्तव्यों को समझकर उचित निर्णय लेता है, जिससे भाईयों के बीच संतुलन, न्याय और आपसी समझ स्थापित होती है। कथा में हास्यपूर्ण स्थितियाँ, जैसे फटी चादर का दिन-रात उपयोग, पेड़ से फल तोड़ना, और गायी का दूध साझा करना, इसे बच्चों के लिए रोचक बनाती हैं। साथ ही, कहानी में नैतिक शिक्षा भी निहित है। यह सिखाती है किसत्य, न्याय, धैर्य, विवेक और सहयोग का पालन करना जीवन में आवश्यक है। मन की आज्ञाकारिता, धैर्य और बुद्धिमत्ता कथा के माध्यम से पाठकों के सामने आदर्श रूप में प्रस्तुत की गई है। अंत में हम कह सकते हैं कि- 'कन आरू मन' केवल मनोरंजन की कथा नहीं है, बल्कि यह जीवन के मूल्य और नैतिक शिक्षा का संगम है। यह कथा बच्चों और पाठकों को जीवन में उचित निर्णय लेने, न्याय की प्रतिष्ठा बनाए रखने और आपसी सहयोग की महत्ता समझने की प्रेरणा देती है।

K 14.8 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर- साधूकथा 'कन और मन' से पाठकों कोन्याय, सत्य, धैर्य, विवेक और सहयोग का महत्व सिखाती है।

प्रश्न 2 का उत्तर- फटी चादर कथा में समान वितरण और न्याय का प्रतीक है, जिससे पात्रों के व्यवहार और अन्याय का चित्रण होता है।

प्रश्न 3 का उत्तर- कथा में घटनाएँ सुसंगठित और क्रमबद्ध हैं। इससे पाठक पात्रों की क्रियाओं और कहानी की दिशा को आसानी से समझ पाते हैं। (अधिक जानने के लिए इकाई को अच्छे से पढ़े)

प्रश्न 4 का उत्तर- प्रस्तुत साधूकथा से हम यह शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं कि जीवन में सत्य, न्याय, धैर्य, विवेक और आपसी सहयोग का पालन करना आवश्यक है।

प्रश्न 5 का उत्तर- 'जोनाकी' पत्रिका सन 1889 में प्रकाशित हुआ था।

5 14.9 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- बेजबरुवा, लक्ष्मीनाथ (1961). मोर जीवन सोंबरण. गुवाहाटी: असम प्रकाशन परिषद
- बेजबरुवा, लक्ष्मीनाथ (1972). मोर जीवन सोंबरण (द्वितीय खंड). गुवाहाटी: असम प्रकाशन परिषद
- बेजबरुवा, लक्ष्मीनाथ (1909). पदुमकुइरी. गुवाहाटी: असम प्रकाशन परिषद
- बेजबरुवा, लक्ष्मीनाथ (1912). बूढ़ी आईर साधु. गुवाहाटी: साहित्य प्रकाशन
- बेजबरुवा, लक्ष्मीनाथ (1912). ककादेउता आरू नातिल'रा. गुवाहाटी: ज्योति प्रकाशन
- बेजबरुवा, लक्ष्मीनाथ (1909). जुनुका. गुवाहाटी: साहित्य प्रकाशन
- बेजबरुवा, लक्ष्मीनाथ (1910). साधुकथा संग्रह. गुवाहाटी: साहित्य प्रकाशन
- बेजबरुवा, लक्ष्मीनाथ (1912). कन आरू मन. गुवाहाटी: गुवाहाटी विश्वविद्यालय प्रेस
- बेजबरुवा, लक्ष्मीनाथ (1912). साधुकथार कूकी. गुवाहाटी: गुवाहाटी विश्वविद्यालय प्रेस
- बेजबरुवा, लक्ष्मीनाथ (1910). बाखर. गुवाहाटी: असम प्रकाशन परिषद।

M 14.10 अभ्यास प्रश्न

क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. लक्ष्मीनाथ बेजबरूआ का जन्म वर्ष और स्थान क्या है?
2. बेजबरूआ जी को साहित्य में कौन-सी उपाधियाँ प्राप्त हुईं?
3. 'कन और मन' कथा के मुख्य पात्र कौन हैं?
4. कन और मन में से कौन बड़ा और तेज-तर्रार था?
5. कथा में बूढ़ी महिला का क्या योगदान है?
6. कथा की भाषा और शैली कैसी है?
7. मन के स्वभाव की विशेषताएँ लिखिए।

ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. लक्ष्मीनाथ बेजबरूआ का संक्षिप्त जीवन परिचय दीजिए।

2. 'कन और मन' कथा का विस्तार से सारांश लिखिए।
3. कथा के मुख्य पात्र कन और मन का चरित्र विश्लेषण कीजिए।
4. बूढ़ी महिला के पात्र का कथा में महत्व समझाइए।
5. 'कन और मन' में हास्य और शिक्षा का समन्वय कैसे किया गया है?
6. कथा की भाषा और शैली की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

****